धम्मपद

वर्ग 1 ~ 7

गाथा और कथा

संस्कारक : हृषीकेश शरण

VOL. I

धम्मपद

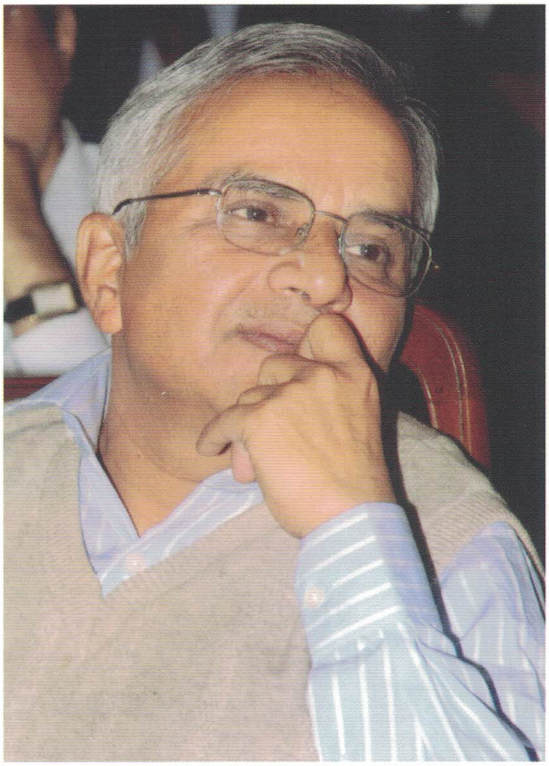
वर्ग 1~7

गाथा और कथा

लेखक एवं प्रकाशकः
हृषीकेश शरण
इस्ट ऐंड अपार्टमेन्ट्स
ब्लॉक - VI, फ्लैट नं 103
मयूर विहार, फेज़ - I एक्सटेन्शन
दिल्ली - 110 096
मोबाईलः 9871212294
ई-मेलः hsharan@hotmail.com

संस्करणः
मई, **2010**

Printed for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org



हृषीकेश शरण

जन्म बेतिया, पश्चिम चंपारण, बिहार। पटना विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। 1975 में भारतीय राजस्व सेवा (केन्द्रीय उत्पाद् शुल्क एवं सीमा शुल्क) में प्रवेश किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की डिग्री प्राप्त की और ऑपरेशनल रिसर्च सोसाइटी आफ इण्डिया से ऑपरेशनल रिसर्च में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लामा प्राप्त किया। 1994 में कैलास मानसरोवर यात्रा के यात्री दल का नेतृत्व किया। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से हिन्दी में सृजनात्मक लेखन में डिप्लोमा प्राप्त किया। विभिन्न पदों पर आसीन रहने के बाद इन दिनों कोलकाता में मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क एवं सेवा कर के पद पर कार्यरत हैं।

पिछले 33 वर्षों से बुद्ध की शिक्षा से जुड़े हुए हैं। कालेज के दिनों से ही थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य हैं। बुद्ध के जीवन एवं शिक्षा, होलिस्टिक मैनेजमेन्ट एवं अन्य विषयों पर संपूर्ण भारत में व्याख्यान देने के अलावा युगाण्डा, केन्या, तंजानिया, जाम्बिया, निदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर एवं भूटान में भी व्याख्यान दे चुके हैं।

2007 में सर एडविन ऑरनाल्ड की पुस्तक "लाइट आफ एशिया" का हिन्दी अनुवाद "जगदाराध्य तथागत" के रूप में किया। कैलाश मानसरोवर यात्रा पर संस्मरण भी लिखा है। संपूर्ण सचित्र धम्मपद: गाथा एवं कथा के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन महाबोधि सोसाइटी आफ इण्डिया के तत्वाधान में दिनांक 9 मई 2009 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन किया जा चुका है।

समर्पण

दादाजी	-	स्व० राघव शरण जी
दादीजी	-	स्व० विंध्याचली देवी
पिताजी	-	स्व० शम्भू शरण जी
माताजी	-	स्व० शकुन्तला देवी

यह पुस्तक समर्पित है मेरे परम पूजनीय स्व० दादा एवं दादीजी और पूजनीय स्व० माता-पिताजी को, जिनकी सदाशयता एवं कुशल मार्ग दर्शन ने मेरे जीवन को प्रभावित और प्रेरित किया।



आमुख

थेरवादी परंपरा के अनुसार संसार से मुक्ति पाने की तीन धाराएं हैं :-

(1) सर्वज्ञ बुद्ध की प्राप्ति

(2) पच्येक बुद्ध की प्राप्ति

(3) अरहंत की प्राप्ति

उपर्युक्त तीन धाराओं में से सर्वज्ञ बुद्ध होना आसान नहीं है। यह सबसे कठिन है। दस पारमिता, दस उपपारमिता, दस परमत्तपारमिता, साराशंक्य, कल्प, लक्ष्य से भी अधिक संसार में दान, शील, नैशक्रम्य, प्रज्ञा आदि दस पारमिता पूरा करने के बाद ही सर्वज्ञ बुद्ध प्राप्ति संभव है। बुद्ध वंश की कथा के अनुसार बोधिसत्व ने महासागर में विद्यमान जल से भी ज्यादा रक्त दान दिया है। आसमान में विद्यमान तारों से अधिक नेत्रदान दिया है, महापृथ्वी की मिट्टी से ज्यादा मांस दान दिया है। इन कहानियों का उल्लेख बुद्ध वंश कथा एवं जातक कथाओं में मिलता है।

सर्वज्ञ बुद्ध की प्राप्ति के लिए संसार में अनेक योनियों में विविध रूपों में जन्म लेना पड़ता है। दुनिया के अनुभवों से अनेक छोटे-बड़े पुण्य प्राप्त करने होते हैं। ठीक इसी प्रकार छोटे-बड़े पापों के अनुभव भी प्राप्त करने होते हैं।

बुद्ध सर्वदा दूसरों का हित ध्यान में रख उपदेश दिया करते थे। एक बार एक प्रज्ञ पण्डित ने बुद्ध से पूछा, "शाक्य मुनि, मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है। यदि आप अनुमति दें तो मैं प्रश्न करूँ।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, तुम मुझ से कोई भी प्रश्न पूछ सकते हो।" तदुपरान्त ब्राह्मण ने बुद्ध से प्रश्न किया, "आपके द्वारा धर्मदेशना देते समय आपके श्रीमुख से कमल की सुगंध निकलती है, इसके पीछे क्या कारण है ?" बुद्ध ने कहा, "ब्राह्मण, बुद्धत्व प्राप्ति के लिए संसार में व्याप्त छोटे-बड़े सभी पाप-पुण्य करना जरूरी है, केवल एक पाप को छोड़कर।" "यह पाप क्या है, तुम जानते हो ? " ब्राह्मण ने कहा, "हमें इसकी जानकारी नहीं है।" बुद्ध ने कहा, "यह पाप है झूठ या असत्य बोलना। झूठ या असत्य बोलना एक ऐसा पाप है जिसके गर्भ में सभी पाप छिपे हुए हैं। इस दुनियाँ में कोई भी व्यक्ति

कभी भी, किसी भी समय, किसी के साथ, कहीं भी छोटा-बड़ा पाप कर सकता है। बोधिसत्व में जन्म लेने के उपरान्त मैंने मुख से कभी भी झूठ नहीं बोला। इसीलिए उसी शक्ति से मेरे मुख से कमल की सुगंध निकलती है।"

कमल की सुगंध वाले बुद्ध वचनों को हम लोग बुद्ध-देशना कहते हैं। आगे चलकर इस बुद्ध-देशना को तीन भागों में बाँटा गयाः सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक और विनयपिटक - । "धम्मपद", सुत्तपिटक के 'खुद्धक निकाय' के अन्तर्गत आता है। 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत 19 ग्रंथ हैं और इन ग्रंथों में एक ग्रंथ है- "धम्मपद"। "धम्मपद" के संगीतिकारक अरहंत भिक्षुओं ने इसे 26 वर्गों में बाँटा है। सनातन धर्म में गीता का जो महत्व है उतना ही महत्व बौद्ध धर्म में "धम्मपद"का है। "धम्मपद" का अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध है। लेकिन लिखने में थोड़ी लज्जा महसूस हो रही है कि विभिन्न भाषा भाषियों वाले भारतवर्ष में 26 भाषाओं में आज भी "धम्मपद" उपलब्ध नहीं है। ग्रीक, चीनी भाषा के क्षेत्र बुद्ध के जन्म स्थान से बहुत दूर हैं फिर भी उन भाषाओं में "धम्मपद" उपलब्ध है।

श्री हृषीकेश शरण, मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद् एवं सीमा शुल्क, कोलकाता, भारत सरकार के एक उच्च पदस्थ पदाधिकारी हैं। इतने बड़े पदाधिकारी होने के बावजूद धर्म के प्रति उनका लगाव अति प्रशंसनीय है। हमें पूरा विश्वास है कि श्री शरण द्वारा हिन्दी भाषा में संपादित सचित्र "धम्मपदः कथा और गाथा" का "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" धर्मप्रिय सभी पाठकों की मानसिक पीड़ा को दूर करने में एक महान सोपान के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा।

महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया की तरफ से इस सद्धर्म कार्य के लिए श्री एच. के. शरण तथा उनके परिवार के सभी सदस्यों एवं इस काम के लिए तन-मन से जिस किसी ने भी मदद दी हो, उन सभी को त्रिरत्न से दीर्घायु, निरोगी, सर्व सम्पत्ति एवं सुखी जीवन हेतु प्रार्थना करता हूँ।

डॉ. डी. रेवत् थेरो
महासचिव
महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया

4ए,बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,कोलकाता 73
बुद्ध पूर्णिमा, 9 मई 2009

प्रस्तावना

मई 2006. अभी तक मैंने जगदाराध्य बुद्ध की अमर कृति "धम्मपद" को कभी छुआ नहीं था, खोलने और पढ़ने की बात तो दूर की थी। कारण- लोग कहते थे कि पाली भाषा में होने के कारण बुद्ध की शिक्षा ग्रहण करना अति कठिन है। दूसरे, बौद्ध साहित्य पढ़ने से हतोत्साहित करते थे क्योंकि अधिकांश लोगों की सोच थी कि बौद्ध साहित्य पढ़ने वाला बुद्ध की तरह संन्यासी हो जायेगा; गृहस्थ धर्म नहीं निभा पायेगा। सलाह देने वाले डराते थे और सलाह ग्रहण करने वाला, जिनमें मैं भी शामिल था, डरता था कि कहीं गेरुआ वस्त्र तो धारण नहीं कर लूँगा? इस डर से कभी "धम्मपद" को छुआ तक नहीं था।

6-8 मई 2006. डॉ. राधा बर्नियर, अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष, थियोसोफिकल सोसायटी ने जूनागढ़, गुजरात में "धम्मपद" पर अध्ययन शिविर का संचालन किया। संयोगवश मुझे भी उसमें भाग लेने का मौका मिला। वहाँ जब मैंने प्रथम अध्याय "यमक वर्ग" में 'मन की महत्ता तथा बैलगाड़ी' और 'मनुष्य की छाया' का उदाहरण सुना तो "धम्मपद" के संदेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। "वैर का बदला वैर से नहीं चुकाया जा सकता; इसे प्रेम, दया, करुणा और मैत्री से ही समाप्त किया जा सकता है।" - यह गाथा तो हृदय के अंदर उतर गई। "धम्मपद" से लगाव हो गया।

उन दिनों श्री जितेन्द्र चतुर्वेदीजी, आयुक्त, जयपुर के सौजन्य से पता चला कि "धम्मपद" के प्रत्येक गाथा के पीछे एक कथा है। उनकी मदद से पूरी कथा को वेबसाइट से उतार लिया गया और कहानियों को पढ़ने में मुझे आनंद आने लगा। साथ ही मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यह इतना प्रेरणादायक, सारगर्भित सद्साहित्य है; कहीं हिंदी का पाठक इससे वंचित तो नहीं है ? यह सोचकर मैंने हिंदी में अनुवाद करना प्रारंभ कर दिया। उद्देश्य था कि अपने व्याख्यानों में इन कथाओं तथा गाथाओं को उद्धृत कर सकूँ।

पदोन्नति पर जुलाई 2007 में जयपुर से कलकत्ता स्थानान्तरण हो गया। 2008 में "महाबोधि सोसाइटी" के महा सचिव, डॉ. रेवत् भन्ते जी से परिचय हुआ। उनसे पता चला कि हिंदी में भी "धम्मपद : गाथा और कथा" प्रकाशित हो चुकी है। मैंने प्रयत्न कर श्री ताराराम जी द्वारा लिखित पुस्तक की प्रति प्राप्त कर ली और जून 2008 में उसे पढ़ गया।

"धम्मपद" में मेरी रुचि जानकर महाबोधि सोसाइटी, सारनाथ के भिक्षु प्रभारी, डॉ. सुमेध भन्ते जी ने परम आदरणीय भिक्षु सारद महा थेरो जी द्वारा लिखित एवं प्रकाशित "ट्रैजरी ऑफ ट्रूथ", "सचित्र धम्मपद" की प्रति पढ़ने के लिए दी। इस पुस्तक में दाहिने पृष्ठ पर गाथा से सम्बन्धित कथा तथा बाँये पृष्ठ पर उससे सम्बन्धित चित्र, गाथा और उसका अर्थ दिया हुआ है। इस पुस्तक को भी मैं पढ़ता गया, पढ़ता गया। आनन्द ही आनन्द की अनुभूति हुई। अन्त में मन में आया कि क्यों न इसी प्रकार की एक पुस्तक हिन्दी में लिख दी जाए जिसमें कथावस्तु दाहिनी ओर हो और तस्वीरें बाईं ओर। भन्ते सारद जी से अनुमति ले तस्वीरों को प्रकाशित किया जाय। मैंने इस कार्य को दिसंबर 2008 में प्रारंभ किया और 31 मार्च 2009 तक संपन्न कर डाला।

इस बीच डॉ. रेवत् भन्ते जी से विचार-विमर्श हुआ कि क्यों न "बुद्ध पूर्णिमा" के पावन अवसर पर "धम्मपद" के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन किया जाए। उन्होंने इस दिशा में कदम उठाया और "बुद्ध पूर्णिमा 2009" के कार्यक्रम में इसे शामिल कर लिया। इस प्रकार ये दोनों पुस्तकें पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हैं।

जनवरी - फरवरी 2009 में मुझे दो बार बोधगया जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और सिंहली भाषा के मूर्धन्य विद्वान भन्ते ज्ञानानंद जी से परिचय हुआ जिनकी जनसाधारण के लिए सिंहली भाषा में लिखी बौद्ध साहित्य की चार करोड़ से भी अधिक मूल्य की पुस्तकें बँट चुकी हैं। उन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अनेक सुझाव दिए,

गाथाओं एवं अध्यायों का शीर्षक चुनने में मेरी मदद की। इससे मेरा काम आसान हो गया। उन्होंने श्रीलंका में अपने शिष्यों को निर्देश दिया कि वे आधुनिक समाज की पृष्ठभूमि में "धम्मपद" के प्रत्येक अध्याय का मुखपृष्ठ बनाकर भेजें। मैं श्री ज्ञानानंदजी एवं उनके शिष्य श्री ज्ञानविजयजी का हृदय से कृतज्ञ हूँ। इस लेखन की प्रक्रिया में डॉ. रेवत् भन्ते जी मेरे अग्रज एवं अभिभावक की तरह मुझे प्रोत्साहित करते रहे। अगर उनका मार्गदर्शन और प्रोत्साहन नहीं मिलता तो शायद यह कृति संभव नहीं हो पाती।

आज जब मैं विश्लेषण करता हूँ तो देखता हूँ कि बौद्ध-शिक्षा के प्रति समाज में बहुत सारी भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। इसलिए भारतीय जनमानस बौद्ध-शिक्षा से लाभान्वित होने से वंचित रह गया है। वस्तुतः बौद्ध शिक्षा से अधिक व्यवहारिक और प्रासंगिक शिक्षा उपलब्ध नहीं है। पर यह कहना कि 'भोजन स्वादिष्ट है' पर्याप्त न होगा; अगर हम उस भोजन को ग्रहण नहीं करते हैं। बौद्ध साहित्य को मात्र पढ़ना और कहना कि 'यह अच्छा है' पर्याप्त नहीं है। इसका सही लाभ उसे ही मिल पायेगा जो उन उपदेशों को अपने जीवन में उतारेगा।

"धम्मपद" की गाथा 51 तथा 52 में इसे ही स्पष्ट करते हुए बुद्ध कहते हैं :-

गाथा 51: जैसे कोई पुष्प सुन्दर और वर्णयुक्त होने पर भी गंधरहित हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्ध वाणी भी फलरहित होती है यदि कोई उसके अनुसार आचरण न करे।

गाथा 52: जैसे कोई पुष्प सुन्दर और वर्णयुक्त के साथ-साथ गंधयुक्त हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्ध वाणी भी फलदायी होती है यदि कोई उसके अनुसार आचरण करे।

आज समाज में सर्वत्र उच्छृंखलता फैली हुई है। उसे दूर करने के लिए बुद्ध के उपदेश से बढ़कर और कोई दवा नहीं है। **अतः समाज के प्रबुद्ध वर्ग को चाहिए कि वह उन संदेशों को आत्मसात करे तथा समाज के अंदर लगी नफरत की आग को बुझाने की चेष्टा करे।**

बुद्ध चरित्र इतना सुन्दर और विशाल है कि हर आदमी इससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सुंदरमय बना सकता है, सँवार सकता है। हर पाठक के जीवन में इस पाठ्य सामग्री द्वारा विमल ज्योति जगे, मेरी यही प्रार्थना है।

मैं अपनी पत्नी श्रीमती मीनू शरण का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने धैर्य रखा तथा प्रोत्साहित किया जिससे मैं यह कार्य सम्पन्न कर पाया। बेटियाँ रूचि, प्रतीची एवं दामाद निशंक- के प्रति भी आभारी हूँ। उन्हें दैनिक जीवन में उतना समय न दे पाया जितना देना चाहिए था पर उन्होंने इस विषय पर कभी शिकायत नहीं की।

हृषीकेश शरण

(हृषीकेश शरण)

कोलकाता
बुद्ध पूर्णिमा, 9 मई 2009

अविद्या का अंधकार, ज्ञान की रोशनी

धम्मपद

यमक वर्ग

गाथा और कथा



संस्कारक

हृषीकेश शरण

अविद्या का अंधकार, ज्ञान की रोशनी

धम्मपद

यमक वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
ह्षीकेश शरण

विषय सूची

यमक वर्ग



गाथाः मनोपुब्बंगमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति, चक्कं व वहतो पदं ।।1।।

अर्थः मन सभी प्रवृत्तियों का प्रधान है। सभी धर्म (अच्छा या बुरा) मन से ही उत्पन्न होते हैं। यदि कोई दूषित मन से कोई कर्म करता है तो उसका परिणाम दुःख होता है। दुःख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार बैलगाड़ी का पहिया बैल के खुर के निशान का पीछा करता है।

मन से बड़ा कुछ नहीं
चक्षुपाल की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

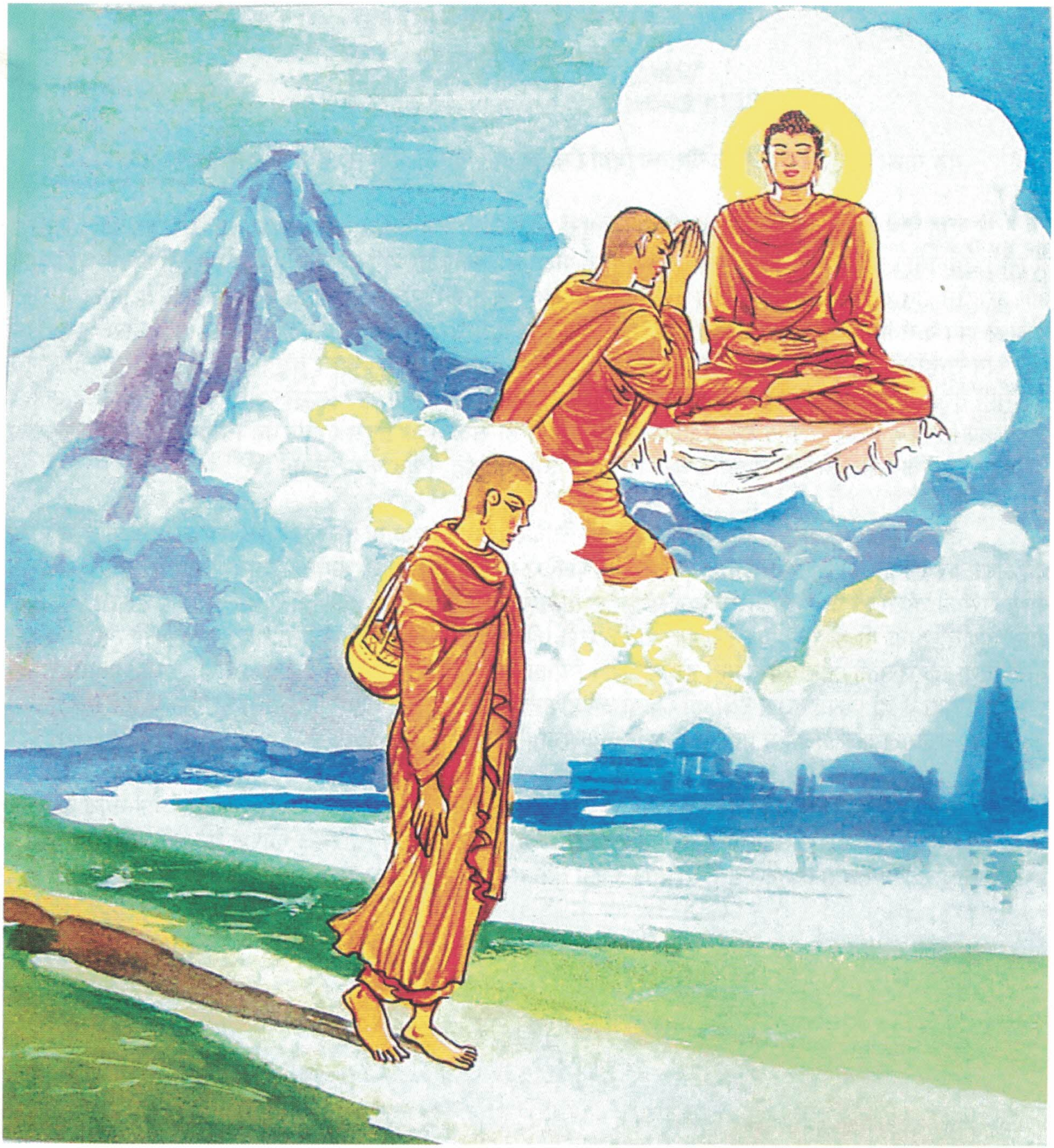
यह गाथा बुद्ध ने श्रावस्ती के जेतवन विहार में चक्षुपाल नामक एक नेत्रहीन भिक्षु के संदर्भ में कही थी।

एक दिन भिक्षु चक्षुपाल जेतवन विहार में बुद्ध को श्रद्धा सुमन अर्पित करने आया। रात्रि में वह ध्यान साधना में लीन टहलता रहा। उसके पैरों के नीचे कई कीड़े-मकोड़े दबकर मर गए। सुबह में कुछ अन्य भिक्षुगण वहाँ आये और उन्होंने उन कीड़े-मकोड़ों को मरा हुआ पाया। उन्होंने बुद्ध को सूचित किया कि किस प्रकार चक्षुपाल ने रात्रि बेला में पाप कर्म किया था। बुद्ध ने उन भिक्षुओं से पूछा कि क्या उन्होंने चक्षुपाल को उन कीड़ों को मारते हुए देखा था। जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया तब बुद्ध ने उनसे कहा कि जैसे उन्होंने चक्षुपाल को उन कीड़ों को मारते हुए नहीं देखा था वैसे ही चक्षुपाल ने भी उन जीवित कीड़ों को नहीं देखा था। "इसके अतिरिक्त चक्षुपाल ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। अत: उसके मन में हिंसा का भाव नहीं हो सकता था। इस प्रकार वह निर्दोष है।" भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर कि अर्हत होने के बावजूद चक्षुपाल अंधा क्यों था, बुद्ध ने यह कथा सुनाई :

अपने एक पूर्व जन्म में चक्षुपाल आँखों का चिकित्सक था। एक बार उसने जान बूझकर एक महिला रोगी को अंधा कर दिया था। उस महिला ने वचन दिया था कि अगर उसकी आँखें ठीक हो जायेंगी तो वह अपने बच्चों के साथ उसकी दासी हो जाएगी और जीवन पर्यन्त उसकी गुलामी करेगी। उसकी आँखों का इलाज चलता रहा और आँखें पूर्णत: ठीक भी हो गईं। पर इस भय से कि उसे जीवन पर्यन्त गुलामी करनी होगी, उसने चिकित्सक से झूठ बोल दिया कि उसकी आँखें ठीक नहीं हो रही थीं। चिकित्सक को मालूम था कि वह झूठ बोल रही थी। अत: उसने एक ऐसी दवा दे दी जिससे उस स्त्री की आँखों की रोशनी चली गई और वह पूर्णत: अंधी हो गई। अपने इस कुकर्म के कारण चक्षुपाल कई जन्मों में एक अन्धे व्यक्ति के रूप में पैदा हुआ था।

टिप्पणी: हमारे सभी अनुभवों का सृजन विचार से होता है। अगर हम बुरे विचारों से बोलते हैं या कोई कार्य करते हैं तो उनसे कष्टदायक परिणाम प्राप्त होता है। हम जहाँ कहीं जाते हैं बुरे विचारों के कारण बुरे परिणाम ही पाते हैं। हम अपने दु:खों से तब तक मुक्त नहीं हो सकते जब तक हम अपने बुरे विचारों से ग्रस्त हैं।





गाथा: मनोपुब्बंगमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति, छाया व अनपायिनी ।।2।।

अर्थ: मन सभी धर्मों का प्रधान है। पुण्य और पाप सभी धर्म मन से ही उत्पन्न होते हैं। यदि कोई प्रसन्न मन से कुछ कहता है या कुछ करता है तो उसका फल सुख होता है। सुख उसका पीछा उसी प्रकार नहीं छोड़ता जिस प्रकार मनुष्य की छाया उसका कभी साथ नहीं छोड़ती।

मन ही सर्वेसर्वा है

मट्ठकुण्डली की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

मट्ठकुण्डली ब्राह्मण अदिनपुब्बक का पुत्र था। पिता बहुत ही कृपण था और कभी भी दान-पुण्य नहीं करता था। यहाँ तक कि जब उसे अपने पुत्र के लिए आभूषण बनाने की आवश्यकता पड़ी तो उसने उन आभूषणों को भी स्वयं ही बनाया ताकि स्वर्णकार को आभूषण बनाने की मजदूरी न देनी पड़े। जब उसका पुत्र बीमार पड़ा तब पैसे बचाने के लिए उसने चिकित्सक को भी इलाज के लिए नहीं बुलाया। लड़के की तबियत बिगड़ती गई। अंत में पिता को लगा कि अब उसका ठीक होना संभव नहीं है। फिर भी चिकित्सक को बुलाने के बजाय, अदिनपुब्बक ने अपने पुत्र को घर के बाहर खाट पर लिटा दिया ताकि लोग घर के अंदर न आ सकें और उसके धन-दौलत को न देख सकें।

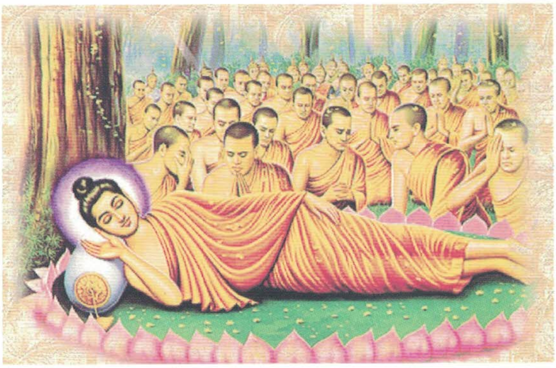
उस दिन प्रातः बुद्ध ने अपनी अन्तर्दृष्टि से सर्वेक्षण किया और अपने सर्वेक्षण में मट्ठकुण्डली को पाया। उन्होंने देखा कि मट्ठकुण्डली के आध्यात्मिक कल्याण का समय आ गया था । अतः उनके चरण मट्ठकुण्डली के आवास की ओर चल पड़े। घर-घर भिक्षाटन करते हुए शास्ता अदिनपुब्बक के घर के सामने पहुँच गए।

मट्ठकुण्डली बरामदे में लेटा हुआ था। तथागत की दिव्य आभा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। भीतर से उसका हृदय शास्ता के दर्शन के लिए बेचैन हो रहा था पर उसका शरीर जवाब दे रहा था। उसकी काया खाट पर थी पर वह बुद्ध के साथ जुड़ चुका था।

अंतिम समय आ गया। मट्ठकुण्डली ने आँखें मूँद लीं। मरते समय उसका हृदय बुद्ध के प्रति श्रद्धा से भरा हुआ था। इतना काफी था। उसका जन्म तावतिंस दिव्य लोक में हुआ।

तावतिंस दिव्य लोक से मट्ठकुण्डली ने देखा कि उसका पिता उसकी मृत्यु पर विह्वल होकर रो रहा है। अतः वह अपने पुराने रूप में पिता के सामने प्रकट हुआ। उसने अपने पिता को अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया तथा आग्रह किया कि वह बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित करे। बुद्ध भोजन के लिए आमंत्रित हुए। भोजन के बाद अदिनपुब्बक के परिवार वालों ने बुद्ध से प्रश्न किया, "क्या कोई व्यक्ति बिना दान दिए, उपवास किए, कर्मकांड किए, मात्र बुद्ध में पूर्ण समर्पण से तावतिंस दिव्य लोक में जन्म ले सकता है?" प्रत्युत्तर में बुद्ध ने मट्ठकुण्डली को उपासकों के सम्मुख प्रकट होने के लिए कहा। आदेश पाकर मट्ठकुण्डली दिव्य आभूषणों के साथ आम जनता के सामने प्रकट हुआ तथा स्पष्ट किया कि उसका जन्म तावतिंस दिव्य लोक में हुआ है। उसे देखकर सबों को विश्वास करना पड़ा कि बुद्ध के प्रति पूर्ण समर्पण मात्र से मट्ठकुण्डली को इतना अधिक लाभ हुआ था।

टिप्पणी: मनुष्य के जीवन में जो कुछ भी घटित होता है वह विचारों का ही परिणाम है। अगर विचार पवित्र हों तो वाणी और कर्म भी पवित्र होंगे। पवित्र विचार, वाणी और कर्म से जीवन में सुख प्राप्त होगा।





गाथाः अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति, वेरं तेसं न सम्मति ।।3।।

अर्थः उसने मुझे मारा, उसने मुझे हराया, उसने मुझे गाली दी, उसने मेरा बुरा किया - जो इन बातों को जीवन में याद रखते हैं उनके जीवन से वैर का अंत नहीं होता।

वैर शांत करने के उपाय

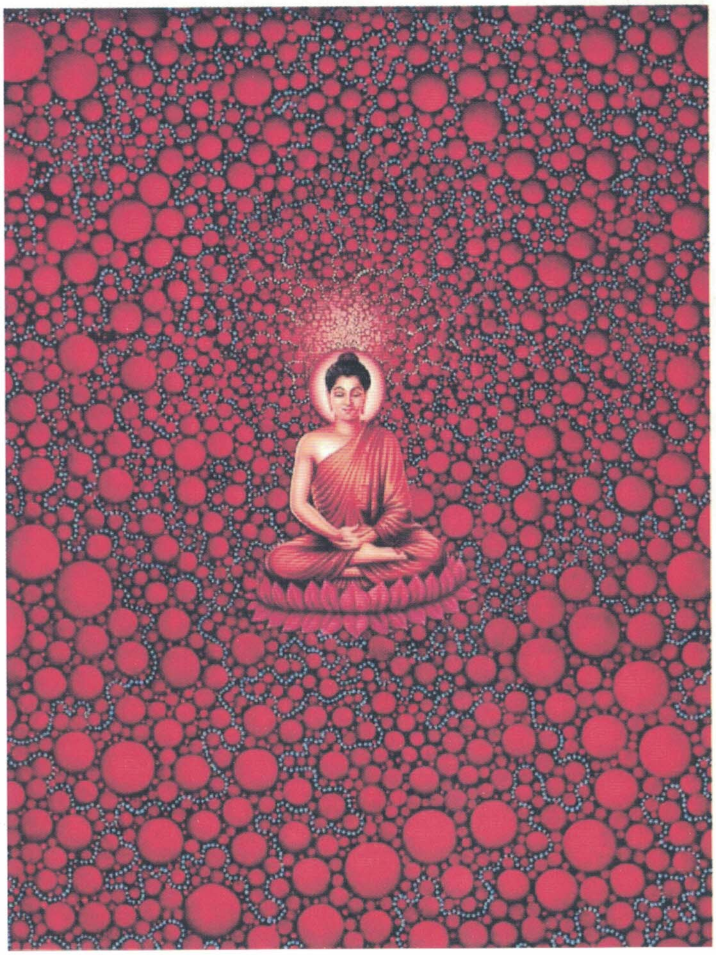
स्थविर तिस्स की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

तिस्स स्थविर वृद्धावस्था में प्रव्रजित हुए थे। वे शास्ता के रिश्तेदार थे और अपने संबंध को कभी भूल नहीं पाते थे। वे स्थूल शरीर वाले थे तथा भिक्षु के कर्त्तव्यों का निर्वहन नहीं करते थे। बाहर से आने वाले युवा भिक्षु उनकी उम्र का ख्याल कर उनकी सेवा करते थे पर जल्द ही उन्हें पता चल जाता था कि तिस्स का ज्ञान असंपूर्ण है तथा वे अपनी साधना तथा अपने कर्त्तव्यों के प्रति समर्पित नहीं हैं। शास्ता के साथ अपने संबंधों को पृष्ठभूमि में रख, वे अक्सर युवा भिक्षुओं से लड़ पड़ते थे। उनके इस प्रकार के व्यवहार पर यदि कोई उन्हें डाँटता तो वे रोने लगते और उस व्यक्ति की शिकायत लेकर शास्ता के पास जा पहुँचते थे। शास्ता सभी बातें सुन तिस्स को समझाने की कोशिश करते कि गलती उनकी थी पर तिस्स इस बात को समझने के लिए राजी नहीं होते। इसके अलावा दूसरों के साथ हुए दुर्व्यवहार को अपने हृदय में गाँठ बाँध कर रख लेते थे।

बुद्ध ने शिष्यों को समझाते हुए बताया " जो व्यक्ति दूसरों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार को याद रखता है, उसे भूल नहीं जाता और न भूलने की चेष्टा करता है उसके जीवन से वैर का कभी अंत नहीं होता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति दूसरों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार को भूल जाता है, उसे याद नहीं रखता उसके जीवन से वैर का सदा के लिए अंत हो जाता है।"

ऐसा समझाते हुए बुद्ध ने ये दो गाथायें कहीं।





गाथाः अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति, वेरं तेसूपसम्मति ।।4।।

अर्थः उसने मुझे मारा, उसने मुझे हराया, उसने मुझे गाली दी, उसने मेरा बुरा किया - जो इन बातों को जीवन में याद नहीं रखते हैं उनके जीवन से वैर का अंत हो जाता है।

वैर शांत करने का उपायः क्षमा कीजिए
स्थविर तिस्स की कथा

टिप्पणी: आज के समाज में इतना तनाव है कि अक्सर आदमी-आदमी से लड़ बैठता है। एक बार अगर किसी से लड़ाई हो जाए या एक बार भी किसी ने हमारा बुरा कर दिया तो हम अक्सर उस लड़ाई और बुराई को याद रखते हैं। ऐसा होने से हमारा क्रोध कम/समाप्त होने के बजाय और बढ़ता ही जाता है। इसके विपरीत जो लड़ाई और बुराई को याद नहीं रखते, क्षमादान कर देते हैं तथा भूल जाते हैं उनके जीवन से क्रोध का अंत हो जाता है। वे शांतिपूर्वक जीवन जीते हैं।

बुद्ध ने सदैव अपने शिष्यों एवं उपासकों को सीख दी है कि हमें हर समय, हर जगह तथा हर परिस्थिति में धैर्य रखना चाहिए। कोई हमें कितना भी उद्वेलित करने की चेष्टा करे, हमें किसी के प्रति प्रतिक्रिया नहीं दिखानी चाहिए। बुद्ध सदैव उनकी प्रशंसा करते थे जो प्रतिक्रिया स्वरूप प्रत्युत्तर दे तो सकते थे पर प्रत्युत्तर नहीं दिया और न प्रतिक्रिया व्यक्त की। "धम्मपद" में बहुत जगह इसका दृष्टांत आया है कि बुद्ध ने उनको भी क्षमादान दिया जो उन्हें अपमानित या निन्दित किया करते थे। क्षमा कमजोरी का लक्षण नहीं है। वरन् यह हमारे अन्दर विद्यमान आन्तरिक शक्ति का द्योतक है।





गाथाः न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो।।5।।

अर्थः घृणा का अंत घृणा से नहीं होता। घृणा का अंत होता है प्रेम, दया, करुणा एवं मैत्री से।

वैर रूपी बीमारी का उपचारः प्रेम, दया, करुणा
काली यक्षिणी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक गृहस्थ की पत्नी बाँझ थी। उसने किसी संतान का जन्म नहीं दिया। इसलिए उसके पति के परिवार वाले उससे बहुत नाराज रहते थे तथा उसे तरह-तरह से प्रताड़ित किया करते थे। इस समस्या से मुक्ति के लिए उस स्त्री ने अपने पति का ब्याह एक दूसरी औरत से करा दिया। पर हृदय से उसे सौतन का आगमन अच्छा नहीं लगा। अतः दो अवसरों पर जब वह नई औरत गर्भवती हुई तब उस औरत ने उसे एक ऐसी दवा दे दी कि गर्भपात हो गया। तीसरे अवसर पर उसने एक ऐसी दवा दे दी कि उस स्त्री का भी उसके गर्भ के साथ ही देहान्त हो गया। मरते समय उस औरत के मन में बाँझ औरत के प्रति घृणा और प्रतिशोध का भाव भरा हुआ था।

अगले जन्मों में उन दोनों में दुश्मनी का सिलसिला जारी रहा। किसी जन्म में पहली औरत दूसरी से बदला लेती तो उसके प्रत्युत्तर में अगले जन्म में दूसरी औरत पहली से बदला लेती। इसी प्रकार भिन्न योनियों में जन्म लेने पर भी उनमें द्वेष का सिलसिला जारी रहा।

समय बीतता गया। जन्म-जन्मान्तर बीत गए। बुद्ध काल आया। बुद्ध काल में उनमें से एक ने श्रावस्ती के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लिया तथा दूसरी 'काली' यक्षिणी के रूप में पैदा हुई। वैर का सिलसिला जारी रहा। पहली को एक संतान हुई। दूसरी उसे मारने के पीछे पड़ गई। पहली घबड़ा गई और उसने शास्ता की शरण में जाने का निर्णय लिया। उसे पता चला कि बुद्ध जेतवन में प्रवचन दे रहे हैं। अतः वह दौड़ती हुई सीधी वहाँ पहुँची और अपनी संतान को बुद्ध के चरणों में रखकर उनसे अपनी संतान की रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगी। उधर यक्षिणी को बौद्ध विहार में प्रवेश की हिम्मत नहीं हो रही थी। बाद में बुद्ध ने काल यक्षिणी को भी बुलाया तथा दोनों को डाँटा। बुद्ध ने सबों को बताया कि किस प्रकार हर जन्म में वे एक-दूसरे से बदला लेती रही हैं और किस प्रकार वे दोनों एक दूसरे के प्रति घृणा भाव से भरी हुई हैं। बुद्ध ने समझाया कि किस प्रकार घृणा का अंत घृणा से नहीं होता। वरन् घृणा से और अधिक घृणा का सृजन होता है। घृणा का अंत होता है प्रेम, दया, करुणा एवं मैत्री से। दोनों ने अपनी गलती स्वीकार की और बुद्ध के उपदेश के बाद उनके बीच का कलह समाप्त हो गया।

तब बुद्ध ने महिला को आदेश दिया कि वह अपने पुत्र को यक्षिणी की गोद में दे दे। औरत पहले तो हिचकिचाई पर बाद में बुद्ध में अटूट श्रद्धा और विश्वास के कारण उसने अपने पुत्र को उसे दे दिया।

यक्षिणी ने बड़े प्यार से उस बालक को गोद में लिया और उसे चूमा मानों वह उसका ही पुत्र हो। फिर उसे उसकी माँ को वापस कर दिया। दोनों के बीच की घृणा समाप्त हो गई।





गाथाः परे च न विजानन्ति, मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति, ततो सम्मन्ति मेधगा।।6।।

अर्थः मूर्ख लोग नहीं समझते कि उन्हें एक न एक दिन संसार से जाना ही होगा। जो इस बात को समझते हैं उनके कलह शांत हो जाते हैं।

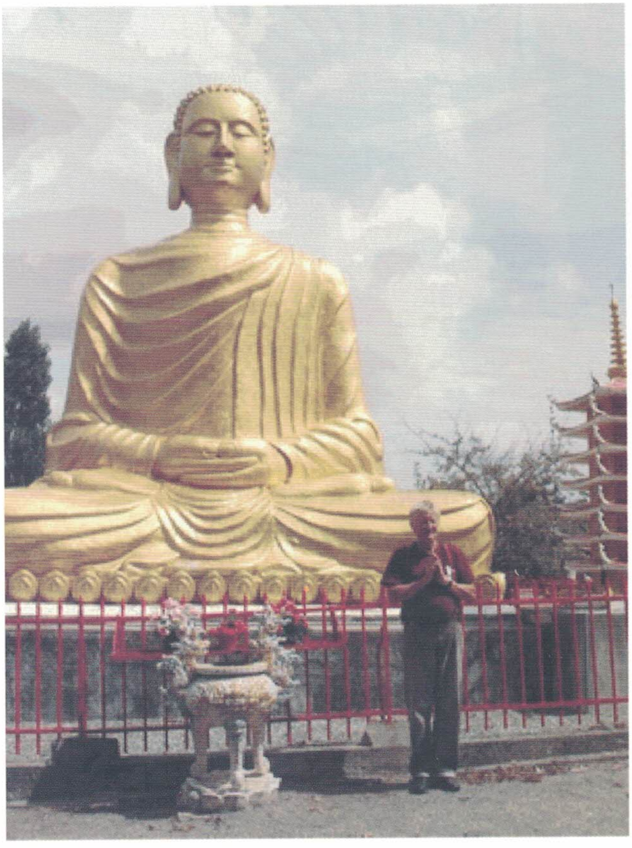
कलह समाप्त करने का उपाय
कौसाम्बी के भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार कौसाम्बी में विनयधर और धर्म कथिक भिक्षुओं में विनय के एक छोटे से नियम को लेकर झगड़ा होने लगा। बुद्ध ने बहुत कोशिश की कि किसी प्रकार दोनों पक्षों में सुलह कराई जाए पर वे सुलह नहीं करा पाए। अतः उन्होंने उन्हें कुछ और अधिक कहना उचित नहीं समझा। वर्षाकाल बिताने के लिए पारिलेयक वन में रक्खित गुफा में चले गए। वहाँ हस्तीराज पारिलेयक ने उनकी खूब सेवा की।

बुद्ध के वन प्रस्थान के बाद नगरवासियों को पता चला कि बुद्ध वन क्यों गए । अतः उन्होंने भिक्षुओं को दान देना बंद कर दिया। अब भिक्षुओं को अपनी गलती का एहसास हुआ। उन्होंने आपस में सुलह किया। फिर भी उपासकगण उनके प्रति उसी श्रद्धा से पेश नहीं आ रहे थे जैसा वे पहले पेश आते थे। उपासकगण की सोच थी कि इन भिक्षुओं को अपनी गलती स्वीकार कर शास्ता से माफी माँगनी चाहिए। लेकिन बुद्ध तो वन में थे और यह वर्षाकाल का समय था। भिक्षुओं की बड़ी दुर्दशा हुई। वर्षाकाल बड़ा ही कष्टमय बीता।

वर्षाकाल के बाद भन्ते आनन्द उन भिक्षुओं के साथ वन में गए और बुद्ध से विहार लौटने का आग्रह किया। उन्होंने अनाथपिंडिक एवं अन्य उपासकों की प्रार्थना भी सुनाई और बौद्ध विहार वापस चलने की विनती की । बुद्ध तो महा कारूणिक हैं। उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और बौद्ध विहार लौट आए। सभी भिक्षु उनके चरणों पर गिर पड़े और अपनी गलती के लिए क्षमा माँगने लगे। बुद्ध ने उन्हें उनकी गलती का एहसास कराया और समझाया कि उन्हें सदैव याद रखना चाहिए कि सबों की मृत्यु एक न एक दिन अवश्य होगी। अतः आपस में कलह करने का कोई औचित्य नहीं है।





गाथाः सुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं , कुसीतं हीनवीरियं।
तं वे पसहति मारो, वातो रुक्खं व दुब्बलं।।7।।

अर्थ: जो व्यक्ति काम भोग में लीन रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ उसके अधीन नहीं हैं, जिसे भोजन की सही मात्रा का ज्ञान नहीं है, जो आलसी है और परिश्रम नहीं करता, मार उसे उसी प्रकार गिरा देता है जैसे वायु एक दुर्बल वृक्ष को गिरा देती है।

जो कमजोर (वृक्ष) हैः मार (तूफान) उसे उखाड़ फेंकेगा

महाकाल-चूल्लकाल की कथा

स्थान : श्रावस्ती (सेतव्य नगर)

बुद्धकाल की बात है। सेतव्य नगर में महाकाल, मध्यकाल तथा चूल्लकाल नामक तीन भाई व्यापार कर जीविका चलाते थे। बड़ा भाई महाकाल तथा छोटा भाई चूल्लकाल भिन्न-भिन्न जगह व्यापार हेतु जाते तथा गाड़ियों में सामान लादकर लाते । मँझला भाई मध्यकाल उन वस्तुओं की बिक्री करता।

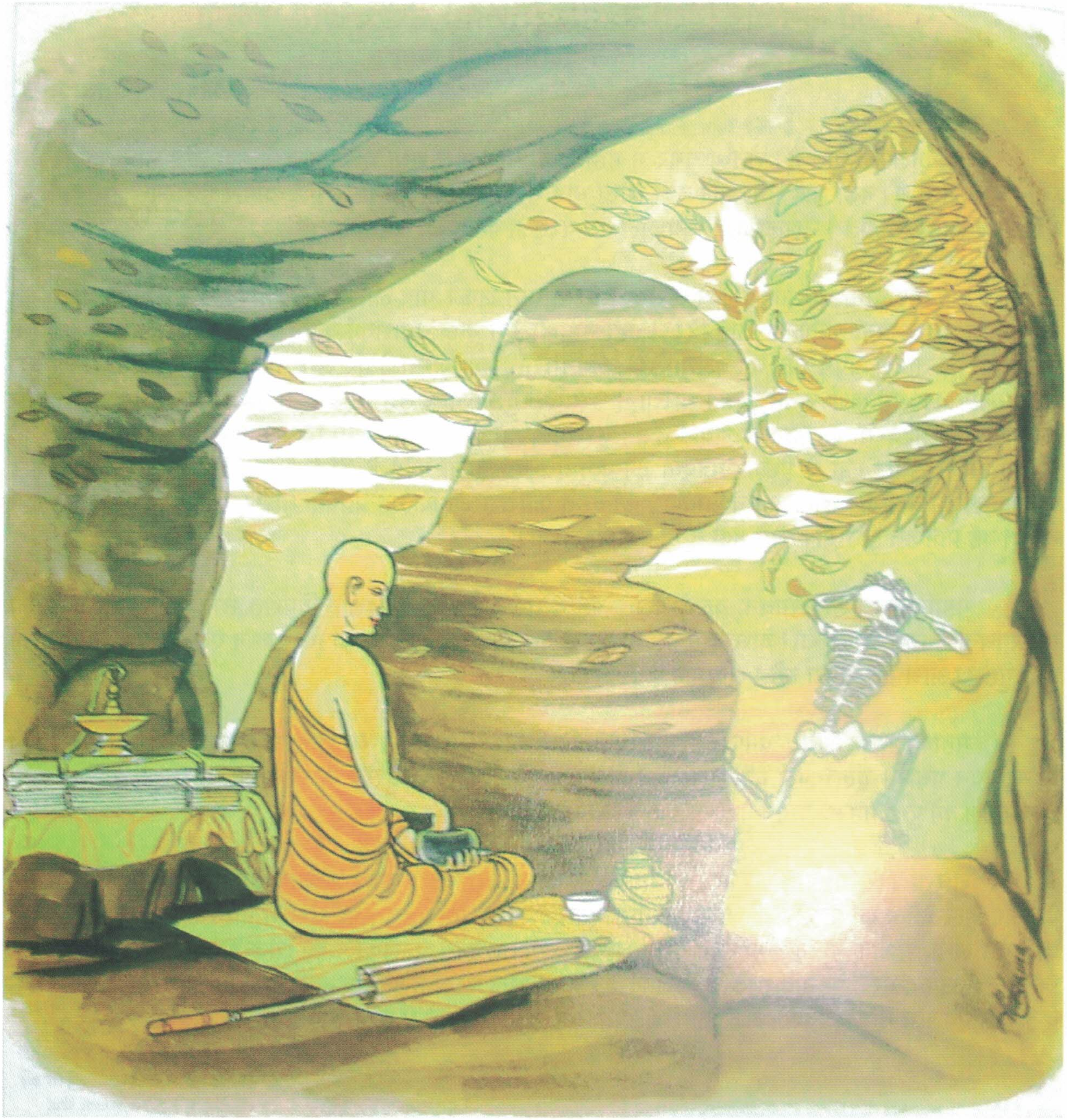
एक बार दोनों भाई गाड़ियों में खरीदा हुआ सामान लेकर गाँव लौट रहे थे। रास्ते में उन्होंने श्रावस्ती एवं जेतवन के बीच अपना काफिला रोक दिया। वहाँ महाकाल ने कुछ उपासकों को बुद्ध का उपदेश सुनने जाते हुए देखा। उत्सुकतावश अपने भाई को बैलगाड़ियों की निगरानी का जिम्मा देकर स्वयं शास्ता की धर्मसभा में जाकर, उन्हें प्रणाम कर धर्म कथा सुनने लगा। शास्ता ने उस दिन दु:खस्कन्धसूत्र पर प्रवचन दिया। यह सुनकर महाकाल को शरीर की नश्वरता का भान हो गया। उसने तुरंत प्रव्रज्या लेने का मन बना लिया। शास्ता के पास प्रव्रज्या की प्रार्थना लेकर गया। बुद्ध ने पूछा, "प्रव्रज्या की अनुमति देने वाला कोई है ?" तब महाकाल ने अपने छोटे भाई चूल्लकाल को बुलाया। छोटे भाई ने समझाने की बहुत कोशिश की कि वह प्रव्रज्या धारण न करे पर महाकाल नहीं माना। वह प्रव्रजित हो गया। छोटे भाई ने भी प्रव्रज्या ले ली।

महाकाल श्मशान साधना करते-करते अर्हत्व तक पहुँच गया। इसके विपरीत छोटे भाई चूल्लकाल का मन साधना में नहीं लगता था। वास्तव में वह विहार में यह सोचकर रह रहा था कि एक न एक दिन अपने भाई को पुन: गृहस्थ आश्रम में वापस खींच लाएगा।

महाकाल के अर्हत्व प्राप्ति के बाद एक दिन शास्ता भिक्षुगण के साथ चारिका करते हुए सेतव्य में सिन्सपावन पधारे। चूल्लकाल की पत्नियों ने जब सुना कि शास्ता भिक्षुसंघ के साथ सेतव्य पधारे हैं तो उन्होंने चूल्लकाल को पुन: गृहस्थ बनाने के लिए एक योजना बनाई।

शास्ता और भिक्षुसंघ को भोजन दान के लिए आमंत्रित किया गया। 'व्यवस्था ठीक है या नहीं' यह देखने के लिए चूल्लकाल को पहले भेजा गया। लेकिन चूल्लकाल के वहाँ पहुँचने पर उसकी पत्नियाँ उसे तरह-तरह के ताने देने लगीं, मजाक करने लगीं तथा वस्त्र खींचने लगीं। उन्होंने चूल्लकाल का चीवर उतार दिया और उसकी जगह उसे सफेद वस्त्र पहनाकर विहार भेज दिया। चूल्लकाल को प्रव्रजित हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था। उसे बुद्ध, धर्म एवं संघ में कोई विशेष श्रद्धा नहीं थी।अत: उसे चीवर छोड़ने में कोई संकोच नहीं हुआ।





गाथाः असुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं, सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो, वातो सेलं व पब्बतं।।8।।

अर्थः जो व्यक्ति काम भोग में लीन नहीं रहता, जिसकी इन्द्रियाँ उसके अधीन हैं, जिसे भोजन की सही मात्रा का ज्ञान है, जो आलसी नहीं है, मार उसे उसी प्रकार हिला नहीं सकता जैसे वायु एक चट्टान का कुछ बिगाड़ नहीं पाती।

जो चट्टान की तरह है, मार जैसा तूफान उसका क्या बिगाड़ेगा?

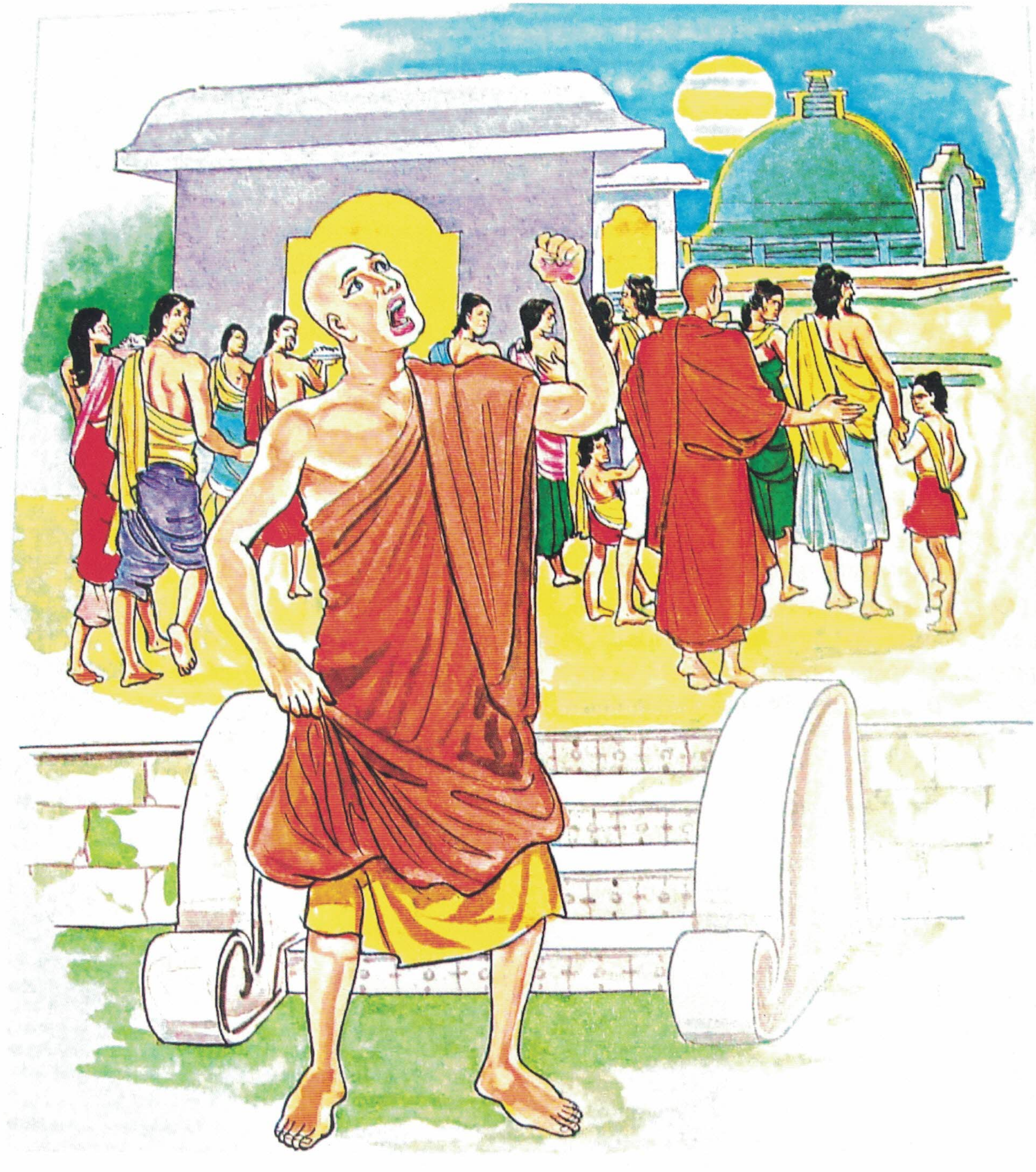
महाकाल-चूल्लकाल की कथा

बुद्ध भिक्षु संघ के साथ आए। भोजन-दान हुआ। अनुमोदन हुआ। शास्ता भिक्षु संघ के साथ चले गए।

महाकाल की पत्नियों ने भी सोचा कि महाकाल को भी गृहस्थ बना लिया जाए। अतः शास्ता तथा भिक्षुसंघ को भोजन दान के लिए एक बार फिर अगले दिन निमंत्रित किया गया। पर उस दिन पूर्व व्यवस्था देखने के लिए महाकाल को न भेजकर किसी अन्य भिक्षु को भेजा गया। उस भिक्षु ने वहाँ जाकर व्यवस्था देख ली। महाकाल की पत्नियाँ वह सब कुछ नहीं कर पाईं जिसे चूल्लकाल की पत्नियों ने किया था। चूल्लकाल की दो पत्नियाँ थीं और महाकाल की आठ। महाकाल की पत्नियों ने भोजन दान के उपरान्त शाक्य-मुनि से आग्रह किया कि महाकाल को भक्तानुमोदन के लिए छोड़ दें। शास्ता ने इसकी स्वीकृति दे दी और भिक्षुसंघ के साथ स्वयं विहार के लिए निकल पड़े । गाँव से बाहर आते ही भिक्षुओं ने बुद्ध से प्रश्न किया " आपने जान बूझकर महाकाल को छोड़ दिया या अनजाने में ही वह छूट गया ?" चूल्लकाल का अनुभव उनके मन को कचोट रहा था। उन्होंने कहा, "भन्ते ! महाकाल एक सीधे स्वभाव वाला, शीलवान भिक्षु है। संभव है उसके परिवार वाले उसे पुनः गृहस्थ बना दें। चूल्लकाल की तो सिर्फ दो पत्नियाँ हैं, महाकाल की तो आठ ।" शाक्य-मुनि ने रुककर भिक्षुओं को समझाया, "तुम चूल्लकाल और महाकाल को एक जैसा मानकर गलती कर रहे हो। चूल्लकाल और महाकाल दोनों एक जैसे नहीं हैं। चूल्लकाल तो विहार में रहता हुआ भी सदैव गृहस्थ जीवन का ही चिंतन किया करता था। वह इस प्रकार व्यवहार करता था जैसे वह नदी के किनारे का एक दुर्बल वृक्ष हो, जो जरा सी हवा के झोंके से उखड़ कर गिर सकता है। दूसरी ओर महाकाल प्रव्रज्या लेने के बाद गृहस्थ जीवन को एक बाधा के रूप में देखता रहा है। वह तो एक चट्टान की तरह है जिस पर किसी भी तूफान का कोई असर नहीं पड़ता।"

उधर महाकाल की पत्नियाँ भी चूल्लकाल की पत्नियों की तरह पति के चीवर बदलने की कोशिश करने लगीं। महाकाल ने तुरंत परिस्थिति की गंभीरता को भाँप लिया। वे अपने ऋद्धिबल से घर की छत तोड़कर बाहर निकल गए और गाँव के बाहर वहाँ जा पहुँचे जहाँ भिक्षुगण शाक्य-मुनि से उनके विषय में ही चर्चा कर रहे थे।





गाथाः अनिक्कसावो कासावं, यो वत्थं परिदहेस्सति।
अपेतो दमसच्चेन, न सो कासावमर्हित।।9।।

अर्थः जिसने अपने मन को स्वच्छ नहीं किया है और काषाय वस्त्र धारण करता है, सत्य और संयम हीन ऐसा व्यक्ति, काषाय-वस्त्र धारण करने का अधिकारी नहीं है।

काषाय वस्त्र का अधिकारी कौन?

देवदत्त की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार अग्रस्रावक सारिपुत्र तथा महामोग्लान अपने भिक्षुओं के साथ राजगृह में चारिका के लिए निकले। राजगृह वासी उन्हें दो, तीन या बड़े समूह में दान देने लगे। भन्ते सारिपुत्र ने उन्हें दान की महिमा समझाते हुए बताया, "1.कोई व्यक्ति अगर स्वयं दान तो करता है पर दूसरों को दान के लिए प्रेरित नहीं करता, वह अगले जन्म में स्वयं तो भोग-ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है परन्तु परिवार-सम्पत्ति प्राप्त नहीं करता। 2. कोई व्यक्ति जो स्वयं तो दान नहीं करता पर दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित करता है वह अगले जन्म में परिवार सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है पर स्वयं कोई भोग-ऐश्वर्य प्राप्त नहीं करता। 3. जो व्यक्ति न तो स्वयं दान देता है और न दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित करता है वह अगले जन्म में न तो कोई परिवार सम्पत्ति प्राप्त करता है और न स्वयं कोई भोग-ऐश्वर्य प्राप्त करता है, उसे भोजन भी दुर्लभ हो जाता है। इसके विपरीत चौथे किस्म का आदमी वह होता है जो स्वयं भी दान देता है और दूसरों को भी दान देने के लिए प्रेरित करता है। ऐसा व्यक्ति अगले जन्म में स्वयं सैकड़ों, हजारों गुना भोग-ऐश्वर्य प्राप्त करता है और साथ ही साथ उसी मात्रा में परिवार-सम्पत्ति भी पाता है और इन भोगों का उपभोग भी करता है।"

दान की महिमा सुनकर एक समझदार पुरुष ने विचार किया, "दान की महिमा बड़ी ही अपरंपार है। क्यों न भोजन के लिए भिक्षुओं को निमंत्रित किया जाए ?" यह सोचकर उसने भिक्षु संघ को अपने आवास पर अगले दिन भोजन के लिए निमंत्रित किया तथा घर-घर घूमकर लोगों से दान ले लिया, जिससे भोजन-व्यवस्था अच्छी तरह हो सके। किसी धनी व्यक्ति ने उस उपासक को एक बहुमूल्य कपड़ा देते हुए कहा, "अगर भोजन-दान का आयोजन करने में पैसों की कमी पड़ जाए तो इस बहुमूल्य कपड़े को बेच देना और उस पैसे से बची हुई कमी पूरी कर देना। अगर कमी न पड़े तो फिर इस कपड़े को किसी योग्य भिक्षु को दान कर देना।"

कार्यक्रम का आयोजन ठीक से हो गया। किसी चीज की कमी नहीं पड़ी। तब उस उपासक ने अन्य दानकर्त्ताओं से कहा, "दान कर्म बिना पैसों की कमी के पूरा हो गया। इस कपड़े को किसे दिया जाए ?" किसी ने सुझाव दिया, "स्थविर सारिपुत्र ही इसके योग्य हैं।" किसी अन्य ने कहा, "भिक्षु देवदत्त धान पकने के समय से ही हम लोगों के साथ रह रहा है, अत: यह वस्त्र उसे ही दे दिया जाए।" विचार-विमर्श हुआ। बहुमत भिक्षु देवदत्त के साथ था। अत: वह वस्त्र देवदत्त को दे दिया गया। देवदत्त के पास काषाय की कमी नहीं थी। भिक्षु संघ का नियम था कि अगर किसी को इस प्रकार का दान मिल जाता है और उसके पास पहले से ही काषाय है तो फिर उस वस्त्र को संघ को दे देना पड़ता था। जिस भिक्षु को वस्त्र की आवश्यकता होती, वह वस्त्र उसे ही दे दिया जाता। देवदत्त ने उस वस्त्र को भिक्षु संघ को नहीं दिया। वरन् उस वस्त्र को लेकर उसे अपने अनुरूप कटवाकर, सिलवाकर और रंगकर धारण करने लगा।





गाथाः यो च वन्तकसावस्स, सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन, स वे कासावमर्हित।।10।।

अर्थ: जिसने अपने मन को स्वच्छ कर दिया है और तब वह काषाय वस्त्र धारण करता है, सत्य और संयम युक्त ऐसा व्यक्ति काषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी है।

देवदत्त, तुम्हारे ऊपर यह काषाय नहीं शोभता
देवदत्त की कथा

आम जनता ने देवदत्त को वह वस्त्र धारण किए देखा। वे अपने आपको रोक नहीं सके और आपस में कहने लगे, "यह वस्त्र देवदत्त के ऊपर शोभा नहीं देता। इसके सही पात्र तो भन्ते सारिपुत्र लगते हैं।"

बुद्ध उन दिनों श्रावस्ती में विराजमान थे। कुछ समय बाद एक भिक्षु राजगृह से श्रावस्ती पहुँचा और शाक्य मुनि के सम्मुख पहुँच, उन्हें सादर प्रणाम कर एक किनारे बैठ गया। शास्ता ने उससे कुशल-मंगल पूछा। बातचीत के क्रम में उसने राजगृह की घटना बताई कि किस प्रकार देवदत्त नूतन वस्त्र धारण कर विचरण कर रहा था और लोगों में इस बारे में आक्रोश था। इन बातों को सुनकर शाक्य मुनि ने कहा, "भिक्षुगण ! ऐसी घटना पहली बार नहीं हुई है कि सही पात्र न होने पर भी देवदत्त ने ऐसे कीमती कपड़े पहने हैं। पूर्व जन्म में भी वह ऐसा कर चुका है।" ऐसा कहकर शाक्य-मुनि ने भूतकाल की कथा सुनाई।

पूर्वकाल में जब वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज करते थे तब एक गजघातक हाथियों को मारकर, उनसे प्राप्त दाँत, नख, आँत, मांस आदि बेचकर जीवन-यापन करता था। उन दिनों पच्चेक बुद्ध जंगल में साधना करते थे।जंगल में विचरण करते समय हाथी जब भी पच्चेक बुद्ध को देखते तो वे उन्हें झुककर प्रणाम कर आगे बढ़ते थे। एक दिन गजघातक ने यह देखा तो सोचा, "इन हाथियों को मारना बड़ा ही आसान है। अगर मुझे भी कहीं से काषाय वस्त्र मिल जाये तो उसे पहनकर मैं इन हाथियों को आसानी से मार सकूँगा।" ऐसा विचार कर वह काषाय वस्त्र की खोज में लग गया। एक दिन उसने किसी भिक्षु को वस्त्र उतार, तालाब में स्नान करते हुए देखा। उसने भिक्षु का वस्त्र चुरा लिया। वह उसे ओढ़ कर बैठने लगा। हाथी जब उसे प्रणाम कर आगे बढ़ते तो वह अंतिम हाथी को भाला मारकर उसकी हत्या कर दिया करता था। उसका दाँत आदि निकालकर बेच देता था तथा बचा-खुचा अंश धरती में गाड़ देता था।

आगे चलकर एक बोधिसत्व हाथियों के राजा बने। वह बोधिसत्व हाथी भी, अपने पूर्वजों की आदत के अनुसार, गजघातक को प्रणाम कर आगे बढ़ता था।एक दिन हस्तीराज ने अपने साथियों से विचार किया, "लगता है, हमारी संख्या प्रतिदिन घटती जा रही है। अगर कोई हाथी यहाँ से कहीं जाता तो बिना बताये नहीं जाता। अवश्य ही कोई हमारे साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार कर रहा है। मुझे उस काषायधारी पर शक हो रहा है।"एक दिन सभी हाथियों से मंत्रणा कर गजराज ने हस्ति-समूह को आगे भेज दिया और स्वयं सबसे अंत में चला।

प्रतिदिन की तरह उस हत्यारे ने हाथियों के प्रणाम कर चले जाने पर, राजा-हाथी पर भाला फेंक दिया। हाथी सावधान था, वह मुड़ गया और भाले के वार से बच गया। उसने उस गजघातक को पकड़ लिया और उससे पूछा कि क्या उसने हाथियों की हत्या की थी। हत्यारे ने अपनी गलती स्वीकार कर ली। तब हस्तिराज ने सोचा, "अगर मैं इसकी हत्या कर देता हूँ तो हजारों बुद्ध, पच्चेक बुद्ध और क्षीणास्रव भिक्षुओं को यह सोचकर लज्जा होगी कि काषायधारी भी जीव-हत्या करते हैं।" ऐसा सोचकर हाथी ने उस घातक के प्राण नहीं लिये और उससे यह कहा, "संसार से विरक्त भिक्षुओं के वस्त्र पहनकर तुमने हत्या करके बहुत बड़ा पाप किया है। तुम उस काषाय वस्त्र के अधिकारी नहीं थे। जो व्यक्ति भीतर से निर्मल और पवित्र है वही काषाय वस्त्र का अधिकारी है।"

शाक्य मुनि ने कथा सुनाते हुए बताया, "उस जन्म में हाथियों की हत्या करने वाला देवदत्त था और हाथियों का राजा मैं था। इस प्रकार अधिकारी न होते हुए भी देवदत्त ने भूतकाल में भी काषाय वस्त्र धारण किया था। "ऐसा कहकर शास्ता ने ये दो गाथाएं सुनाई।



गाथाः असारे सारमतिनो, सारे चासारदस्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति, मिच्छासंकप्पगोचरा।।11।।

अर्थ: जो सार को निःसार और निःसार को सार समझता है ऐसे गलत चिंतन वाले व्यक्ति को सार प्राप्त नहीं होता।

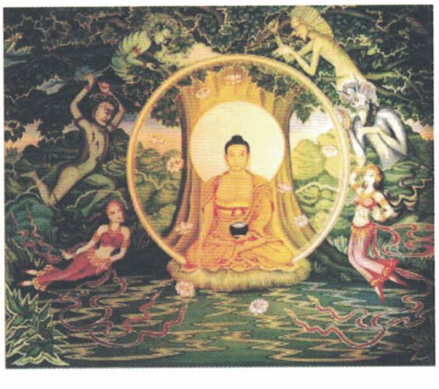
किसे सार प्राप्त नहीं होता?
स्थविर सारिपुत्र की कथा

स्थान : राजगृह (वेणुवन)

शाक्य-मुनि के पृथ्वी पर पदार्पण के पहले से ही राजगृह के पास उपतिष्य तथा कोलित नाम के दो गाँव थे। जिस दिन उपतिष्य गाँव की 'सारी' नामक ब्राह्मणी ने गर्भधारण किया, उसी दिन कोलित गाँव की 'मोग्गली' नाम की ब्राह्मणी ने भी गर्भधारण किया। यह संयोग की बात थी कि दोनों ब्राह्मणियों ने एक ही दिन गर्भधारण किया। इन दोनों परिवारों में सात पीढ़ियों से गाढ़ी मित्रता थी। समय आने पर दोनों परिवारों में पुत्र पैदा हुए। सारी ब्राह्मणी के पुत्र का नाम उपतिष्य रखा गया और मोग्गली ब्राह्मणी के पुत्र का नाम कोलित रखा गया। उम्र आते ही वे दोनों सर्वगुणसम्पन्न हो गए।

उन दिनों राजगृह में प्रत्येक वर्ष 'गिरिजसमज्ज' नामक मेला लगता था। दोनों मित्र एक ही मंच पर बैठकर मेला देखते। हँसने की बात पर हँसते थे, उदासी की बात पर उदास होते थे तथा दान देने के अवसर पर उचित दान देते थे। इस प्रकार एक बार, अपने प्रारब्ध के अनुसार, वे हँसने की बात पर भी चुप रहे, रोने की बात पर भी मौन रहे तथा दान का अवसर आने पर भी कुछ नहीं किया। वे दोनों चुपचाप कुछ इस प्रकार सोचते रहे, "इस मेले में क्या रखा है ? सौ साल के अन्तराल में सब कुछ ही खत्म हो जायेगा। हमें तो इस संसार रूपी मेले से छुट्टी पानी चाहिए।" इस प्रकार जब दोनों शांत बैठे थे तब कोलित ने उपतिष्य से पूछा, "बन्धु उपतिष्य ! आज तुम प्रतिदिन की तरह प्रसन्न न दिखकर चिंतित दिख रहे हो। क्या बात है ?" "कोलित ! इस मेले में क्या रखा है ? समय के अन्तराल में सब कुछ नष्ट हो जाएगा। हम भी नष्ट हो जायेंगे। अत: मैं सोच रहा हूँ कि इससे मुक्ति कैसे मिले। परन्तु मित्र ! आज तो तुम भी उदास बैठे हुए हो। तुम्हारी उदासी का क्या कारण है ? " कोलित ने कहा, "बन्धु ! मैं भी वही सोच रहा हूँ जो तुम सोच रहे हो। हम दोनों की ही सोच ठीक है। पर मुक्ति के लिए तो प्रव्रज्या लेनी होगी। किससे प्रव्रज्या ली जाए ? "

उन दिनों राजगृह में संजय नाम का एक परिव्राजक अपने शिष्यों के विशाल समूह के साथ रहता था। उपतिष्य तथा कोलित ने उसी से प्रव्रज्या लेने का विचार किया। वे उसके पास गए, उससे प्रव्रज्या ग्रहण की और बहुत जल्द ही संजय द्वारा बताये सारे सिद्धान्तों को पूरी तरह हृदयंगम कर गए। तब उन्होंने संजय से पूछा, "आचार्य ! हमने आपके द्वारा बताये सारे सिद्धान्तों को हृदयंगम कर लिया। अब आगे कुछ बताइए।" "आगे बताने के लिए कुछ नहीं है। जितना मालूम था, उतना बता दिया।" यह सुनकर दोनों मित्रों ने राय की, "इस आचार्य के पास रहने से कोई फायदा नहीं है। आर्यावर्त्त बहुत विशाल देश है। अगर हम यहाँ घूमेंगे तो निश्चय ही कोई न कोई सही आचार्य मिल जाएगा।" ऐसा सोचकर दोनों मित्र पूरे जम्बूद्वीप घूमते रहे। उन्हें एक के बाद एक आचार्य मिलते गए पर जब वे उन आचार्यों से शंका समाधान के लिए प्रश्न करते तो वे उत्तर नहीं दे पाते थे। कुछ समय के बाद उन दोनों ने अनुभव किया कि अब और अधिक भटकना बेकार है। अत: हार-थककर वे राजगृह वापस आ गए और परस्पर निर्णय लिया, "हममें से जिसको भी सत्य की पहले अनुभूति होगी, वह दूसरे को तुरंत सूचित करेगा।"





गाथाः सारं च सारतो ञत्वा, असारं च असारतो ।
ते सारं अधिगच्छन्ति, सम्मासंकप्पगोचरा ।।12।।

अर्थः जो सार को सार और निःसार को निःसार समझता है ऐसे शुद्ध चिंतन वाले व्यक्ति को सार प्राप्त हो जाता है ।

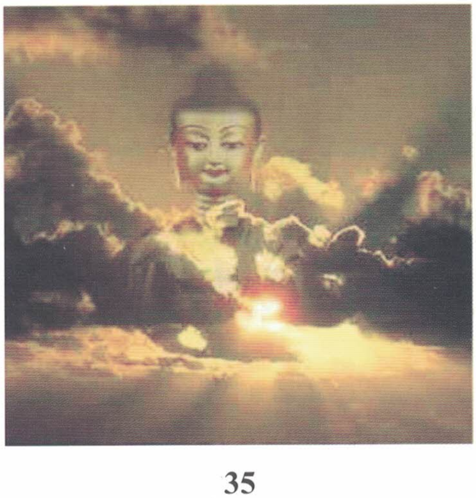
किसे सार प्राप्त होता है?
स्थविर सारिपुत्र की कथा

इस प्रकार विचार कर दोनों अपनी-अपनी साधना में लग गए। उसी समय शाक्य मुनि राजगृह पधारे। वे वेणुवन में रह रहे थे। उनके साथ पंचवर्गीय भिक्षुओं में से अश्वजित नाम का भिक्षु भी आया । उसने किसी दिन भिक्षाटन के लिए नगर में प्रवेश किया। उसी समय उपतिष्य भी भिक्षाचर्या हेतु निकल पड़ा। रास्ते में उपतिष्य ने अश्वजित को देखकर मन ही मन सोचा, "मैंने आज तक ऐसा तेजस्वी परिव्राजक नहीं देखा है। क्यों न मैं इससे बातें करूँ तथा इसके आचार्य आदि के बारे में पुछूँ ?" अतः सही अवसर पाकर उपतिष्य अश्वजित के पास गया तथा उनसे उनके बारे में पूछा। अश्वजित स्थविर ने "जो धर्म हेतु उत्पन्न है" गाथा सुनाई। दो पद सुनते ही उपतिष्य स्रोतापन्न हो गया। फिर आचार्य ने शाक्य मुनि के विषय में बताया जो उस समय राजगृह के वेणुवन में वास कर रहे थे। उपतिष्य ने अश्वजित से आज्ञा ली और कोलित के पास गया तथा उसे भी स्थविर द्वारा सुनाई गई गाथा सुनाई। उसे सुनते ही वह भी स्रोतापन्न हो गया। तब दोनों मित्रों ने शाक्य मुनि के पास जाकर उनसे आशीर्वाद लेने का विचार किया। सोचा " अपने आचार्य संजय को भी साथ ले चलते हैं।" ऐसा सोचकर दोनों शिष्य संजय के पास गये तथा उससे शाक्य मुनि के पास चलने के लिए आग्रह किया। पर संजय इसके लिए तैयार नहीं हुआ। जब शिष्यों ने इसका कारण पूछा तो संजय ने उत्तर दिया, "मैंने उच्च कुल के महाजनों का गुरू बनकर अभी तक जीवन यापन किया है। अब मेरे लिए किसी का शिष्य बनना असंभव है।" दोनों शिष्यों ने समझाने की पूरी कोशिश की पर संजय तैयार नहीं हुआ तथा उनसे कहा, "संसार में बुद्धिमान की तुलना में मूर्ख अधिक हैं। अतः बुद्धिमान अगर शाक्य मुनि के पास जायेंगे तो मूर्ख तो मेरे ही पास आयेंगे।" ऐसा सुन उपतिष्य और कोलित दोनों शास्ता से मिलने चल पड़े। संजय के अधिकांश शिष्य भी उन दोनों के पीछे हो लिए। संजय यह आघात बर्दाश्त नहीं कर पाया और वहीं तुरंत उसकी मृत्यु हो गयी। उधर उपतिष्य और कोलित शास्ता के पास पहुँचे और उनसे प्रव्रज्या की प्रार्थना की। शास्ता ने दोनों को प्रव्रज्या दी । उन्होंने बुद्ध को बताया कि किस प्रकार उन्होंने बहुत कोशिश की कि संजय त्रिरत्न की शरण मे आयें पर वह तैयार नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद कोलित (महामोग्लान के रूप में) तथा उसके बाद उपतिष्य (सारिपुत्र के रूप में) अर्हत हो गये।

शाक्य मुनि ने समझाया, "अपनी गलत दृष्टि के कारण संजय एक मूर्ख की तरह असार को सार और सार को असार समझ बैठा था। इसके विपरीत मोग्लान तथा सारिपुत्र समझदार थे और उन्होंने असार को असार तथा सार को सार समझ लिया था।"

तब शास्ता ने ये दो गाथायें सुनाईं।

आगे चलकर महामोग्लान तथा सारिपुत्र दोनों ही तथागत के प्रधान तथा श्रेष्ठ शिष्य बन गए।





गाथाः यथा अगारं दुच्छन्नं, वुट्ठी समतिविज्झति।
एवं अभावितं चित्तं, रागो समतिविज्झति।।13।।

अर्थः जैसे यदि घर की छत ठीक न हो तो उसमें वर्षा का पानी घुस जाता है, उसी प्रकार असंयमित मन में राग घुस जाता है।

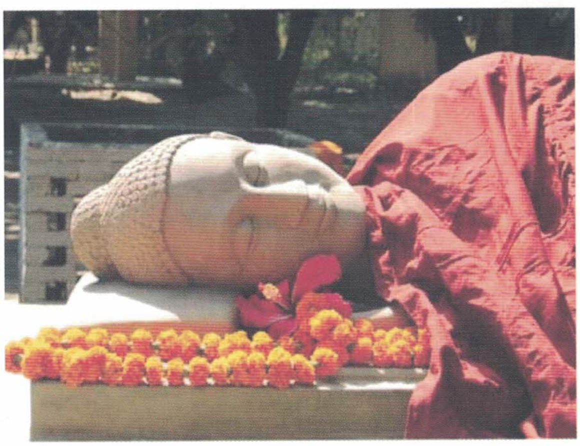
किसके चित्त में राग घुसता है?
नन्द स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

राजकुमार सिद्धार्थ गृहत्याग (महाभिनिष्क्रमण) के बाद छः वर्षों तक गहरी साधना करते रहे और अंततः उन्होंने बोधगया में बोधि वृक्ष के नीचे सत्य के दर्शन किए।

इन अनेक वर्षों में महाराज शुद्धोदन शाक्य-नायकों के मध्य खिन्न मन से किस प्रकार दिन काटते रहे , कोई नहीं जानता। यशोधरा पति वियोग में कितनी तड़पीं, कितनी व्यथित रहीं, उसका दुख वर्णनातीत है । महाराज और यशोधरा ने भी अपने-अपने तरीके से राजकुमार सिद्धार्थ की खूब खोज-खबर करवाई , पर सब व्यर्थ गई। एक दिन यशोधरा के मुँह से जब यह बात निकली कि 'अब मैं थोड़े दिन की मेहमान हूँ' तब ही अनुचरियों ने सूचना दी कि नगर के दक्षिण तोरण से आए दो व्यापारी कह रहे हैं कि उन्होंने 'शाक्य कुमार' को देखा है। वे जगदाराध्य राजकुमार अब अति शुद्ध महान 'बुद्ध' बन चुके हैं और इसी ओर आ रहे हैं। यह सुनते ही यशोधरा ने, इससे पहले कि उन्हें महाराज अपने पास बुलवा पाते , दूतों के माध्यम से उन्हें अपने महल में बुलवा लिया । पूछने पर 'त्रपुष' नामक व्यापारी बोला- "हे देवी ! हम उन्हें अपनी आँखों से देख कर आ रहे हैं । वे तो राजाओं के भी राजा बन चुके हैं । नगर -नगर , गाँव-गाँव जाकर वे जैसे -जैसे उपदेश देते हैं , लोग उनका अनुसरण कर सुख और शांति पाते हैं। हमने 'गया' के निकट क्षिरिका -वन में उनके उपदेश सुने हैं । चौमासे के पहले ही वे यहाँ आ पहुँचेंगे ।" इसके बाद 'भल्लिक' ने सविस्तार वृतांत सुनाया और बताया कि अब उन्हें 'बुद्ध' नाम से सम्बोधित किया जाता है । वे लोगों को" अष्टमार्ग " और " द्वादश निदान " सुझाते हैं । ज्ञान प्राप्ति पर उन्हें पंचवर्गीय भिक्षुओं का ध्यान आया और वे तुरंत वाराणसी की ओर चल पड़े । वहां उन्होंने उन्हें धर्म चक्र का ज्ञान दिया ,साथ में "मध्यमा प्रतिपदा", "आर्यसत्य " और " अष्टांगमार्ग " में भी दीक्षित किया । इन पांच में से सर्वप्रथम "कौडिन्य" नामक शिष्य दीक्षित हुआ , बाद में "महानाम","भद्रक","वासव"और"अश्वजीत" दीक्षित हुए ।

फिर वाराणसी का "यश " नामक नगर सेठ प्रव्रज्या का अधिकारी बना । यहीं से बुद्ध ने साठ भिक्षुओं को प्रचार हेतु भेजा । फिर राजगृह के निकट "यष्टिवन" पहुँचे जहां महाराज बिंबसार ने परिजनों व पुरजनों सहित उनकी शरण ग्रहण की । इतना कह, यशोधरा से विदा ले दोनों व्यापारी चल दिए । यह समाचार सुने तो महाराज ने तथागत को लिवा लाने के लिए नौ सामंतों को भेजा। वे वेणुवन पहुँचे पर तथागत के उपदेश सुन सबकुछ भूल गए और उनके धर्म संघ में शामिल हो गए। तब उन्होंने अपने सचिव के सूत व सिद्धार्थ के बाल सखा को भेजा। वह भी उनके सम्मुख जाते ही भिक्षु बन गया । पर अवसर देख कपिलवस्तु चलने की प्रार्थना की । बुद्ध कपिलवस्तु पहुँचे और निकट आते ही यशोधरा अधीर हो उनके चरणों पर गिर पड़ी । उन्होंने वहीं यशोधरा को दीक्षा दे स्थिर-चित्त किया । बाद में एक भिक्षु ने शंकालु हो प्रश्न किया कि आपने यशोधरा को अपना आलिंगन क्यों करने दिया । शास्ता ने उत्तर देते हुए समझाया कि महा प्रेम लघु प्रेम को इसी भांति सहारा देता है ।





गाथाः यथागारं सुच्छन्नं, वुट्ठी न समतिविज्झति
एवं सुभावितं चित्तं, रागो न समतिविज्झति ।।14 ।।

अर्थः जैसे यदि घर की छत ठीक हो तो उसमें वर्षा का पानी नहीं घुस पाता, उसी प्रकार संयमित मन में राग नहीं घुस सकता।

किसके चित्त में राग नहीं घुसता है?
नन्द स्थविर की कथा

उधर भूप ने जब सुना कि राजकुमार पुर के द्वार तक आ पहुँचे हैं और भिक्षार्थ नीचों के आगे हाथ फैला रहे हैं तो नृप श्वेत मूछों को ऐंठते, दाँत पीसते, तुरंग पर सवार हो, रोष सहित महल से निकले । पर बुद्ध के सम्मुख पहुँचते ही क्रोध लुप्त हो गया; तथापि इतना कहा कि , "पुत्र ! यह राजपाट ,वैभव आदि सब तुम्हारा है। तुम्हें यहां इसी गौरव गरिमा के साथ आना चाहिए था। " शाक्य मुनि ने उत्तर दिया - " हे तात् ! मर्त्यों की कोई कुल परंपरा होती ही नहीं , कुल परंपरा तो 'बुद्ध- अवतारों' की होती है । "

तत्पश्चात् शास्ता ने महाराज को मोक्ष के आठ सोपान समझाए। इस प्रकार उस रात राज-कुल ने शांति मार्ग पर चलने हेतु मंगलमय प्रवेश किया । राजा शुद्धोदन स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हो गए। बुद्ध की मौसी माँ महापजापति गौतमी ने भी स्रोतापत्तिफल प्राप्त कर लिया। शाक्य मुनि ने राहुल की माता के सद्गुणों का जिक्र कर चन्दकिन्नरी जातक सुनाया।

तीसरे दिन तथागत के छोटे भाई नन्द का विवाह था।

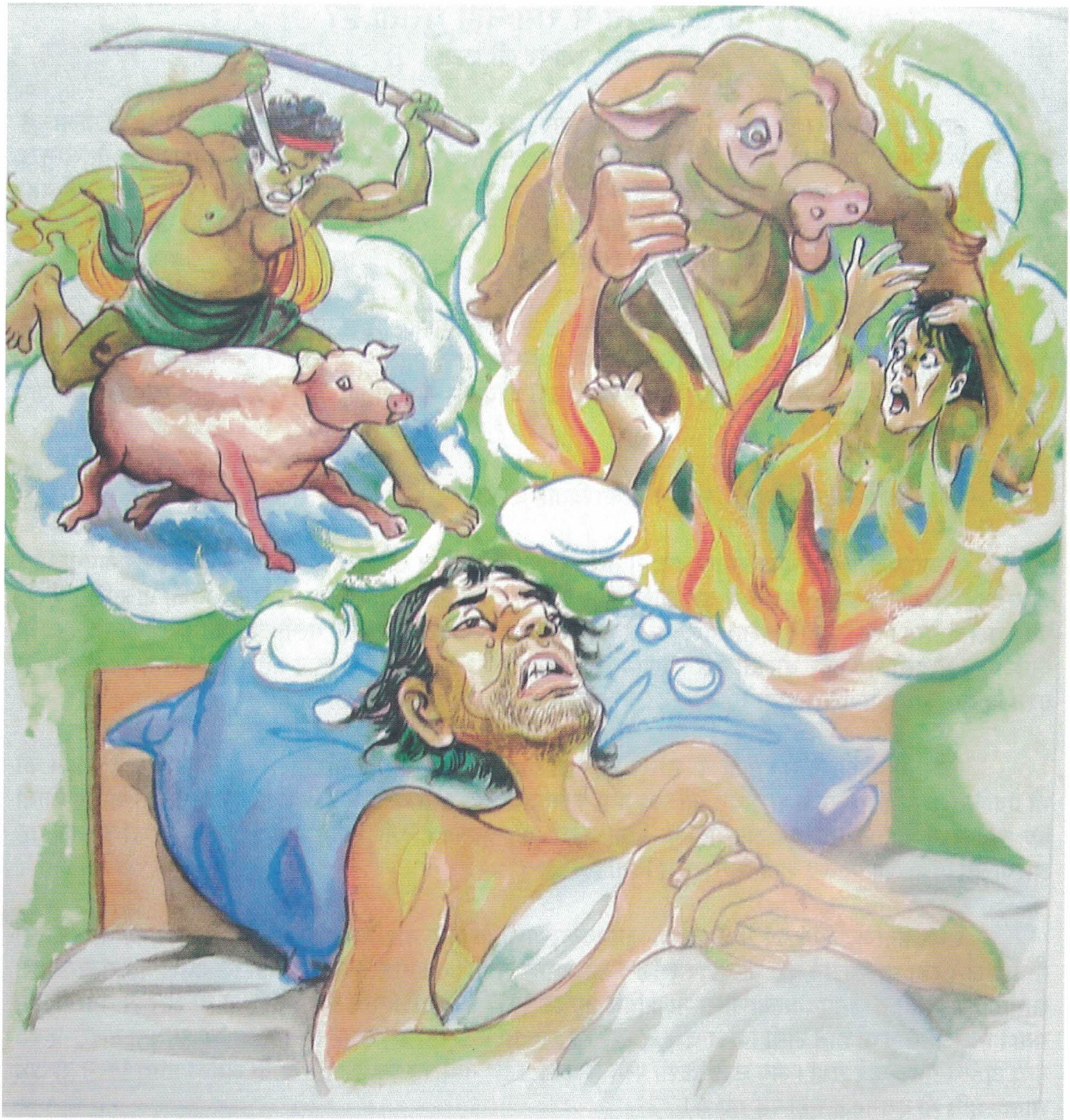
भोजनोपरान्त चलने के समय नन्द ने तथागत का भिक्षा पात्र उठाया। बुद्ध ने नन्द के हाथ से अपना पात्र वापस नहीं लिया। वे अपने आसन से उठे और विहार की ओर चल दिए। शिष्टाचारवश नन्द उनका पात्र लिए पीछे-पीछे चलता गया। शाक्य मुनि चलते गए, चलते गए, रुके नहीं। उधर होने वाली पत्नी, जनपदकल्याणी भी नन्द के पीछे-पीछे दौड़ती गई और बोलती गई , "आर्यपुत्र ! जल्द लौट आइयेगा।" विहार पहुँचने पर तथागत ने नंद से प्रश्न किया, "नन्द, प्रव्रजित होवोगे ? " नन्द 'ना' नहीं कह सका और प्रव्रजित हो गया।

इधर माँ के कहने से राहुल भी शास्ता के पास गया और अपना हक माँगने लगा। तब शास्ता ने राहुल को भी प्रव्रजित कर दिया। राजा शुद्धोदन को जब पता चला तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने तथागत से आग्रह किया कि भविष्य में माता-पिता की अनुमति के बिना बच्चों को प्रव्रजित नहीं किया जाए। शास्ता ने राजा को यह आश्वासन दिया और विनय का नियम बदल दिया।

उधर प्रव्रजित होने पर भी नन्द को जनपदकल्याणी के शब्द बार-बार याद आ रहे थे। उसका मन साधना में नहीं लग रहा था। उसने बुद्ध से चीवर छोड़ने का आग्रह किया। तथागत ने उससे कहा कि अगर वह तन्मयता से साधना करेगा तो वे जनपदकल्याणी से भी अधिक सुन्दर स्त्री दिला देंगे। नन्द ने स्वीकृति दे दी और साधना में लग गया। भिक्षुओं में चर्चा होने लगी कि नन्द स्त्री के लिए साधना कर रहा है। उधर तन्मयतापूर्वक साधना करते-करते नन्द अर्हत्व प्राप्त कर गया। अब उसे किसी स्त्री में कोई रूचि नहीं रह गई थी। नन्द के अर्हत्व प्राप्त करने से अब शाक्य-मुनि भी वचनबद्ध नहीं रह गए थे।

तब शाक्य-मुनि ने ये दो गाथायें सुनाईं।





गाथाः इध सोचति पेच्च सोचति, पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहञ्ञति, दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो।।15।।

अर्थः वह इस लोक में शोक करता है तथा मरणोपरान्त परलोक में शोक करता है। पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने कर्मों के पाप फल को देखकर शोकग्रस्त तथा पीड़ित होता है।

पापी इस लोक में भी दुःख पाता है, उस लोक में भी

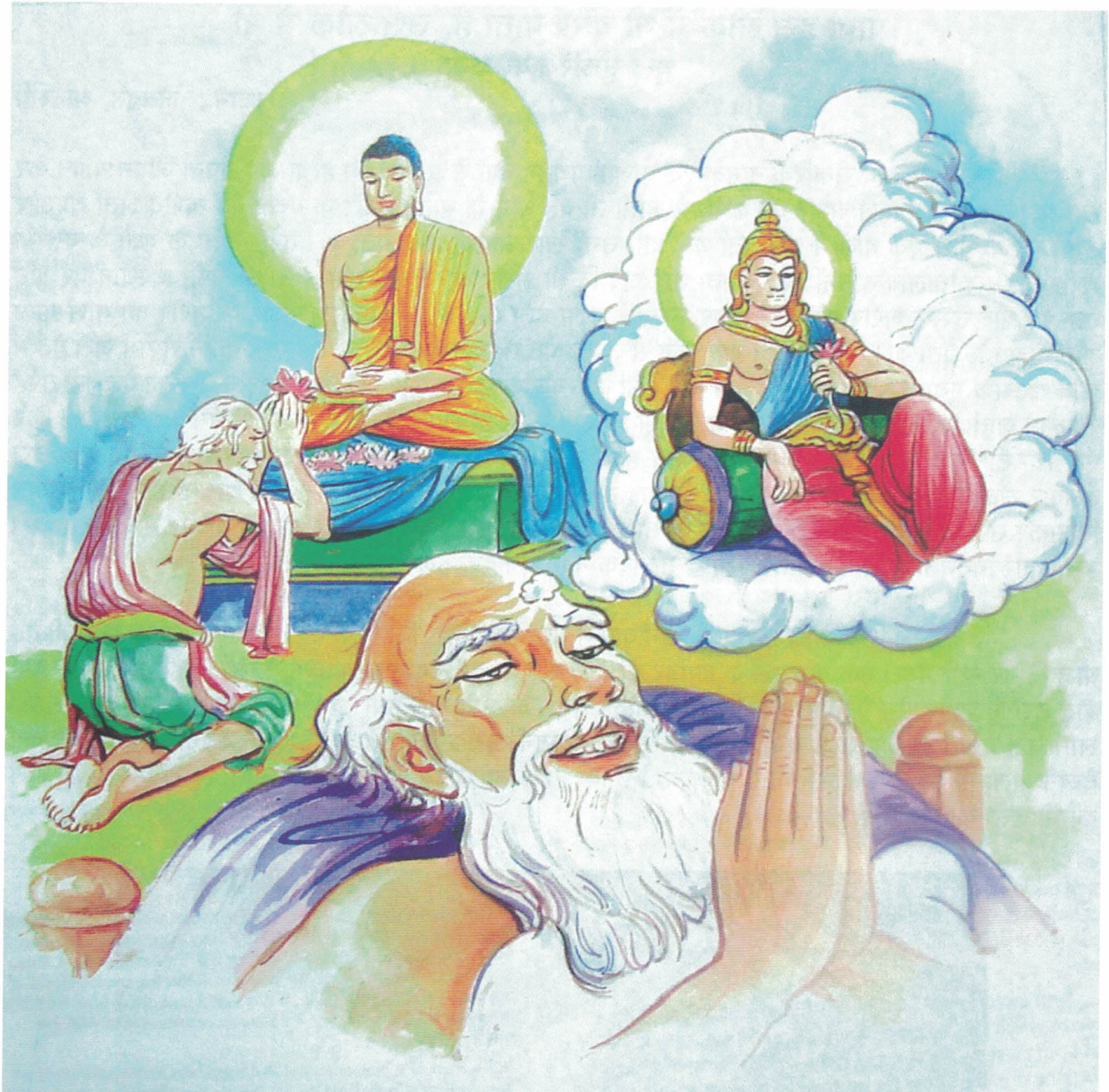
चुन्द सुकरिक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में चुन्द सुकरिक नामक एक कसाई पचपन वर्षों से सूअरों की हत्या कर अपना जीवन यापन कर रहा था। जब उसके पास सूअर की कमी हो जाती तो वह धान के बदले सूअर के बच्चों को खरीद लेता था और अपने घर के पीछे एक बाड़े में रख देता था। वहीं उन्हें खाद्यसामग्री खिलाता था। तरह-तरह के वृक्षों के पत्ते या शरीर का मल खिलाकर उन्हें बड़ा करता था। जब किसी सूअर को मारना चाहता था तो उसे वधस्थान पर बाँध देता था और उसके शरीर को बेंत से मार-मारकर फुला देता था। इस प्रकार उस सूअर के शरीर का मांस गाढ़ा और मोटा हो जाता था। तब बाँस की एक नली से उसके पेट में गर्म जल डालता था। ऐसा करने से गर्म जल पेट में जाकर उसके गुदा से बाहर निकल जाता था। ऐसा बार-बार करता था और इस प्रकार उस सूअर का पेट पूरी तरह साफ हो जाता था। इसके बाद वह गर्म जल डालकर उस सूअर के काले और कड़े बालों को नर्म कर देता था। फिर एक चिमटी से बालों को बेरहमी से उखाड़ता हुआ उसके चमड़े को साफ कर देता था। उसके बाद एक तेज तलवार लेकर उस सूअर का सर काट देता था। खून को एक बर्तन में इकट्ठा कर लेता था। उसके मांस में खून मिलाकर उसे भूनता था और फिर परिवार के साथ बैठकर खाता था। बचे हुए मांस को वह बाजार में बेच देता था। इस प्रकार निर्दयता से जीवन जीते हुए चुन्द सुकरिक ने पचपन वर्षों तक सूअरों की हत्या की।

निर्दयता का सिलसिला यह था कि इन वर्षों में यद्यपि वह बौद्ध विहार के पास ही रहता था पर कभी भी वह बौद्ध विहार नहीं गया। एक कड़छुल के बराबर भी दान नहीं दिया। लगातार पापकर्म में लिप्त रहने के कारण वर्षों बाद उसका शरीर रोग ग्रस्त हो गया। उसका जीवन नरक के समान हो गया। वह घोर कष्ट में जीवन जीने लगा। लोग उसे देखते तो आपस में चर्चा करते कि उसकी कितनी भयंकर स्थिति है । उसकी दयनीय स्थिति देखकर देखने वाला भी आश्चर्य से भर जाता था। कहते हैं कि नरक का जीवन इतना भयावह होता है कि यह देखने वाले को भी त्रस्त कर देता है।





गाथाः इध मोदति पेच्च मोदति, कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति, दिस्वा कम्मविसुद्धमत्तनो।।16।।

अर्थ: वह इस लोक में प्रसन्न होता है तथा मरणोपरान्त परलोक में प्रसन्न होता है। पुण्य करने वाला व्यक्ति दोनों जगह प्रसन्न होता है। वह अपने कर्मों का पवित्र फल देखकर मुदित होता है, आनन्दित होता है।

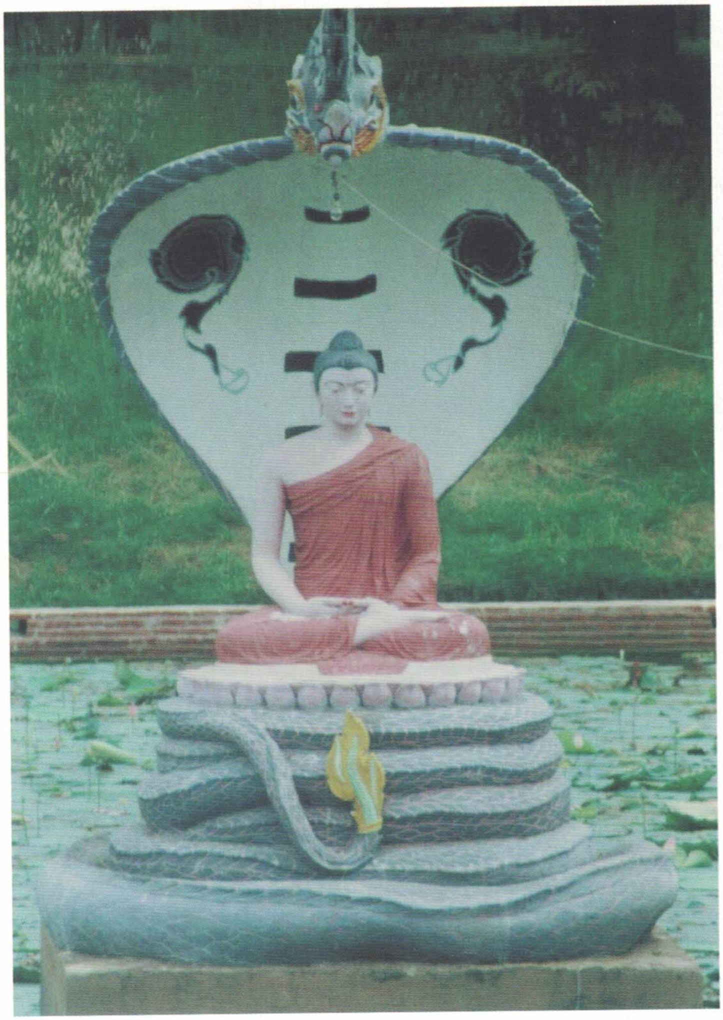
पुण्यात्मा इस लोक में भी सुख पाता है और उस लोक में भी

चुन्द सुकरिक की कथा

सुकरिक सूअर की बोली बोलता, सूअर की तरह अपने शरीर को घसीटता तथा घर के अंदर की चीजें तोड़-फोड़ देता। उसके घर के लोग उसका मुँह बंद कर देते पर वह मुँह खोल लेता था। उसकी चिल्लाहट इतनी तीव्र होती थी कि कभी-कभी पड़ोसियों का रात में सोना भी हराम हो जाता था। घर से बाहर निकलता तो घर वाले उसे जान से मारने की धमकी देते पर उस पर इसका कोई असर नहीं होता। अतः घर वालों ने उसे एक कमरे में बंद कर दिया और बाहर पहरेदार बिठा दिया कि वह बाहर नहीं निकल सके। अब वह विवश होकर कमरे में ही लोटता तथा चिल्लाता। आठवें दिन उसकी मृत्यु हो गई और वह नरक में जा गिरा।

घर के बाहर से जब भिक्षुगण गुजरते तो सोचते कि घर के अन्दर कोई सूअर बोल रहा है। उन्होंने बुद्ध को बताया कि सुकरिक सात दिनों से लगातार सूअर मार रहा था। तब बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाते हुए बताया, "वह सात दिनों से कोई सूअर नहीं मार रहा था। उसका कर्म फल पूरा होकर सामने आ गया था। अतः जीवित रहते हुए भी वह यहीं पर नरक का भोग, भोग रहा था। लोट-पोट करता हुआ अब वह मर गया है तथा नरक में जा गिरा है।"

तब बुद्ध ने ये दोनों गाथाएँ कहीं।





गाथाः	इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति। पापं मे कतं ति तप्पति, भीय्यो तप्पति दुग्गतिं गतो।। 17।।
अर्थः	पापी इस लोक में संतप्त होता है तथा प्राणान्त के बाद परलोक में भी संतप्त होता है। इस प्रकार पाप करने वाला दोनों जगह ही संतप्त होता है। "मैंने पाप किया है" यह सोचकर संतप्त होता है और दुर्गति प्राप्त कर और भी अधिक संतप्त होता है।

पापी सर्वत्र दुःख ही पायेगा

देवदत्त की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह कहानी श्रावस्ती के जेतवन विहार की है। देवदत्त तथागत का ममेरा भाई था। हालाँकि वह उनके संघ में भिक्षु था पर वह भीतर ही भीतर उनसे जलता था और बदला लेना चाहता था। उसने तीन बार बुद्ध की हत्या करनी चाही पर वह सफल नहीं हो पाया। अंततः उसने संघ में फूट डाली, अपने साथ पाँच सौ नए भिक्षुओं को लिया और गयाशीर्ष पर्वत चला गया। सारिपुत्र तथा मोग्लान ने बुद्ध को इस बात की जानकारी दी।

कुछ समय बाद एक दिन सारिपुत्र और मोग्लान गयाशीर्ष पर्वत पहुँचे। देवदत्त ने उन्हें देखा तो बहुत खुश हुआ। उसने भिक्षुओं से कहा, "देखो ! हमारा धर्म कितना महान है कि सारिपुत्र और मोग्लान भी आ रहे हैं।" आदर-सत्कार के बाद देवदत्त भिक्षुओं को प्रवचन देने लगा। पर वह थका हुआ था, उसे नींद आने लगी। उसने सारिपुत्र से आग्रह किया कि वह प्रवचन जारी रखे और स्वयं वहीं लेट गया। उसे नींद आ गई। सारिपुत्र ने प्रवचन जारी रखा। धर्म के सही तत्वों को सुनकर भिक्षुओं की आँखें खुलने लगीं। उनके विचार बदलने लगे और उन्होंने महसूस किया कि उन्हें सही ज्ञान शास्ता के पास ही मिल सकता है, देवदत्त के पास नहीं। वे उठे। सारिपुत्र तथा मोग्लान के साथ हो लिए तथा शाक्य-मुनि के यहाँ जाने के लिए प्रस्थान कर गए। देवदत्त का भिक्षु कोकालित देवदत्त को उठाने लगा, "देवदत्त ! उठो ! उठो !! भिक्षुगण तुम्हें छोड़कर जा रहे हैं।" पर उसकी नींद न खुली, वह सोता रहा।

भिक्षुओं के चले जाने से देवदत्त को बहुत गहरा धक्का लगा। वह बुरी तरह बीमार पड़ गया। उसका मित्र राजा अजातशत्रु भी किसी प्रकार उसकी मदद नहीं कर सका। वह सबों से अलग-थलग पड़ गया।

देवदत्त अब बूढ़ा हो चुका था। उसके अन्दर पश्चाताप की अनुभूति होने लगी। उसका पुराना सम्बन्ध, उसका हृदय कचोटने लगा। उसने सोचा कि तथागत के पास जाकर क्षमा माँग लूँ। शाक्य-मुनि उन दिनों श्रावस्ती में थे। वह चला, रास्ते में पुष्करणी नदी आई। उसने सोचा कि स्नान कर, तैयार होकर शास्ता के पास चलूँ। वह तट पर पहुँचा। नदी में स्नान करने के लिए प्रवेश करने जा ही रहा था कि उसके प्राण निकल गए। मरने से पहले उसने दुःख प्रकट किया, "शाक्य मुनि की शरण के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं है।"

बुद्ध को देवदत्त की मृत्यु का समाचार दिया गया। भिक्षुओं ने उसके विषय में जानना चाहा। बुद्ध ने उन्हें बताया कि देवदत्त ने अनेक पाप किए थे। अतः उसका जीवन दुःखी रहा तथा उसका अंत भी दुःखद रहा। पाप करने के कारण वह सदा दुःखी रहेगा।





गाथाः इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
पुञ्ञं मे कतं ति नन्दति, भीय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो।।18।।

अर्थः पुण्य करने वाला इस लोक में आनन्दित होता है तथा प्राणान्त के बाद परलोक में भी आनन्दित होता है। इस प्रकार पुण्य करने वाला दोनों ही जगह आनन्दित होता है। "मैंने पुण्य किया है" यह सोचकर आनन्दित होता है और सद्गति प्राप्त कर और भी अधिक आनन्दित होता है।

उम्र से कोई बड़ा नही होता, ज्ञान से बड़ा होता है

सुमना की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

अनाथपिंडिक शास्ता के समर्पित शिष्यों में एक था। उसे 'अनाथों के नाथ' के रूप में जाना जाता है। उसने जेतवन में शास्ता के लिए एक बहुत बड़ी धनराशि खर्च कर विहार बनवाया था।

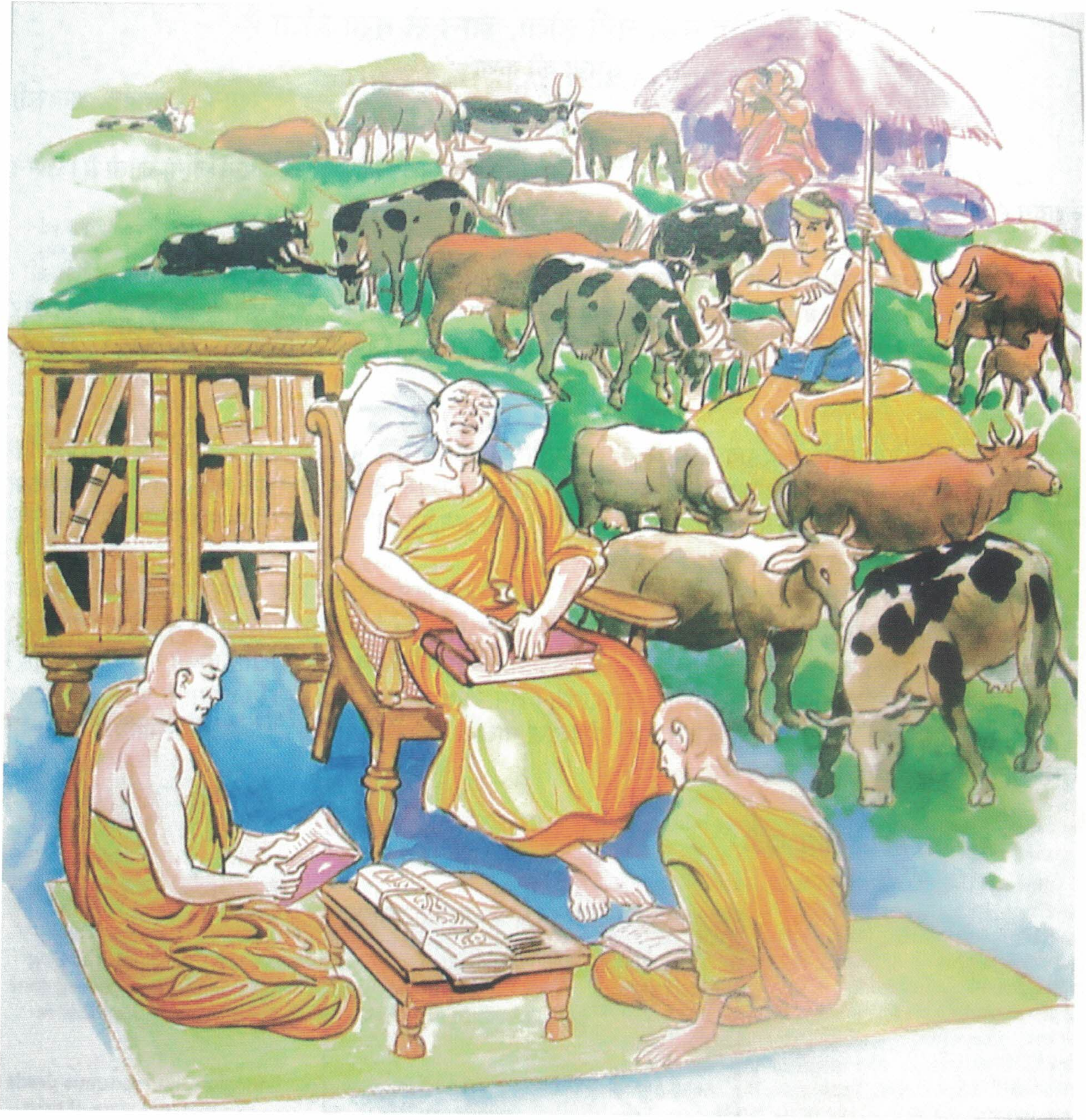
उसकी एक पुत्री थी। उसका नाम सुमना था। वह पिता के धर्म के काम में हाथ बँटाया करती थी। अनाथपिंडिक अपनी बेटी से बहुत खुश था। पर समय पर किसका वश चलता है ? एक बार सुमना बीमार पड़ी और फिर बिस्तर से उठ नहीं सकी। दुनियाँ से ही चल बसी। चलने से पूर्व उसने अपने पिता को "भाई" कहकर संबोधित किया।

अनाथपिंडिक पुत्री के देहावसान पर बहुत दु:खी था और उससे भी अधिक दु:खी था यह सोचकर कि मरने से पहले उसकी बेटी ने उसे "भाई" कहकर पुकारा था। उसका मन विक्षिप्त था। उसे लग रहा था कि मरने से पहले उसकी बेटी ने अपना मानसिक संतुलन खो दिया था। कुछ समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा कैसे हो गया।

बोझिल मन से वह शाक्य-मुनि के पास पहुँचा तथा उन्हें प्रणाम कर बैठ गया। शास्ता ने उसके चेहरे का हाव-भाव देखकर उससे पूछा कि वह इतना परेशान क्यों दिख रहा है। तब अनाथपिंडिक ने अपनी परेशानी का कारण बताया। उसकी समस्या सुनकर बुद्ध ने उसे समझाया, "अनाथपिंडिक ! तुम्हें चिंता करने की बात नहीं है। तुम्हारी पुत्री ने अपना मानसिक संतुलन नहीं खोया था। तुम स्रोतापन्न हो और वह सकृदागामी थी। इस प्रकार आध्यात्मिक सीढ़ी पर वह तुमसे एक कदम आगे थी। इस नाते अगर उसने तुम्हें भाई कहकर संबोधित किया तो तुम्हें इसका बुरा नहीं मानना चाहिए।"

तब उन्होंने यह गाथा कही।





गाथाः बहुं पि चे सहितं भासमनो, न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपो व गावो गणयं परेसं, न भागवा सामञ्ञस्स होति।।19।।

अर्थ: ग्रंथों का कितना भी पाठ करे लेकिन प्रमाद के कारण उन धर्म-ग्रंथों के अनुसार आचरण न करे तो दूसरों की गायें गिनने वाले की तरह वह श्रमणत्व का अधिकारी नहीं होता है।

श्रामण्य का अधिकारी कौन?
दो मित्र भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक बार दो उपासक मित्र शास्ता के संघ में शामिल हो गए। उनमें से एक धर्मोपदेश ध्यान से सुनता था और इसके परिणाम स्वरूप उसके अन्दर कामभोगों की चाह समाप्त हो गई। पाँच वर्षों तक साधना करने के बाद, शास्ता से प्रार्थनाभाव से बोला "भन्ते ! मैंने वृद्धावस्था में प्रव्रज्या ग्रहण की है। अब मेरी स्मृति भी दुर्बल है। अब मैं ग्रंथों को कंठस्थ नहीं कर पाऊँगा। हाँ, मैं विपश्यना की साधना पूरी तन्मयता तथा लगन से करूँगा।" ऐसा सुनकर शाक्य-मुनि ने विपश्यना की कर्म विधि समझा दी। वह भिक्षु हृदय से साधना में लग गया। कुछ समय बाद तपस्या ने रंग दिखाया। वह अर्हत्व प्राप्त कर गया।

दूसरे भिक्षु ने संकल्प किया, "मैं ग्रंथों के माध्यम से अपने कर्त्तव्यों का पालन करूँगा।" ऐसा सोचकर वह बुद्ध वचनों को कंठस्थ करने लगा तथा जहाँ-तहाँ जाकर उन पर धर्म प्रवचन करने लगा। उसका स्वर सुन्दर था। अतः बुद्ध देशना/ उपदेश प्रभावशाली था। इस प्रकार वह कई महासंघों का आचार्य बन गया।





गाथाः अप्पं पि चे सहितं भासमानो, धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
रागं च दोसं च पहाय मोहं, सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा, स भागवा सामञ्ञस्स होति।।20।।

अर्थ: ग्रंथों का थोड़ा ही पाठ करे लेकिन राग, द्वेष तथा मोह रहित होकर धर्म के अनुसार आचरण करे तो ऐसा बुद्धिमान, अनासक्त तथा भोगों के पीछे न दौड़ने वाला व्यक्ति श्रमणत्व का अधिकारी होता है।

श्रामण्य का अधिकारी
दो मित्र भिक्षुओं की कथा

बुद्ध संघ में दो प्रकार के भिक्षु थे। एक वे जो शाक्य-मुनि के उपदेशों को सुनकर उन पर धारा प्रवाह प्रवचन इस प्रकार करते थे कि नौसिखुआ भिक्षुओं के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता था। इस प्रकार वे अपनी विद्वता सिद्ध करते थे। पंडित भिक्षुओं को पंडिताई के अलावा कुछ भी प्राप्त नहीं हो पाता था।

दूसरी श्रेणी के भिक्षु संसार का त्याग कर धर्म और निर्वाण को प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा करते थे। वे धर्म के पथ पर स्वयं चलते थे और अपने अनुभव के आधार पर वे बहुत कुछ प्राप्त कर लिया करते थे । लेकिन जब कभी वाद-विवाद होता तो पंडित भिक्षुओं के वाग्जाल से वे बाहर नहीं निकल पाते थे। पंडित भिक्षुगण बाजी मार ले जाते थे।

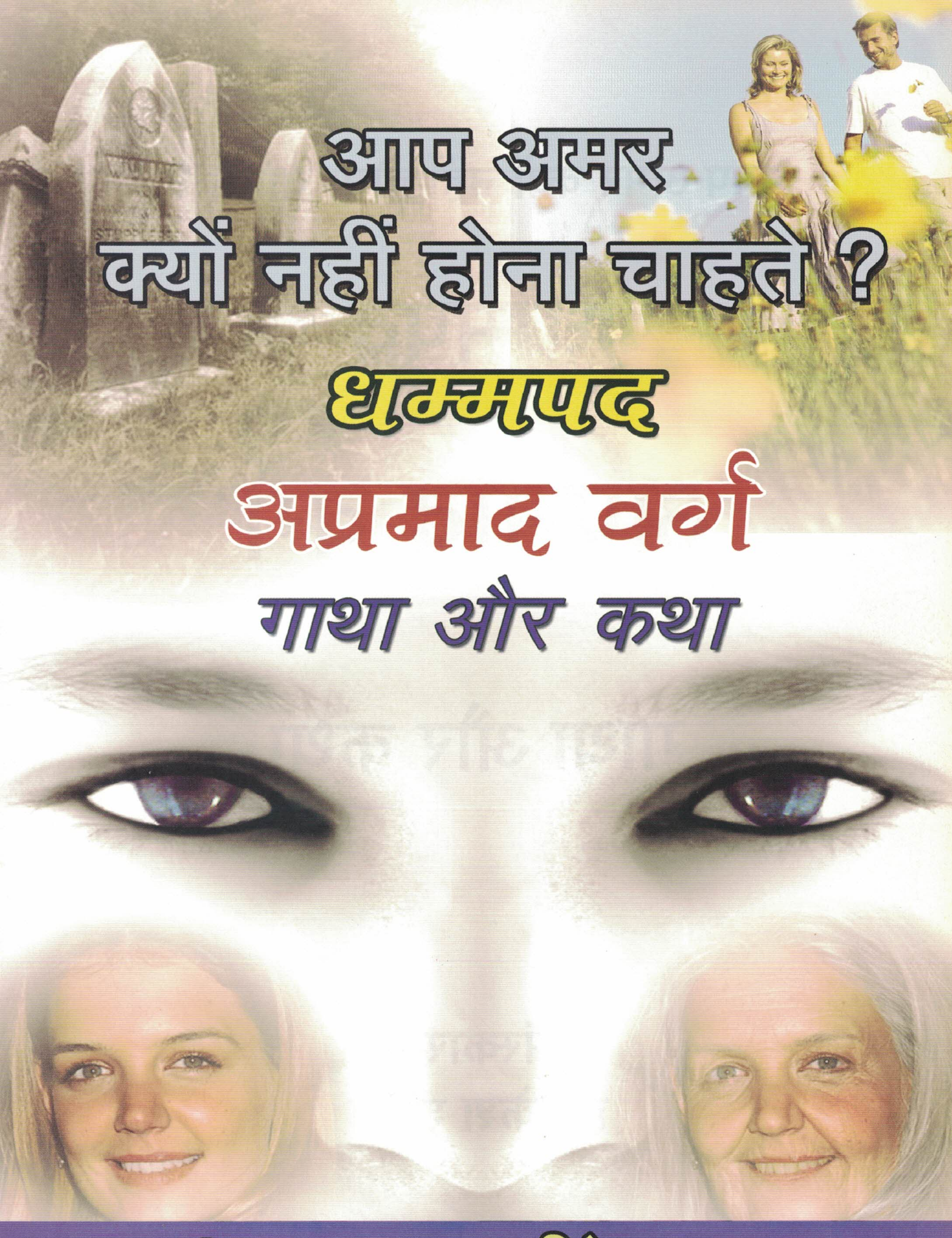
शाक्य मुनि को इस बात की पूरी जानकारी थी। एक दिन उन्होंने धर्म-सभा में समझाया, "जो व्यक्ति ग्रंथों का पाठ याद कर लेता है पर उन पर आचरण नहीं करता वह वैसा ही है जैसा गाय चराने की नौकरी करने वाला व्यक्ति। उसका काम मात्र गाय चराना होता है तथा शाम में गायें गिनना। वह श्रमण का अधिकारी नहीं होता है। दूसरी ओर अगर कोई थोड़े ही ग्रंथों का पाठ करे पर उसके अनुकूल आचरण करे तो वह वैसा ही होता है जैसे वह स्वयं गायों का मालिक हो। उसे दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ, मलाई सभी की प्राप्ति होती है। "



Dhammapada

Yamaka Vagga





आप अमर क्यों नहीं होना चाहते ?

धम्मपद

अप्रमाद वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक : हृषीकेश शरण

आप अमर क्यों नहीं होना चाहते ?

धम्मपद

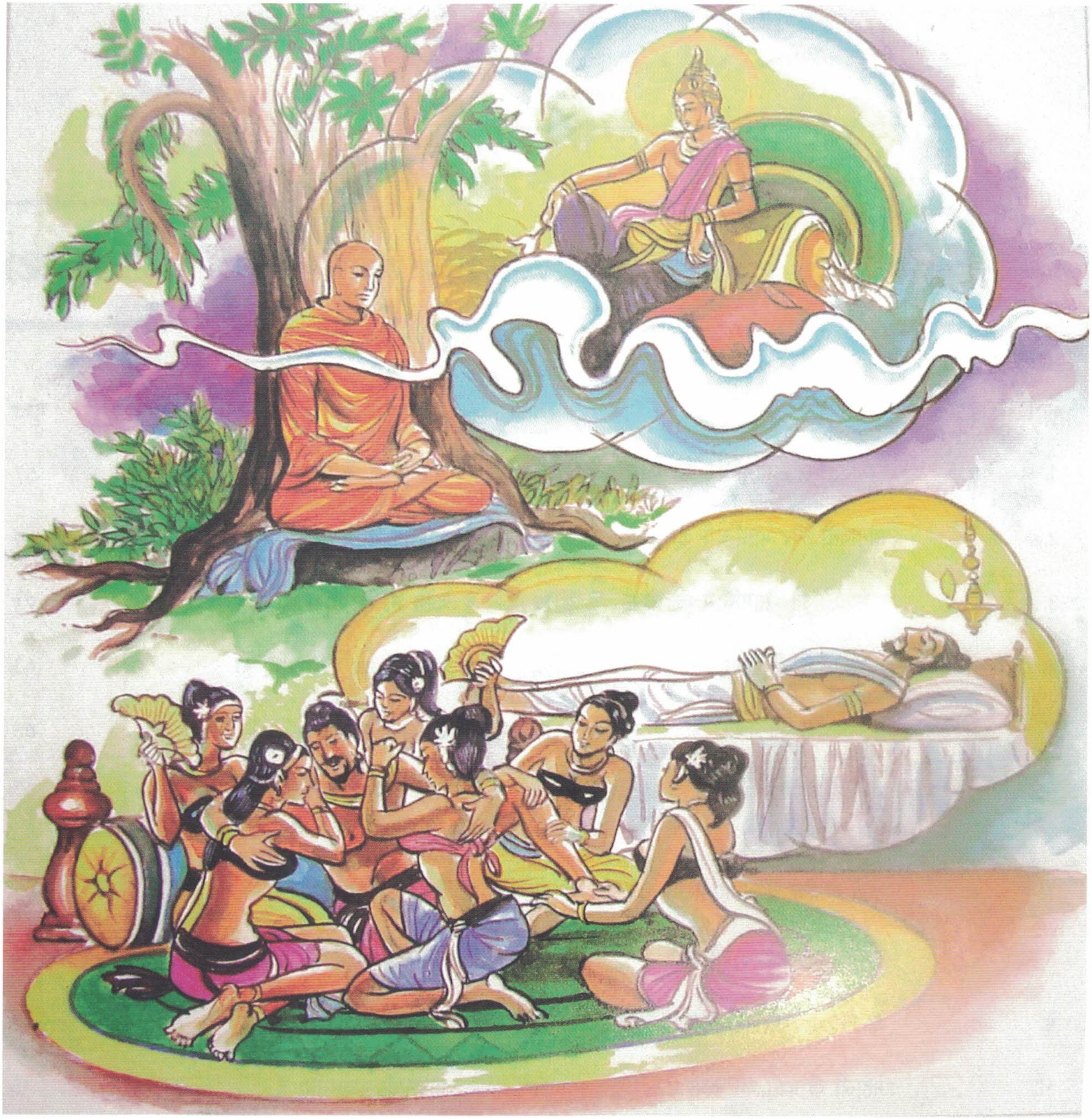
अप्रमाद वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

अप्रमाद वर्ग



गाथा: अप्पमादो अमतपदं, पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति, ये पमत्ता यथामता।।21।।

अर्थ: अप्रमाद अमृत (निर्वाण) का पद है और प्रमाद मृत्यु का पद। अप्रमादी मरते नहीं और प्रमादी मनुष्य तो मरे -समान होते हैं।

अप्रमाद में ही आनन्द की अनुभूति करें
सामावती और मागन्दिय की कथा

स्थान : घोषिताराम, कौसाम्बी

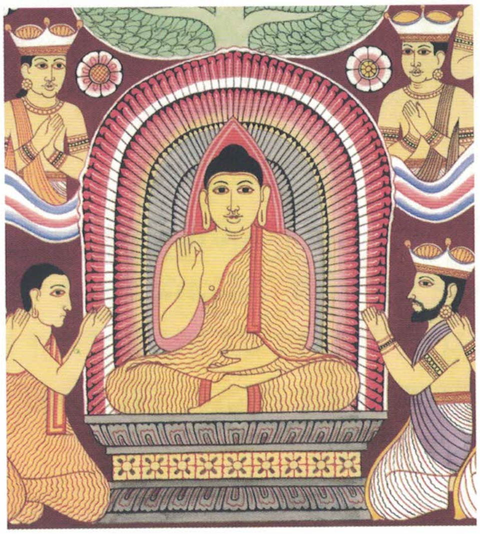
कौसाम्बी के पास भद्रवती नाम का एक गाँव था। भद्रवती में भद्रवतीय श्रेष्ठी नाम का एक श्रेष्ठी रहता था। एक बार वह नगर गंभीर प्लेग की चपेट में आ गया। भद्रवतीय ने अपना नगर छोड़ा और अपनी पत्नी और पुत्री के साथ कौसाम्बी आ गया। उसकी बेटी का नाम श्यामा (सामा) था। वह बहुत ही बुद्धिमान थी।

कौसाम्बी में घोसित नाम का एक श्रेष्ठी रहता था। वह गरीबों के लिए एक भंडारा चलाता था। कौसाम्बी पहुँचने के बाद भद्रवतीय की पुत्री वहाँ भोजन लेने गई। पहले दिन उसने तीन लोगों का भोजन लिया, दूसरे दिन दो लोगों का और तीसरे दिन सिर्फ एक आदमी का भोजन लिया। भंडारे के व्यवस्थापक ने यह देखकर उस लड़की के साथ व्यंग किया, "आज जाकर तुमको अपने पेट की भूख की सही-सही जानकारी हुई है।"

सामा उदास थी। उसने उत्तर दिया, "भाई ! ऐसी बात नहीं है। पहले दिन माता-पिता जीवित थे अतः तीन थाली भोजन लिया, कल सिर्फ माँ जीवित थी अतः सिर्फ दो थाली ली। आज मैं अकेली हूँ अतः मैंने सिर्फ एक भोजन लिया है।" व्यवस्थापक को सामा पर दया आ गई। अनाथ देखकर उसने सामा को अपने पास रख लिया।

सामा ने देखा कि भंडारे में भीड़ का नियंत्रण ठीक ढंग से नहीं हो पा रहा था। अतः उसने आने वालों की पंक्ति अलग बनवा दी और जाने वालों की पंक्ति अलग। इससे पूरी की पूरी अव्यवस्था समाप्त हो गई। उसी समय भंडारे का मालिक घोषित श्रेष्ठी आया। उसने व्यवस्था देखी तो सामा से बहुत प्रभावित हुआ। उसने सामा को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार कर लिया। चूँकि सामा ने एक घेरा (वती) बनाया था अतः उसका नाम सामावती हो गया।

सामावती बहुत ही सुन्दर और गुणवान थी। एक दिन राजा उदयन सवारी पर निकले और रास्ते में उनकी नजर सामावती पर पड़ी। सामावती को देखते ही वे उस पर अनुरक्त हो गए। अपने अनुचरों को सामावती के पिता घोसित श्रेष्ठी के पास यह कहने के लिए भेजा कि सामावती को राजमहल में भेज दिया जाए। घोसित श्रेष्ठी ने इसे सुना और उसे लगा कि उसकी प्रतिष्ठा पर आँच आने वाली है। अतः उसने सामावती को नहीं भेजा। राजा आग बबूला हो गया। उसने अपने सिपाहियों को श्रेष्ठी का सर्वस्व नाश करने के लिए भेज दिया। उन्होंने घर के बाहर ताला लगा दिया। तब सामावती ने अपने पिता से कहा कि वह राजमहल जायेगी। घोषित ने मना किया पर सामावती ने अपने पिता को आश्वासन दिया कि वह उसकी प्रतिष्ठा पर जरा भी आँच नहीं आने देगी। अतः वह उसे राजमहल जाने दे। घोषित मान गया। वह राजमहल में पटरानी बनकर पहुँच गई।





गाथा: एवं विसेसतो ञत्वा, अप्पमादम्हि पण्डिता।
अप्पमादे पमोदन्ति, अरियानं गोचरे रता।।22।।

अर्थ: ज्ञानी पुरुष अप्रमाद की इस विशेषता को जान, आर्यों के आचरण में रत रहकर, ऐसे पंडित जन अप्रमाद में आनन्दित रहते हैं।

अप्रमाद में ही आनन्द की अनुभूति करें
सामावती और मागन्दिय की कथा

समय बीतता है। राजा एक अन्य स्त्री 'मागन्दिय' पर मोहित हो जाता है। वह एक ब्राह्मण की पुत्री है तथा बुद्ध से घृणा करती है। उसके पिता ने कुछ समय पहले शाक्य-मुनि के सम्मुख प्रस्ताव रखा था कि वे मागन्दिय के साथ विवाह कर लें। तब तथागत ने उसे समझाया था, "मार की तीनों पुत्रियाँ तन्हा, सूरति तथा राग मिलकर भी मुझे आकर्षित नहीं कर सकीं। उनके सामने तुम्हारी बेटी एक पात्र की तरह है जिसमें मल-मूत्र रख दिया गया है और उसे बाहर से रंग दिया है। अब मेरे मन में किसी प्रकार की काम इच्छा नहीं रह गई है।"

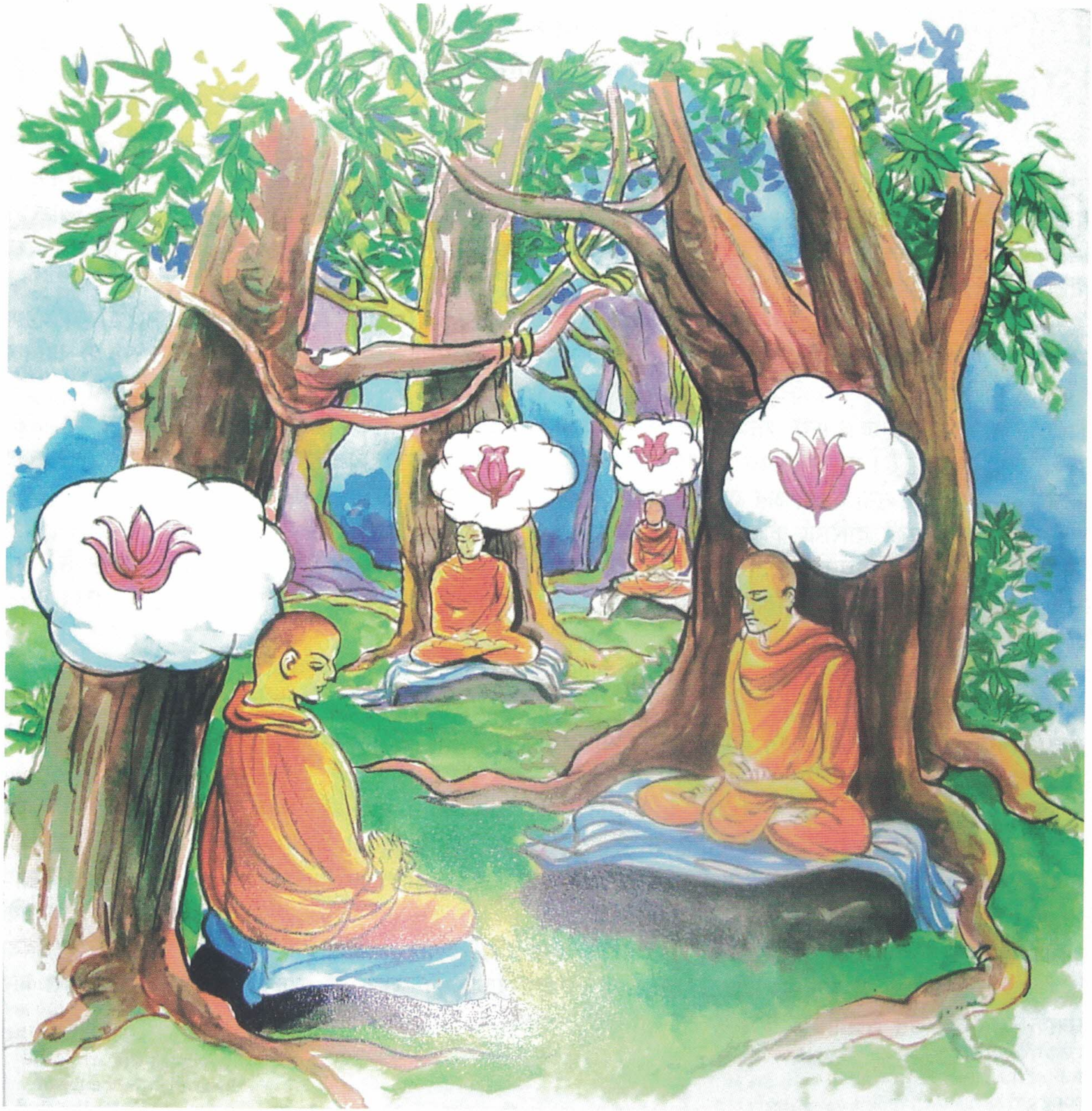
ऐसा सुनकर ब्राह्मण और उसकी पत्नी के अन्दर का प्रकाश जाग उठता है। दोनों प्रव्रज्या ग्रहण कर बुद्ध के शिष्य बन जाते हैं। अपनी पुत्री को उसके चाचा चूल्ल मागन्दिय को सौंपकर दोनों बुद्ध संघ में शामिल हो जाते हैं। बाद में चाचा मागन्दिय उसे राजा उदयन को सौंप देता है।

बुद्ध कौसाम्बी आते हैं। बहुत सारे लोग उनका प्रवचन सुनने आते हैं। उनमें सामावती की दासी खज्जुत्तरा भी होती है। वह स्रोतापन्न है। वह प्रतिदिन तथागत का प्रवचन सुनती है और फिर राजमहल में जाकर रानी को भी प्रवचन सुनाती है। अब वह धर्म प्रचारक की भूमिका निभाने लगी है। खज्जुत्तरा से धर्म प्रवचन सुनकर सामावती और उसकी दासियों की प्रबल इच्छा है कि वे बुद्ध को एक दिन राजमहल में आमंत्रित करें। बुद्ध वहाँ पधारें और उन्हें धर्म प्रवचन दें। सामावती राजा से इस हेतु आग्रह के लिए उचित अवसर की तलाश में है। इस बीच उसने महल में ही एक झरोखा बनवा लिया और उस झरोखे से वह और उसकी दासियाँ बुद्ध के दर्शन करने लगीं।

मागन्दिय ने राजा से इसकी शिकायत की। राजा बात की गहराई में गया और पाया कि मागन्दिय की शिकायत का कोई आधार नहीं था। अतः वह सामा से प्रसन्न हुआ और बुद्ध से आग्रह कर प्रतिदिन भन्ते आनन्द के आकर प्रवचन देने की व्यवस्था करा दी। वे रानी और उसकी दासियों को प्रतिदिन धर्म-प्रवचन देने लगे।

मागन्दिय अपने षड्यंत्र में विफल रही। अतः उसने एक और योजना बनाई। राजा को जब सामावती के महल में विश्राम के लिए जाना था तो वह भी साथ गई। राजा की बाँसुरी में एक साँप छिपा दिया और उसे फूल से बंद कर दिया। राजा जब गहरी नींद में था तो उसने फूल हटा दिया और चिल्ला उठी, "साँप ! साँप !" राजा चौंक कर उठ गया। उसे सामने साँप दिखा। अब उसे मागन्दिय के कथन पर विश्वास हो गया कि सामावती ने उसे मारने की योजना बनाई थी। उसने सामा और उसकी दासियों को एक पंक्ति में खड़ा कर दिया और मारने के उद्देश्य से उन पर तीर चला दिया। यद्यपि राजा एक बहुत ही धुरंधर तीरंदाज था, पर इस बार उसके तीर का उन स्त्रियों पर कोई असर नहीं हुआ। उसका वार विफल हो गया।





गाथा: ते झायिनो साततिका, निच्चं दळहपरक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बाणं, योगक्खेमं अनुत्तरं।।23।।

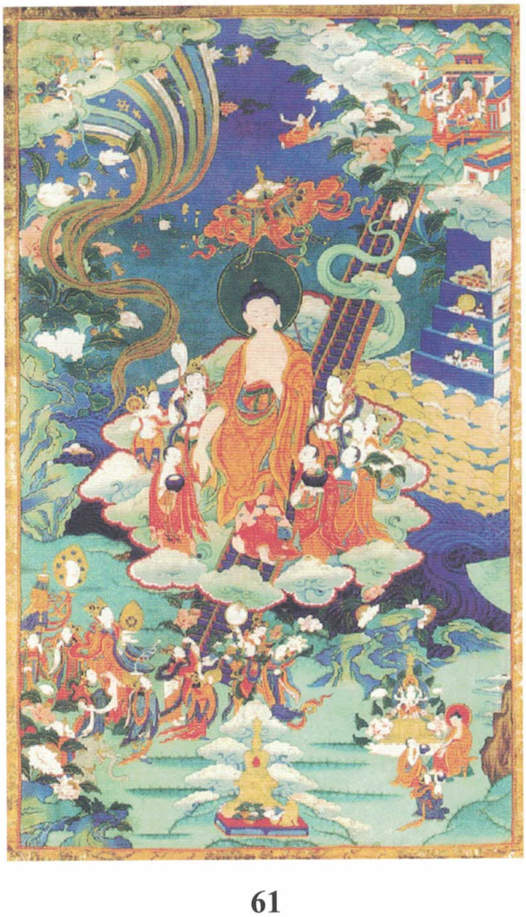
अर्थ: ऐसे सतत ध्यान करने वाले, सजग, सदैव दृढ़ पराक्रम में लगे धीर पुरुष उतकृष्ट योग-क्षेम वाले निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं।

कौन निर्वाण प्राप्त करेगा ?
सामावती और मागन्दिय की कथा

मागन्दिय ने एक बार फिर षड्यंत्र रचा। उसने अपने चाचा चूल्ल मागन्दिय के साथ मिलकर उस महल में आग लगवा दी जिसमें सामा रहती थी। सामा और उसकी सभी दासियाँ आग में झुलसकर मर गईं। राजा को सामा के मरने का बहुत दु:ख हुआ। उसे लग गया था कि मागन्दिय ने ही उसे मरवाया था। लेकिन इसकी सत्यता जानने के लिए उसने मागन्दिय से कहा, "जब तक सामा जीवित थी मुझे भय बना रहता था कि कभी न कभी मुझे मरवा देगी। अच्छा ही हुआ कि वह मर गई। निश्चय ही कोई है जो मुझसे बहुत प्रेम करता है उसी ने यह करवाया होगा।" मागन्दिय राजा की बातों से बहुत खुश हुई। उसने राजा को बता दिया कि उसने ही सारी योजना कार्यान्वित की थी। राजा ने ऐसा दिखाया मानों वह बहुत खुश हुआ हो। उसने मागन्दिय के सारे रिश्तेदारों को आमंत्रित किया कि वह उनको पुरस्कार देना चाहता है। वे सभी आए। उनमें उसका चाचा भी था। उनके आने पर राजा ने सैनिकों को आदेश दिया, "सभी को गिरफ्तार कर लो और कमर तक जमीन में गाड़ दो।" सैनिकों ने राजा की आज्ञा का पालन किया। रानी चीखती-चिल्लाती रही। उसे तथा उसकी सारी दासियों को जलाकर मार दिया गया।

भिक्षुओं ने रानी के अंत:पुर को जलते हुए देखा और बुद्ध को इस बारे में बताया। उन्होंने शास्ता से पूछा कि सामावती की क्या गति हुई। तब शाक्य मुनि ने उन्हें बताया, "जल जाने वाली उपासिकाओं में कुछ स्रोतापन्न थीं, कुछ सकृदागामी थीं तथा कुछ अनागामी थीं। उनकी मृत्यु बेकार नहीं गई है।" शास्ता ने शिष्यों को समझाया कि प्रमाद करना मरण का लक्षण है और अप्रमाद जीवन का।

फिर ये गाथाऐं कहीं।





गाथा: उट्ठानवतो सतिमतो, सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
संयतस्स धम्मजीविनो, अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति।।24।।

अर्थ: उद्योगशील, जागरुक, पवित्र कर्म करने वाले, सोच-विचार कर काम करने वाले संयमी, धर्म के अनुसार जीविका चलाने वाले अप्रमादी व्यक्ति का यश खूंब बढ़ता है।

अप्रमादी का यश बढ़ेगा ही
कुम्भघोसक की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में एक नगर-सेठ रहता था। एक बार वहाँ भीषण प्लेग फैल गया। सेठ-सेठानी भी उसकी चपेट में आ गए। मृत्यु आया देख उन्होंने अपने बेटे कुम्भघोसक को समझाया कि वह उनकी चिंता छोड़ दे तथा राजगृह छोड़कर चला जाए। "हमने जमीन में चालीस करोड़ कार्षापण फलाँ जगह में गाड़ रखा है। तुम अभी तुरंत वापस मत आना। जब काफी समय बीत जाए तथा सभी कुछ ठीक-ठाक हो जाए तभी आना।" कुम्भघोसक ने माता-पिता की बात मान ली और नगर से बाहर चला गया। उसके माता-पिता दुनियाँ से चल बसे।

बारह साल बीत गए। कुम्भघोसक ने राजगृह वापस आने की सोची। उसने विचार किया कि अभी तुरंत पहुँचकर अगर गड़े धन को निकाल उसका उपयोग करने लगूँगा तो राजा को संदेह हो जाएगा और संभव है वह धन जब्त कर ले या मेरी हत्या करा दे। यह सोचकर उसने गाँव में चौकीदार की नौकरी कर ली।

चौकीदार के रूप में वह आवाज लगाता था, "उठो ! खेती का समय हो गया है, दूकान खोलने का समय हो गया है" आदि, आदि। राजा ने जब उसकी आवाज सुनी तो अपने सिपाहियों से कहा कि वे जाकर उस उद्घोषक के विषय में पता लगाएँ, क्योंकि यह आवाज किसी करोड़पति की ही हो सकती है, किसी साधारण व्यक्ति की नहीं। सिपाही कुछ भी पता नहीं लगा पाये, पर राजा अड़ा रहा कि यह वाणी किसी बहुत ही धनी व्यक्ति की ही हो सकती है। अतः राजा की दासी ने सत्य का पता लगाने की जिम्मेदारी ली। वह कुम्भघोसक के यहाँ गई और एक रात रुकने के लिए आग्रह किया और कहा कि अगले दिन ही वह चली जायेगी। पर किसी न किसी बहाने वहाँ रुकी रही और अपना प्रस्थान टालती गई। इस बीच राजा ने घोषणा की कि वह एक उत्सव का आयोजन कर रहा है और उसमें सारी जनता को सहयोग करना है। कुम्भघोसक के पास पैसे नहीं थे। अतः उसने खजाने में से कुछ कार्षापण निकाले और अपना सहयोग दे दिया। दासी ने सब कुछ देखा। बात राजा तक पहुँची। राजा ने उसे गिरफ्तार कर बुलवा लिया तथा सच्चाई पूछी। कुम्भघोसक ने पूरी-पूरी सच्चाई बता दी। राजा बहुत खुश हुआ तथा अपनी बेटी का ब्याह कुम्भघोसक के साथ कर दिया।

कुछ दिनों बाद शास्ता राजगृह पधारे। राजा बिंबिसार कुम्भघोसक को लेकर उनके पास पहुँचा। उसने कुम्भघोसक के विषय में बताया तो शास्ता ने कहा, "अपनी उन्नति चाहने वाले ध्यानशील व्यक्ति का, जो पवित्र कर्म करता है तथा बड़े बुजुर्गों की बात मानकर काम करता है, ऐसे जितेन्द्रिय धार्मिक और उत्साही व्यक्ति का यश बढ़ता है। ऐसा उद्योगी, सचेत, शुचि कर्म तथा सोच समझकर काम करने वाला व्यक्ति संयमी होकर धर्म के अनुसार जीविका चलाता है।"





गाथा: उट्ठानेनप्पमादेन, संयमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी, यं ओधो नाभिकीरति।।25।।

अर्थ: बुद्धिमान व्यक्ति उद्योग, अप्रमाद, संयम और इन्द्रियों के दमन द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बना ले जिसे बाढ़ डुबा न सके।

अपना द्वीप बनें
चूल्लपन्थक की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

मगध में एक धनी श्रेष्ठी था। उसके दो प्रपौत्र थे महापन्थक और चूल्लपन्थक। श्रेष्ठी जब कभी बाहर जाता तो महापन्थक को साथ ले जाता। इस प्रकार महापन्थक को बुद्ध से धर्म-श्रवण का भी अवसर मिलता। बड़ा होने पर उसने प्रव्रज्या ले ली। उसके साथ उसका छोटा भाई चूल्लपन्थक भी प्रव्रजित हो गया। महापन्थक परिश्रमी, मेधावी और बुद्धिमान था। दूसरी ओर उसका छोटा भाई आलसी, मन्दबुद्धि एवं कम स्मरण शक्ति वाला था। बौद्ध साहित्य में उल्लेख आता है कि एक बार कस्सप बुद्ध के काल में चूल्लपन्थक ने भिक्षुओं का मजाक उड़ाया था। इसीलिए वह मन्द बुद्धि वाला पैदा हुआ।

दोनों भिक्षु राजगृह के वेणुवन विहार में रहते थे। चूल्लपन्थक चार महीने में भी एक गाथा याद नहीं कर पाता था। अतः उसका बड़ा भाई बड़ा अप्रसन्न रहता था और बार-बार उसे गृहस्थ जीवन में वापस चले जाने के लिए कहता।

एक दिन की बात है। जीवक बुद्ध एवं भिक्षु संघ को अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित करता है। महापन्थक भिक्षुओं की सूचि बनाता है तो उसमें चूल्लपन्थक का नाम नहीं डालता है। इससे चूल्लपन्थक निराश हो जाता है। उसी समय तथागत का वहाँ आगमन होता है। चूल्लपन्थक अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन्हें प्रणाम करता है। शास्ता उसकी मन:स्थिति समझ जाते हैं। वे उसे एक श्वेत वस्त्र देते हैं तथा उस पर मनन करने के लिए कहते हैं।

तथागत भिक्षुओं के साथ प्रस्थान कर जाते हैं। चूल्लपन्थक विहार में ही रुककर शास्ता के निर्देशानुसार उस श्वेत वस्त्र पर मनन करता है। उसे रगड़ता है तो देखता है कि वह वस्त्र कड़ा और मैला हो गया। उसे भान होता है कि सभी चीजें क्षणभंगुर हैं। उसे यह भी अनुभूति होती है कि मन के तीन प्रकार के मैल होते हैं - राग, द्वेष, और मोह। उसने आर्य सत्य पर भी चिंतन किया और इस प्रकार वह अर्हत हो गया।

जीवक के घर भोजन दान के बाद धर्म का अनुमोदन होना है। शाक्य मुनि ने कहा, "विहार में एक भिक्षु चूल्लपन्थक छूट गया है। उसे जाकर बुला लाओ।" संदेशवाहक जाता है पर लौटकर सूचित करता है कि वहाँ तो एक जैसे हजार भिक्षु हैं। बुद्ध उसे निर्देश देते हैं कि वह जाकर नाम पूछे और जो 'चूल्लपन्थक' नाम पर उत्तर दे, उसे लेकर आये। इस बार एक हजार आवाजें आती हैं और वह वापस आ जाता है। तब शास्ता उसे समझाते हैं कि जो सबसे पहले उत्तर दे उसे ही लेकर आओ। संदेशवाहक उस भिक्षु को पकड़ लेता है जो सबसे पहले उत्तर देता है। बाकी सभी भिक्षु गायब हो जाते हैं। चूल्लपंथक ने अपने ऋद्धिबल से उनका सृजन किया था।

चूल्लपन्थक जीवक के घर जाता है। भोजन के बाद बुद्ध उसे पुण्यानुमोदन के लिए कहते हैं। चूल्लपन्थक बहुत ही सुन्दर ढंग से धर्म-अनुमोदन करता है।

भिक्षुओं में घोर आश्चर्य है। वे सभी स्तब्ध हैं। जो चूल्लपन्थक एक गाथा याद नहीं कर पा रहा था, वह अर्हत कैसे हो गया? शास्ता ने भिक्षुओं की जिज्ञासा शांत करते हुए समझाया, "इंसान को चाहिए कि वह उत्साहित होकर अप्रमाद, संयम और दम से अपने आप को ऊपर उठा ले जिसको किसी प्रकार की बाढ़ प्रभावित न कर सके। इस प्रकार मेधावी पुरुष को उद्योग, अप्रमाद, संयम एवं दम द्वारा एक ऐसा द्वीप बना लेना चाहिए जिसे बाढ़ डुबो नहीं सके।





गाथा: पमादमनुयुज्जन्ति, बाला दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादं च मेधावी, धनं सेट्ठं व रक्खति।।26।।

अर्थ: मूर्ख एवं दुर्बुद्धि लोग प्रमाद में लगे रहेते हैं। उसके विपरीत बुद्धिमान व्यक्ति श्रेष्ठ धन की तरह अप्रमाद की रक्षा करता है।

मूर्ख प्रमाद तथा बुद्धिमान अप्रमाद में रत रहते हैं
मूर्खों के मेले की कहानी

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मदेशना तथागत ने जेतवन विहार में प्रवास के समय किसी मेले के संदर्भ में कही थी।

एक समय श्रावस्ती में मूर्खों का एक उत्सव आयोजित हुआ। इस उत्सव में मूर्ख और अविवेकी शरीक हुए थे। मेले में एक सप्ताह तक लोग एक दूसरे पर धूल, कीचड़ और गोबर फेंकते रहे। दूसरों के शरीर पर राख मलते रहे, गाली-गलौज करते रहे तथा अपशब्द बोलते रहे। उन्होंने सभी मान-मर्यादाओं का त्याग कर दिया। वे न तो किसी बड़े-बूढ़े के उम्र का ख्याल कर रहे थे और न अपने से किसी बड़े रिश्तेदार का सम्मान। उन्होंने किसी व्यक्ति को नहीं छोड़ा यहाँ तक कि संन्यासियों को भी । वे किसी के भी घर के सामने खड़े होकर गंदी-गंदी बातें बोलने लगते थे और इससे सज्जन लोग बहुत ही लज्जित महसूस करते थे। इन मूर्खों से छुटकारा पाने के लिए गृहस्थ सज्जन इन प्रमादियों को यथाशक्ति आधा, चौथा या एक कार्षापण दे देते थे और आगे बढ़ने का आग्रह करते थे। मूर्खों का समूह भी इन सज्जन गृहस्थों के घर से पैसे पाकर आगे बढ़ जाता था। उन दिनों शास्ता के बहुत सारे उपासक श्रावस्ती में रहते थे। उन्होंने बुद्ध को संदेश भेजा, "भन्ते ! आप कृपा करके एक सप्ताह की अवधि में विहार से न निकलें और विहार में ही विराजमान रहें।" उत्सव सात दिनों तक चला। खूब धूम-धड़ाका रहा। खूब राख फेंकी गई, खूब गोबर लगाया गया। उपासकों ने सातों दिन अपने घर में भोजन पका कर भिक्षु संघ के लिए विहार में भिजवाया। सातों दिन वे अपने-अपने घरों में बंद रहे।





गाथा: मा पमादमनुयुञ्जेथ, मा कामरतिसन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पोति विपुलं सुखं।।27।।

अर्थ: न तो प्रमाद करो और न काम भोगों में लिप्त होवो। प्रमाद-रहित हो ध्यान करने से अपूर्व सुख (निर्वाण) की प्राप्ति होती है।

अप्रमादी महान सुख पाता है
मूर्खों के मेले की कहानी

आठवें दिन उत्सव समाप्त हुआ। उपासकों ने शास्ता को भिक्षुसंघ के साथ भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजनदान के बाद उपासकों ने नम्रतापूर्वक शास्ता से कहा, "भन्ते ! पिछला सप्ताह बहुत ही कष्टमय बीता। मूर्खों के गाली-गलौज के शब्द सुनकर कान फट जाते थे।किसी को न तो कोई लज्जा थी और न था कोई संकोच। इसी कारण हमने आपसे और भिक्षुसंघ से आग्रह किया था कि विहार से बाहर न निकलें। हम लोग भी इन सात दिनों तक मजबूर होकर अपने घरों में कैदियों की तरह रहे। कभी भी, कहीं भी बाहर नहीं निकल पाये।"

शाक्य-मुनि ने उनकी चर्चा सुनकर कहा, "मूर्खों और प्रमादियों का काम ही ऐसा होता है। इसके विपरीत ज्ञानी पुरुष अप्रमाद की रक्षा गाढ़ी सम्पत्ति के समान करते हैं और ऐसा करके वे अमृतमय महानिर्वाण सम्पत्ति प्राप्त कर लेते हैं।"

ऐसा कहकर उन्होंने ये दोनों गाथायें कहीं।





गाथा: पमादमप्पमादेन, यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह, असोको सोकिनं पजं।
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठे, धीरो बाले अवेक्खति।।28।।

अर्थ: जब कोई बुद्धिमान जन अप्रमाद को प्रमाद से धकेल देता है, अर्थात् जीत लेता है, तो प्रज्ञा-रूपी प्रासाद पर चढ़ा हुआ शोकरहित वह धीर व्यक्ति शोक ग्रस्त मूर्ख जनों को करुण भाव से उसी तरह देखता है, जैसे पर्वत पर खड़ा हुआ आदमी धरती पर खड़े लोगों को देखता है।

प्रमाद को अप्रमाद से हटायें
स्थविर महाकाश्यप की कथा

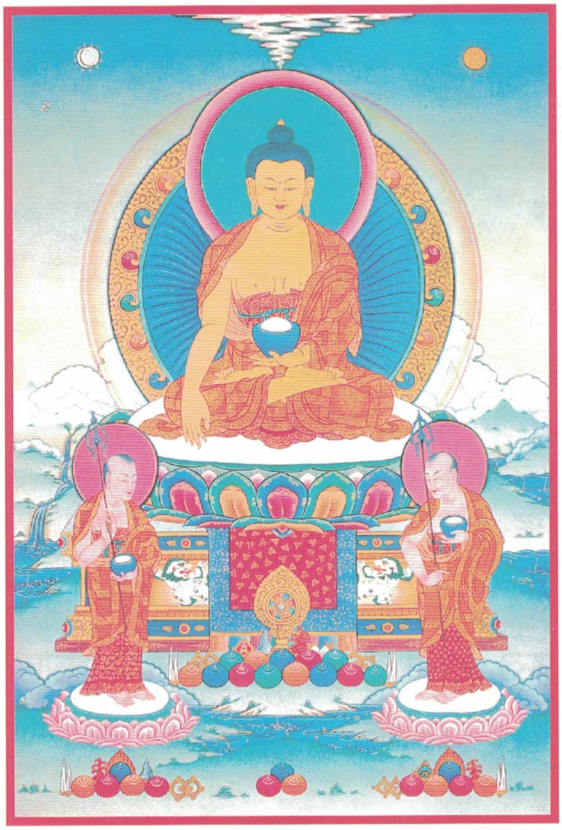
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मदेशना शाक्य मुनि ने स्थविर महाकाश्यप के संदर्भ में कही थी।

महाकाश्यप तथागत के परम शिष्यों में से एक थे। एक समय वे राजगृह के पास पिप्पली गुहा में रह रहे थे। वहीं साधना किया करते थे। एक दिन उनके मन में आया कि क्यों न अपनी अलौकिक दृष्टि से अपने और दूसरे लोगों के पूर्व जन्मों को देखा जाए। इसलिए एक दिन उन्होंने भिक्षा चारिका समाप्त होने पर भोजन किया और भोजन कर्म से निवृत्त होने के बाद अपना ध्यान प्रकाश बढ़ाया। ध्यान प्रकाश बढ़ाकर अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा वे जल-थल तथा पर्वत आदि पर रहने वाले प्राणियों के जन्म-मरण का लेखा-जोखा प्राप्त करने की भावना से ध्यान में बैठ गए।

उस समय शाक्य मुनि जेतवन, श्रावस्ती में विराजमान थे। उन्होंने सोचा कि जरा देखूँ कि मेरा शिष्य महाकाश्यप इस समय क्या कर रहा है। तब उन्होंने अपने दिव्य-नेत्रों से देखा कि वह तो पिप्पली गुफा में बैठा प्राणियों के जन्म-मरण जानने की चेष्टा कर रहा है और इस प्रकार अपना समय गँवा रहा है। अतः बुद्ध अपने ऋद्धिप्रभाव से उसके ध्यान में प्रकट हुए मानों वे उसके सामने बैठे हुए हों और उसे संबोधित किया, "आयुष्मान् काश्यप ! प्राणियों के जन्म और मरण की श्रृंखला अनन्त है और अपनी बुद्धि से तुम उन्हें गिन नहीं पाओगे। अतः तुम्हारे लिए उचित नहीं है कि तुम उन्हें गिनने में लगे रहो। गणना करना तुम्हारा काम नहीं है। यह तुम्हारे ज्ञान से परे है। तुम्हारा ज्ञान तो बहुत ही सीमित है। प्राणियों के जगत में आने-जाने का हिसाब- किताब रखना मात्र बुद्धों का काम है, तुम्हारा नहीं।"

इसके बाद तथागत ने यह गाथा कही ।





गाथा: अप्पमत्तो पमत्तेसु, सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्सं व सीधस्सो, हित्वा याति सुमेधसो।।29।।

अर्थ: प्रमाद करने वालें में अप्रमादी, अज्ञान की नींद में सोते रहने वाले लोगों को प्रज्ञावान, अतिसचेत, जागरुक बुद्धिमान व्यक्ति पीछे छोड़कर वैसे ही निकल जाता है जैसे शक्तिशाली तेज दौड़ने वाला घोड़ा दुर्बल घोड़े को पीछे छोड़कर निकल जाता है।

अप्रमादी आगे बढ़ जायेगा
दो मित्र भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मदेशना तथागत ने दो भिक्षु मित्रों के संदर्भ में कही थी।

एक बार दो भिक्षुओं ने प्रव्रज्या ली और जंगल में जाकर साथ रहने लगे। उनमें से एक आलसी था और दूसरा उद्यमी । दोनों अपने-अपने ढंग से ध्यान-साधना करने लगे।

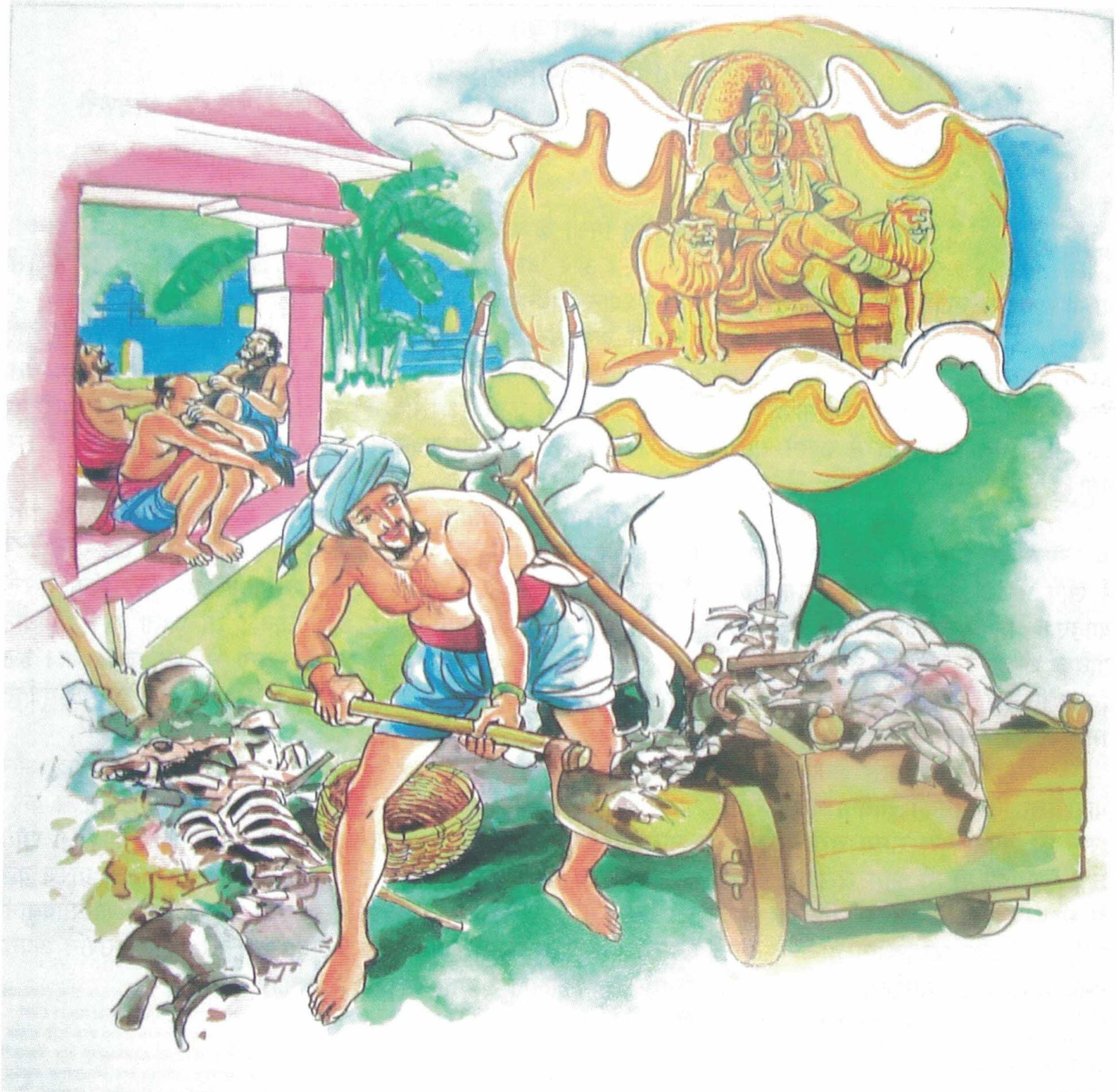
आलसी साधक लकड़ियाँ इकट्ठी कर उन्हें जला लेता और युवक श्रामणेरों से गप्पें लड़ाते हुए अपना पहला प्रहर बिता देता था। सावधान भिक्षु अपनी साधना में लगा रहता और आलसी भिक्षु को सलाह देता कि वह ऐसा न करे क्योंकि असावधान व्यक्ति का धर्मपालन करना असंभव है। पर वह सावधान भिक्षु की बातों पर ध्यान नहीं देता था। अंत में उसने सोचा कि इसे नहीं समझाया जा सकता। अतः वह स्वयं अपनी साधना में लग गया।

आलसी साधक दुष्ट प्रकृति का भी था। जब सावधान साधक साधना की समाप्ति पर थोड़ा सोने के लिए उद्यत होता तो आलसी साधक उसके पास आकर कहता, "अरे ओ आलसी साधक ! साधना करने हेतु वन में आए हो या सोकर व्यर्थ समय गँवाने ? बुद्ध के कर्म स्थान पर आने के बाद सावधान होकर साधना करनी चाहिए।" सावधान साधक को तो वह इस प्रकार कहता था पर स्वयं दूसरी ओर जाकर सो जाता था। सावधान साधक थोड़ी देर विश्राम कर पुनः उठ जाता तथा तत्पर हो एक बार पुनः ध्यान-साधना में लग जाता था। इस प्रकार निरंतर अभ्यास करता हुआ सावधान साधक कुछ ही दिनों में अर्हत्व प्राप्त कर गया। दूसरा साधक पूर्ववत प्रमाद में ही समय बिताता रहा।

वर्षावास समाप्त हुआ। दोनों साधक शास्ता के पास पहुँचे। उन्होंने उनका कुशल क्षेम पूछा और फिर पूछा कि उनकी साधना कैसी रही? आलसी भिक्षु ने तुरंत प्रत्युत्तर दिया, "इस प्रमादी भिक्षु की बात न करें। इसने तो अपना पूरा समय सुख से लेटकर सोते हुए बिता दिया।" "तुमने क्या किया ?", शास्ता ने पूछा। "मैं रात्रि के प्रथम प्रहर से ही आग जलाकर उसके पास बैठकर साधना करता रहा। मैंने पहले दिन से ही साधना प्रारंभ कर दी थी।" शास्ता समझ गए कि वह झूठ बोल रहा है। अतः उन्होंने कहा, "अरे ! तुमने तो जरा सी भी सावधानी नहीं बरती और असावधान होकर साधना की और उल्टे सावधान उपासक की निंदा कर रहे हो कि उसने अपना समय व्यर्थ, असावधानीपूर्वक बिता दिया। तुम प्रमाद की तुलना अप्रमाद से कर रहे हो।"

ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: अप्पमादेन मधवा, देवानां सेट्ठतं गतो।
अप्पमादं पसंसन्ति, पमादो गरहितो सदा।। 30।।

अर्थ: अप्रमाद के कारण ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना। पंडित जन सदैव अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं और प्रमाद की सदैव निंदा होती है।

अप्रमादी प्रशंसनीय है
महाली के प्रश्न की कथा

स्थान : कूटागार, वैशाली

एक बार लिच्छवी कुमार महाली शास्ता का प्रवचन सुनने गया। वे उस समय वैशाली के कूटागार विहार में उपदेश दे रहे थे। वे शक्र अर्थात् इन्द्र पर प्रवचन दे रहे थे। उन्होंने इन्द्र के गुणों का बहुत ही भव्य ढंग से वर्णन किया। महाली यह सब सुन रहा था। उसने विस्तृत वृत्तांत सुनकर सोचा कि निश्चय ही शास्ता इन्द्र को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं और उससे उनकी भेंट हो चुकी है। अन्यथा वे इतने अच्छे ढंग से इन्द्र के विषय में जानकारी नहीं दे पाते। लेकिन वह इस बारे में सुनिश्चित नहीं था। अतः अपनी शंका समाधान के लिए उसने शास्ता से प्रश्न कर दिया।

तब महाली के प्रश्न के उत्तर में शाक्य मुनि ने उसे समझाया, "मैं इन्द्र को खूब अच्छी तरह जानता हूँ। मैं यह भी खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि वह शक्र या इन्द्र कैसे बना और फिर देवताओं का राजा भी किस प्रकार बना।" उन्होंने इन्द्र के पूर्व जन्म की कहानी बताई कि इन्द्र अपने पूर्व जन्म में मचाला गाँव में मेघा नाम से जन्मा था। युवक मेघा अपने मित्रों के साथ भवन एवं सड़क निर्माण का काम करता था।

उसने प्रण लिया था कि वह जीवन पर्यन्त सात नियमों का निश्चय ही पालन करेगाः-

(i) माता-पिता की सेवा करेगा।
(ii) बड़ों की इज्जत करेगा, उन्हें सम्मान देगा।
(iii) मधुर वाणी बोलेगा।
(iv) चुगली नहीं करेगा।
(v) व्यवहार में कभी भी अशोभनीय आचरण नहीं करेगा।
(vi) सदा सच बोलेगा।
(vii) अपने क्रोध पर सदैव काबू रखेगा।

उसने इन सातों नियमों का पालन करने का प्रण ही नहीं लिया वरन् पूरे जन्म उनका पालन भी किया। अपने इन्हीं शुभ कर्मों के कारण अगले जन्म में वह देवताओं का राजा, इन्द्र बन पाया।

तब शास्ता ने यह गाथा सुनाई।





गाथा: अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा
संयोजनं अणुं थूलं, डहं अग्गी व गच्छति।। 31।।

अर्थ: जो साधक अप्रमाद में रत रहता है या प्रमाद में भय देखता है, वह अपने छोटे-बड़े सभी कर्म-संस्कारों के बंधनों को आग की तरह जलाते हुए चलता है।

प्रमाद से भय खायें : पतन नहीं होगा
किसी भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक भिक्षु ने त्रिरत्न में दीक्षा ली। वह इनके प्रति पूर्णतः समर्पित था। प्रव्रज्या के बाद वह अपना मन ध्यान में लगाने लगा पर उसका मन ध्यान में नहीं लगता था। वह अपनी दैनिकचर्या देखता तो लगता कि जैसे उसे कुछ उपलब्ध हुआ ही न हो। इसलिए वह उदास रहने लगा। पर वह लगन में दृढ़ था। अतः उसने सोचा कि शास्ता से मिलेगा और उनसे विचार-विमर्श करेगा कि मार्ग के अवरोधों को कैसे दूर किया जाए। इस दृढ़ निश्चय के साथ वह बुद्ध से मिलने के लिए निकल पड़ा।

रास्ते में उसने एक पर्वत पर आग की तीव्र ज्वाला देखी। वह बहुत ही तीव्रता से जल रही थी तथा तेजी से बढ़ रही थी। वह आग का दृश्य देखने के लिए पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गया। आग चारों ओर बहुत तेजी से बढ़ रही थी। आग जिस तरफ भी जा रही थी सबकुछ जलाकर राख कर दे रही थी। उसके अन्तर्नेत्र खुल गए। उसने सोचा कि जिस प्रकार आग सबकुछ जलाकर राख कर देती है उसी प्रकार अन्तर्दृष्टि से प्राप्त आग भी मानव के अन्दर विद्यमान सभी आस्रवों को, बुराइयों को जलाकर खत्म कर देती है, भले ही वे बड़े और विशाल ही क्यों न हों।

तथागत ने अपने अन्तर्नेत्र से भिक्षु को देखा। उन्होंने अपने आप को भिक्षु के सम्मुख प्रस्तुत किया और उसे प्रोत्साहित किया, "वत्स ! तुम्हारा मार्ग बिल्कुल सही है। तुम इस मार्ग पर दृढ़निश्चयी हो कर चलते रहो। हर व्यक्ति अपने प्रयत्न से आस्रवों को जला देता है।"

फिर उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: अप्पमादरतो भिक्खु, पमादेभयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय, निब्बाणस्सेव सन्तिके।। 32।।

अर्थ: जो भिक्षु अप्रमादी है, प्रमाद से भयभीत होता है उसका पतन नहीं होता है। वह तो निर्वाण के निकट पहुँचा हुआ होता है।

अप्रमादी का पतन असंभव है
तिस्स स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

तिस्स नामक एक स्थविर का जन्म श्रावस्ती के पास एक छोटे नगर में हुआ था। जब वह बड़ा हुआ तब उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और भिक्षु का जीवन जीने लगा। वह भोजन के लिए पास के गाँवों में जाता, भिक्षाटन में जो कुछ भी रूखा-सूखा मिल जाता उसे खा लेता और पुनः साधना में लग जाता। वह बड़े-बड़े आयोजनों में भी नहीं जाता था।

अन्य भिक्षुगण इस भिक्षु के विषय में चर्चा किया करते थे कि इस भिक्षु ने घर-द्वार छोड़ दिया है पर उसका मोह अभी समाप्त नहीं हुआ है। वह हमेशा अपने सगे-सम्बन्धियों से ही दान लेता है। भिक्षुओं ने इस विषय में शास्ता से शिकायत की। तब शास्ता ने तिस्स को बुलाकर पूछा, "मुझे शिकायत मिली है कि तुम अपने सगे-सम्बन्धियों के यहाँ आते-जाते हो। क्या यह सही है ? " तिस्स ने शास्ता को प्रणाम किया और स्पष्ट किया, "भगवन ! यह सच है कि मैं बार-बार अपने गाँव जाता हूँ। लेकिन, मैं ऐसा सिर्फ इसलिए करता हूँ कि भिक्षा मिल जाए। जैसे ही पूरी भिक्षा मिल जाती है मैं वहीं से लौट आता हूँ। आगे एक कदम भी नहीं बढ़ाता। मैं, जो भी भोजन मिलता है उसे खा लेता हूँ। मैं यह नहीं देखता कि भोजन स्वादिष्ट है या नहीं। मैं उसी से संतुष्ट हो जाता हूँ। फिर गाँव वालों के साथ हिलमिल कर क्यों विचरूँगा ? "

शास्ता ने भिक्षुओं के सम्मुख तिस्स की प्रशंसा की और कहा कि भिक्षुओं को तिस्स के समान होना चाहिए। अपनी आवश्यकता के मुताबिक ही जीवन चलाना चाहिए।

इस सम्बन्ध में शाक्य-मुनि ने पूर्व काल की एक कथा सुनाई। किसी समय एक गूलर के पेड़ पर पक्षीराज तोता रहता था। उसके साथ उस वृक्ष पर अनेक पक्षी भी रहते थे। धीरे-धीरे पक्षी गूलर के सारे फल खा गए। वृक्ष फलहीन होने लगा। सभी पक्षियों ने दूसरी जगह जाने का विचार बनाया। पक्षीराज ने कहा, "तुम लोगों को जाना है तो जाओ। मैं इस पेड़ को छोड़कर नहीं जाऊँगा। जो कुछ भी बचे-खुचे फल हैं उन्हें खाकर मैं अपना जीवन चला लूँगा। चाहे जो भी हो, मैं रहूँगा यहीं पर।"

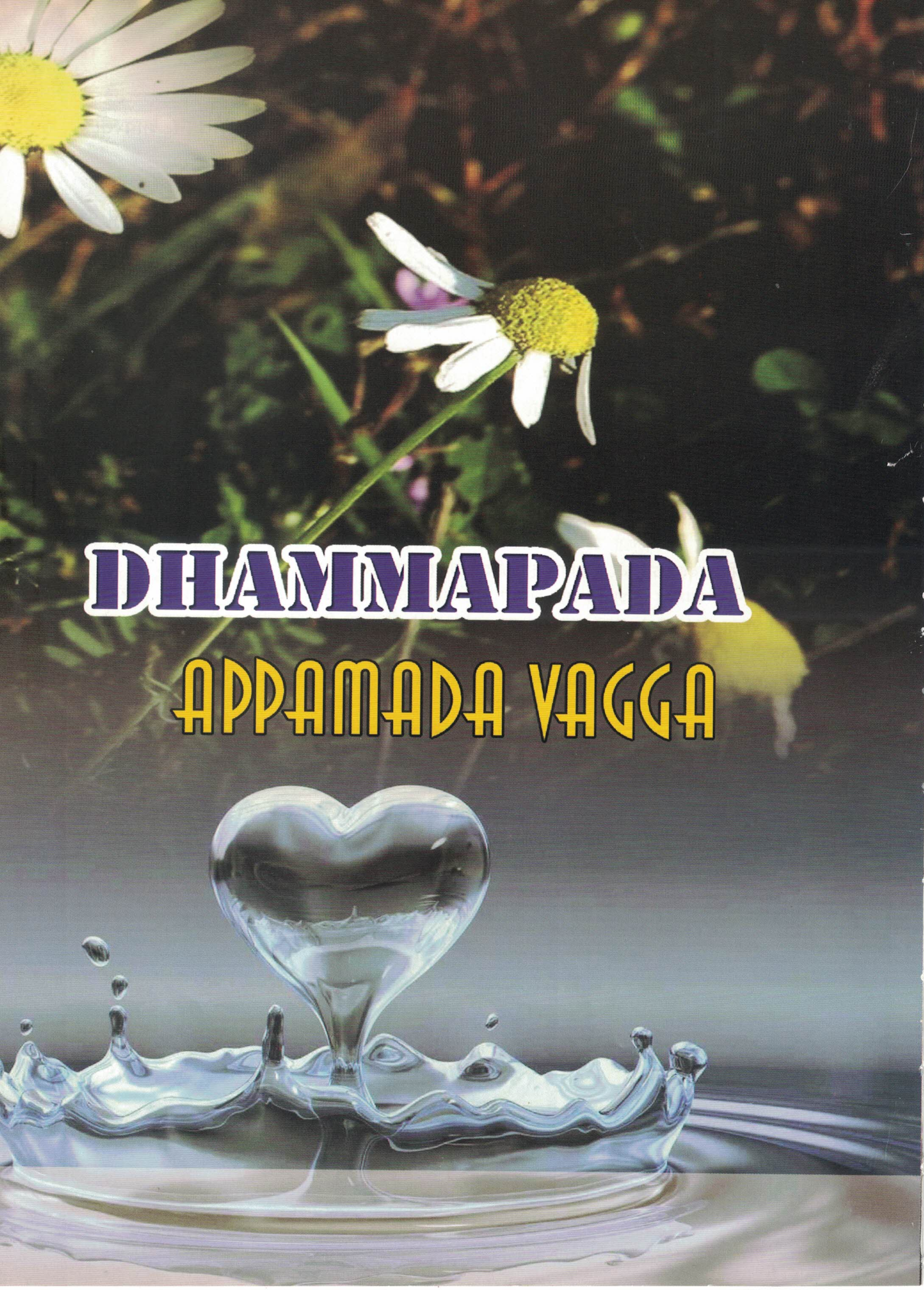
सभी पक्षी चले गए पर वह तोता वहीं रुक गया। तब इन्द्र तथा उसकी पत्नी सुजाता ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। पेड़ को इस प्रकार हिलाया मानों वह गिर रहा हो। ऐसा तूफान भेजा जैसे बाज झपट्टा मार रहा हो। फिर भी वह तोता कहीं नहीं गया। तब इन्द्र तथा सुजाता ने उससे पूछा कि वह पेड़ छोड़कर क्यों नहीं गया ? उसने जवाब दिया कि उस पेड़ के साथ उसकी कृतज्ञता का भाव जुड़ा हुआ है। अतः वह उसे छोड़कर नहीं जा सकता। उस जन्म में वह तोता बुद्ध स्वयं थे और अनुरुद्ध शक्र था।

तब शास्ता ने यह गाथा कही।



DHAMMAPADA

APPAMADA VAGGA



मन की माया
धम्मपद
चित्त वर्ग
गाथा और कथा



संस्कारक
हृषीकेश शरण

मन की माया

धम्मपद

चित्त वर्ग

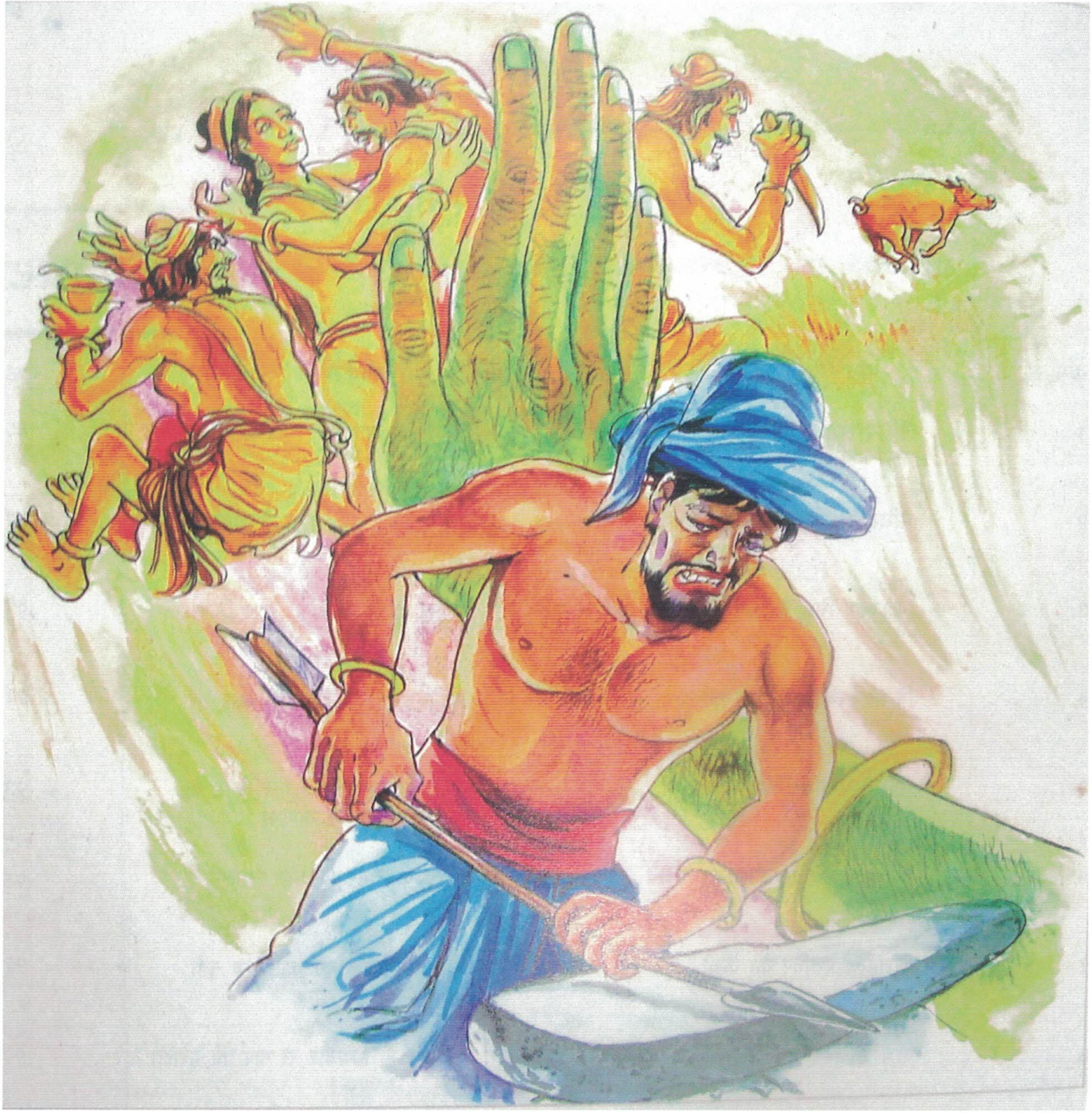
गाथा और कथा

संस्कारक

हृषीकेश शरण

विषय सूची

चित्त वर्ग



गाथा: फन्दनं चपलं चित्तं, दूरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी, उसुकारो व तेजनं।।33।।

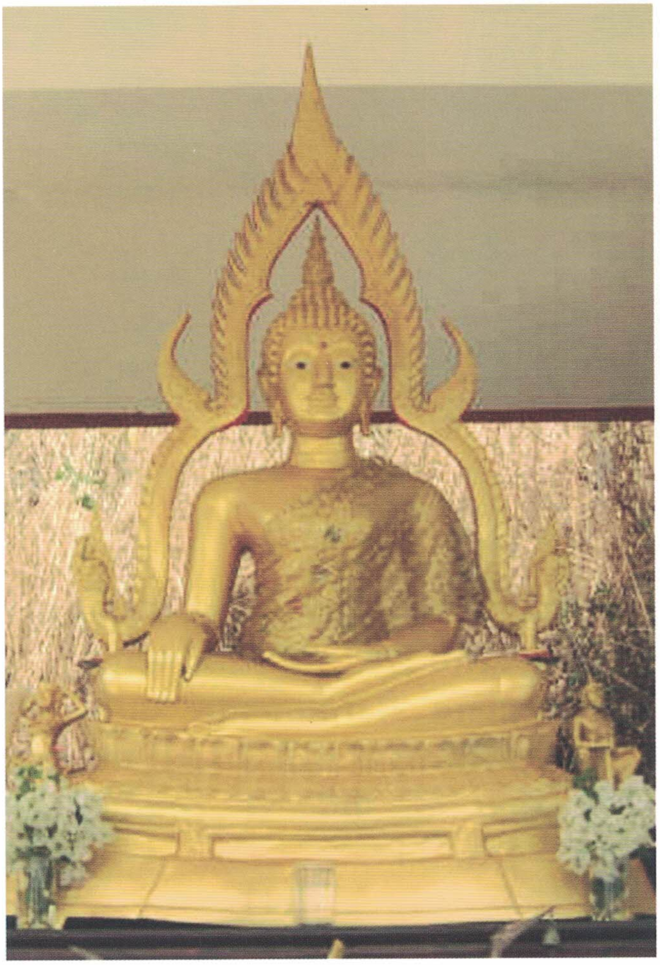
अर्थ: यह चित्त चंचल है, चपल है, कठिनाई से इसका संरक्षण और कठिनाई से इसका निवारण होता है। मेधावी पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को।

चित्त को बाण की तरह सीधा करें
मेघिय स्थविर की कथा

स्थान : चालिका पर्वत

एक समय शास्ता चालिय पर्वत पर वास कर रहे थे। उनके साथ उनके भिक्षु भी वहाँ वास कर रहे थे। एक दिन वे दिनचर्या के अनुसार भिक्षाटन के लिए गए। उनके साथ मेघिय नाम का एक भिक्षु भी था। भिक्षाटन के दौरान उसने एक बहुत ही मनोरम उद्यान देखा। उसने सोचा कि यह उद्यान बहुत ही शांत है, मनमोहक है, क्यों न मैं इसमें बैठकर ध्यान लगाऊँ। उसके मन में यह तीव्र विचार बार-बार आने लगा। भिक्षाटन के बाद उसकी इच्छा और अधिक प्रबल होने लगी। वह तथागत के पास गया और सादर प्रणाम कर आग्रह किया, "भन्ते ! वह उद्यान अत्यन्त ही सुन्दर और शांत है। वहाँ आसानी से ध्यान लग जाएगा। अतः वहाँ जाकर ध्यान-साधना करना चाहता हूँ। अगर आप अनुमति दें तो जाऊँ।"

शाक्य-मुनि उस समय अकेले थे। उनके पास और कोई भिक्षु नहीं था। अतः उन्होंने मेघिय को थोड़ी देर रुक जाने के लिए कहा, "कोई और दूसरा भिक्षु आ जाता है तब चले जाना।" पर मेघिय का मन नहीं माना। वह तो वहाँ जाने के लिए बेचैन हो रहा था। अपने आप को रोक नहीं पाया। उसने बुद्ध से पुनः प्रार्थना की कि उसे जाने दें। बुद्ध ने उसे फिर समझाया कि थोड़ी देर प्रतीक्षा कर ले। लेकिन उसका मन वहाँ जाने के लिए मचल रहा था। अतः उसने शास्ता से बार-बार निवेदन किया और अंततः उन्होंने उसे वहाँ जाने की अनुमति दे दी।





गाथा: वारिजो व थले खित्तो, ओकमोकत उब्भतो।
परिफन्दतिदं चित्तं, मारधेय्यं पहातवे।। 34।।

अर्थ: जैसे तालाब से निकालकर जमीन पर फेंकी गई मछली तड़फड़ाती है उसी प्रकार यह चित्त भी मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है।

चित्त मुक्ति हेतु पानी से बाहर मछली की तरह तड़पता है
मेघिय स्थविर की कथा

मेघिय बहुत खुश हुआ, क्योंकि उसकी इच्छा पूरी हो गई। वह तुरंत विहार से निकला और जल्द ही उस आम्रवाटिका में पहुँच गया। एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर ध्यान-साधना में बैठ गया। पर उसका मन ध्यान-साधना में नहीं लगा, इधर-उधर भटकने लगा। वह उसे केन्द्रित करने में सफल नहीं हुआ। पूरा दिन इसी आन्तरिक द्वन्द्व में बीत गया पर मन शांत नहीं हुआ। शाम होने पर वह बौद्ध-विहार आया। विहार पहुँचकर वह शास्ता के सम्मुख प्रकट हुआ और उन्हें पूरे दिन की कहानी सुनायी। उसने बताया कि किस प्रकार उसने चित्त को एकाग्र करने की चेष्टा की पर वह पूर्णतः असफल रहा।

तब शाक्य-मुनि ने उसे समझाया, "मेघिय ! वहाँ जाकर तुमने बहुत ही गलत काम किया। मैं तुम्हें बताता रहा हूँ कि मैं अभी अकेला हूँ। जब तक कोई भिक्षु नहीं आ जाता है तब तक तुम मुझे अकेला मत छोड़ो, पर तुमने मेरी बात नहीं मानी। भिक्षु को इतना कमजोर नहीं होना चाहिए कि वह सदैव अपने चित्त के ही वश में रहे। चित्त को अपने वश में रखना चाहिए।"

ऐसा समझाकर शास्ता ने ये दो गाथाऐं कहीं।





गाथा: दुन्निग्गहस्स लहुनो, यत्थकामनिपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दन्तं सुखावहं।।35।।

अर्थ: कठिनाई से दमन किया जा सकने वाले, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे वहाँ चले जाने वाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया गया चित्त सुख देने वाला होता है।

चित्त का दमन करें : सुख मिलेगा
अञ्ञतर भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन विहार में वास कर रहे थे। उस समय साठ भिक्षुओं ने प्रव्रज्या ली और एक पहाड़ी के नीचे मातिका गाँव पहुँच गए। उस गाँव में एक सद्‌नारी रहती थी जिसका नाम मातिकामाता था। वह त्रिरत्नों के प्रति पूर्णतः समर्पित थी। उसने भिक्षुओं के भोजन आदि की व्यवस्था की और रहने के लिए आवास का भी प्रबंध किया। मातिकामाता ने उन भिक्षुओं से आग्रह किया कि वे उसे भी ध्यान साधना की शिक्षा दें।

भिक्षुओं ने उसे ज्ञान दिया। वह तुरंत पूरी लगन के साथ साधना में लग गई और शीघ्र ही स्रोतापन्न हो गई। फिर सकृदागामी हुई और अंततः अनागामी हुई। उसने तीनों मार्ग और उसके फलों को प्राप्त कर लिया; ऋद्धियाँ प्राप्त कर लीं, चार प्रतिसंविदाएँ और पाँच अभिज्ञाएँ भी प्राप्त कर लिया। से वह भिक्षुओं के मन की दशा जानने लगी ।

अञ्ञतर भिक्षु अन्य भिक्षुओं के साथ वहाँ अधिक समय नहीं रुक पाया। वह शास्ता के पास वापस आ गया। शास्ता ने उससे पूछा कि वह वहाँ क्यों नहीं रुका। तब भिक्षु ने उत्तर दिया, च्वहाँ रुकना संभव नहीं है। वह उपासिका तुरंत जान लेती है कि दूसरा आदमी क्या सोच रहा है। बुरे विचारों के साथ दूसरों के मन के अन्दर की बात जानना वैसा ही होता है जैसे कोई आदमी चोरी के सामान के साथ पकड़ लिया गया हो। मैं वहाँ नहीं रह सकता।छ तब शास्ता ने उसे समझाया कि वह अपने चित्त को कुशल रखने के लिए प्रयत्न करे। आसक्ति से बंधे चित्त को वश में करना चाहिए।

तब शास्ता ने यह गाथा कही।





गाथा: सुदुद्दसं सुनिपुणं, यत्थकामनिपातिनं।
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं।। 36।।

अर्थ: बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि दुष्कर दिखाई देने वाले, अत्यन्त चतुर, जहाँ चाहे वहाँ चले जाने वाले चित्त की रक्षा करे। सुरक्षित चित्त बहुत ही सुखदायी होता है।

बुद्धिमान पुरुष चित्त की रक्षा करें
किसी उत्कण्ठित भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह कथा उन दिनों की है जब शास्ता जेतवन में रह रहे थे। एक दिन एक भिक्षु किसी उपासक के यहाँ भोजन-दान के लिए गया, भोजनदान के बाद श्रेष्ठी ने आग्रह कर पूछा, "भन्ते ! जीवन के दु:खों से मुक्त होने का मार्ग बताइये।" तब भिक्षु ने समझाया, "अपनी सम्पत्ति के तीन भाग कर लो। एक भाग से व्यापार करो, दूसरे भाग से परिवार चलाओ और तीसरे भाग को धर्म-कर्म में लगाओ।"

श्रेष्ठी ने कथनानुसार धन का विभाजन कर दिया। पर उसका मन नहीं माना कि वह दु:खों से मुक्त हो पाएगा। अत: वह भिक्षु के पास पुन: गया और पूछा कि उसे और क्या करना चाहिए। भिक्षु ने उसे समझाया, "सर्वप्रथम उसे त्रिरत्न में दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिए। उसके बाद उसे पंचशील का पालन करना चाहिए। ये पाँच शील हैं:- (i) चोरी नहीं करना (ii) झूठ नहीं बोलना (iii) हिंसा नहीं करना (iv) मादक पदार्थों का सेवन नहीं करना और (v) पराई स्त्री के साथ कामाचार न करना। इसके बाद दस शिक्षापदों का अनुसरण करना चाहिए, फिर तीस शिक्षापदों का और इस प्रकार बुद्ध धर्म का अनुगमन करना चाहिए।"

श्रेष्ठी पुत्र भिक्षु बन गया। लेकिन उसे इन शीलों का जीवन में अनुपालन करना कठिन लग रहा था। अत: वह फिर से गृहस्थ धर्म अपना लेने के विषय में सोचने लगा। अपनी साधना के प्रति लापरवाह हो गया, शरीर से कमजोर हो गया।

शास्ता को इसकी जानकारी मिली, उन्होंने भिक्षु को सलाह दी कि वह संयम बरते। साथ ही यह गाथा कही।





गाथा: दूरंगमं एकचरं, असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं संयमेस्सन्ति, मोक्खन्ति मारबन्धना।।37।।

अर्थ: जो व्यक्ति (पुरुष, स्त्री, गृहस्थ अथवा प्रव्रजित) दूर-दूर तक जाने वाले, निराकार, गुहा आश्रयी चित्त का संयम कर लेगा, वह मार के बंधन से मुक्त हो जाएगा।

जो चित्त का निग्रह कर लेगा, वह मारबंधन से छूट जाएगा
भागिनेय्य संघरक्खित की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

संघरक्खित शास्ता के नजदीकी शिष्यों में एक थे। उनकी बहन को एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। चूँकि वह संघरक्खित का भाँजा था अतः उसका नाम भागिनेय्य संघरक्खित रखा गया। जब वह बड़ा हुआ तो वह भी संघ में शामिल हो गया।

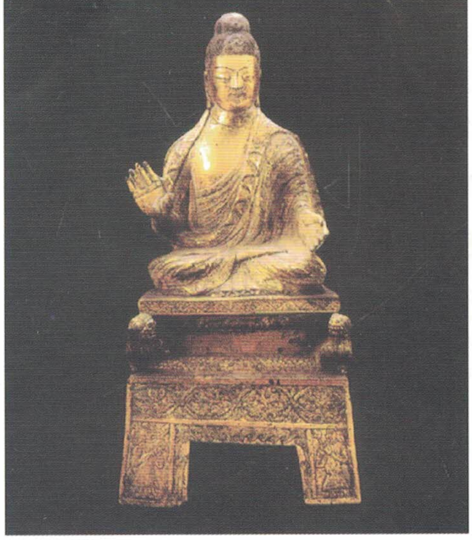
एक बार वह सामनेर एक गाँव में रुककर वर्षाकाल बिता रहा था। वहाँ उसे दानस्वरूप दो चीवर प्राप्त हुए। उसने एक चीवर स्वयं ले लिया और दूसरा चीवर संभालकर अपने मामा के लिए रख दिया। वर्षाकाल के बाद उसने वह चीवर मामाजी को समर्पित करना चाहा, पर मामाजी ने उसे लेने से इंकार कर दिया। उनका कहना था कि उनके पास पर्याप्त चीवर थे। उन्हें और अधिक चीवर की आवश्यकता नहीं थी। सामनेर ने बहुत प्रार्थना की पर वे नहीं माने।

एक दिन सामनेर भागिनेय्य ताड़ के पंखे से भंते संघरक्खित को पंखा झल रहा था। उसका मन दुःखी था कि मामा ने उसकी बात नहीं मानी। उसके मन में उल्टे-सीधे विचार आने लगे। वह सोचने लगा कि क्यों न भिक्षु-संघ छोड़ दे, चीवर बेच दे। उस पैसे से एक बकरी खरीद ले। बकरी से बच्चे होंगे और उसे बहुत सारा धन मिलेगा। धन होने से उसका विवाह हो जाएगा और उसे एक पुत्र भी हो जाएगा। वे सभी गाड़ी में बैठकर मामाजी से मिलने विहार जायेंगे।

गाड़ी में आते समय वह अपनी पत्नी से कहेगा कि वह बच्चे को उसे दे दे। वह उसे गाड़ी चलाने पर ध्यान देने के लिए कहेगी। वह पत्नी से बच्चा छीनेगा और इस छीना-छपटी में बच्चा गाड़ी से गिर जाएगा। गाड़ी का पहिया बच्चे के ऊपर से निकल जाएगा। वह क्रुद्ध हो जाएगा और पत्नी को पंखे से मारेगा। ऐसा सोचते हुए उसने पंखे से मामा को दे मारा। मामा ने अपने भगीने से कहा, "शिष्य ! स्त्री को मारते हुए तुमने मुझे ही मारा है।" भगीना डर गया। वह भागने लगा। कुछ तरुण भिक्षु उसे पकड़कर ले आए तथा शास्ता के पास ले गए।

शास्ता ने भागिनेय्य संघरक्खित तथा शिष्यों को समझाते हुए कहा, "शिष्यों ! यह चित्त बहुत ही चंचल है। जो व्यक्ति दूर-दूर तक जाने वाले, अकेले ही विचरण करने वाले चित्त को संयमित कर लेगा वह मार के बंधन से मुक्त हो जाएगा।

तब उन्होंने यह गाथा सुनाई।





गाथा: अनवट्ठितचित्तस्स, सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स, पञ्ञा न परिपूरति।। 38।।

अर्थ: जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा डोलती है उसकी प्रज्ञा (ज्ञान) परिपूर्ण नहीं कही जा सकती।

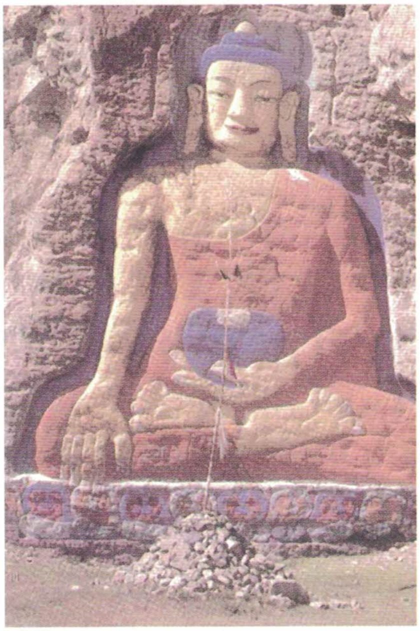
प्रज्ञा कब परिपूर्ण कही जायेगी ?
चित्तहत्थ स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन एक श्रावस्तीवासी अपनी खोई हुई गाय को खोजता हुआ जंगल में घूमता रहा, पर उसे गाय नहीं मिली। "भिक्षुओं से अवश्य ही खाने के लिए कुछ मिल जायेगा" ऐसा सोचकर वह विहार चला गया। वहाँ अभी भी कुछ भोजन बचा हुआ था। अतः उस कुलपुत्र को देखकर एक भिक्षु ने कहा, "इस पात्र में कुछ भोजन बचा हुआ है, उसे खा लो।" उसने भोजन खाया। भोजन स्वादिष्ट था। उसे अच्छा लगा। भिक्षुओं से प्रश्न करने पर उसे पता चला कि बौद्ध विहार में प्रतिदिन उपासकों की ओर से स्वादिष्ट भोजन आता था। वह प्रसन्न हुआ और सोचा, "इतनी परिश्रम की जिन्दगी से क्या लाभ ? क्यों न मैं भी प्रव्रज्या धारण कर लूँ ? बिना किसी परिश्रम के सुस्वादु भोजन तो मिलेगा।" ऐसा सोचकर उसने भिक्षुओं से प्रव्रज्या की प्रार्थना की। भिक्षुओं ने उसे स्वीकृति दे दी और वह प्रव्रजित हो गया।

अब उसे गृहस्थों से लाभ-सत्कार मिलने लगा। शारीरिक परिश्रम कोई विशेष था नहीं। अतः थोड़े ही दिनों में वह शरीर से मोटा होने लगा। उसने विचार किया, "घर-घर जाकर भिक्षाटन करना बेकार है। अतः क्यों न पुनः गृहस्थ बन जाऊँ ? " अतः वह एक बार फिर गृहस्थ बन गया। लेकिन गृहस्थ जीवन में शारीरिक श्रम करना पड़ता है। अतः वह जल्द ही दुबला होने लगा। अब उसे पुनः विहार की याद आई। वह भिक्षुओं से मिलकर, हाथ-पैर जोड़ने लगा कि उसे पुनः प्रव्रजित कर दें। भिक्षुओं ने उसे पुनः प्रव्रजित कर दिया। गृहस्थ से प्रव्रजित और पुनः प्रव्रजित से गृहस्थ बनने का यह सिलसिला जारी रहा। वह छह बार गृहस्थ से प्रव्रजित हुआ और प्रव्रजित से गृहस्थ हुआ। भिक्षुओं ने उसकी मनःस्थिति देखी तो सोचा, "यह चित्त के अधीन होकर इस प्रकार कर रहा है।" अतः भिक्षुओं ने उसका नाम 'चित्तहस्त' रख दिया।

चित्तहस्त के घर से विहार और विहार से घर आने-जाने के क्रम में उसकी पत्नी गर्भवती हो गई। सातवीं बार की बात है। जंगल से वापस आकर उसने खेती के औजार घर में रखे और सोचा कि प्रव्रजित हो जाऊँगा। ऐसा सोचते हुए अपने कमरे में प्रवेश किया जहाँ उसकी पत्नी सोई पड़ी थी। उसने क्या देखा ?





गाथा: अनवस्सुत चित्तस्स, अनन्वाहत चेतसो।
पुञ्ञपापपहीनस्स, नत्थि जागरतो भयं।। 39।।

अर्थ: जिसके चित्त में राग नहीं है, जिसका चित्त द्वेष रहित है, जो पाप-पुण्य से परे उठ गया है ऐसे सावधान, जाग्रत व्यक्ति को कोई भय नहीं है।

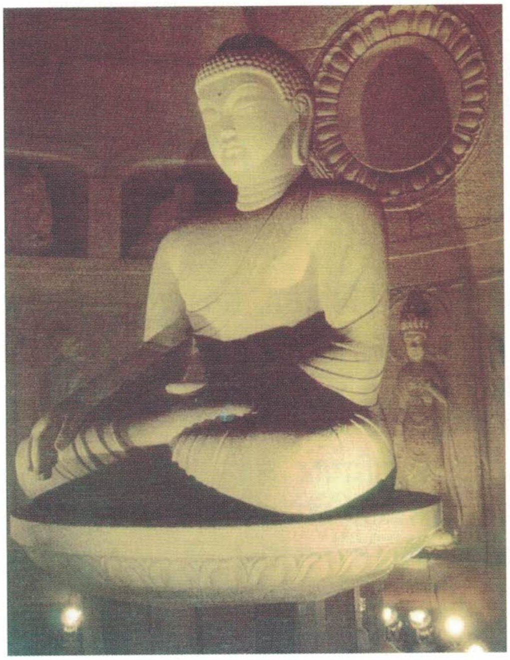
जाग्रत साधक को कोई भय नहीं
चित्तहत्थ स्थविर की कथा

उसने देखा कि उसकी पत्नी खाट पर सोई हुई थी। उसकी साड़ी इधर-उधर हो गई थी और वह करीब-करीब नग्नावस्था में थी। उसके मुँह से लार निकल रहा था। नाक से घर्र-घर्र का शब्द हो रहा था। मुँह से भी खर्राटे ले रही थी। दाँत किटकिटा रहे थे। विशाल शरीर फूला हुआ लग रहा था। उसके फूले हुए शरीर को देखकर ऐसा लग रहा था मानों यह एक लाश है। उस शरीर को देखकर उसे लगा, "अरे ! यह जीवन तो सचमुच दु:खमय है। मैं कई बार भिक्षु बना पर इस स्त्री के मोह के कारण भिक्षु नहीं रह पाया। इस स्त्री का शरीर भी अनित्य है, दु:खपूर्ण है।" ऐसा सोचकर उसने अपना चीवर लिया और सातवीं बार प्रव्रजित होने के लिए चल पड़ा।

चित्तहस्त पूरे मार्ग "यह सारा संसार दु:खमय है" इस पर चिंतन करता रहा। विहार पहुँचते-पहुँचते उसने स्रोतापन्न स्थिति प्राप्त कर ली। वहाँ पहुँचकर उसने भिक्षुओं से एक बार पुनः प्रव्रज्या के लिए आग्रह किया। भिक्षुओं ने इस बार उसे मना कर दिया और कहा, "तुम प्रव्रज्या का महत्व क्या जानो ? तुम्हारा चेहरा सड़क पर पड़े पत्थर की भाँति है जो बार-बार रगड़ खाता है पर उस पर कोई असर नहीं होता। तुम अब अभ्यस्त हो गए हो। हम तुम्हें प्रव्रजित नहीं करेंगे।" "भन्ते ! एक बार, अंतिम बार, कृपा कीजिए। मुझे प्रव्रज्या दिला दीजिए।" भिक्षुओं ने उसके पिछले उपकारों को याद कर उसे पुन: प्रव्रज्या दिला दी। कुछ ही दिनों में वह अर्हत हो गया।

उधर मजाक में कुछ भिक्षुओं ने चित्तहस्त से कहना शुरू कर दिया, "क्या बात है चित्तहस्त ? बहुत दिन हो गए। इस बार तो तुम गृहस्थ बनने में बहुत देर कर रहे हो।" तब चित्तहस्त ने उन्हें बताया, "संसार में आसक्ति रहने के कारण मैं अभी तक बार-बार घर जाता रहा। पर अब उस घर से मेरी आसक्ति नहीं रह गई है। अत: अब मैं नहीं जाता।" भिक्षुओं को लगा कि चित्तहस्त झूठ बोल रहा है। अत: वे उसे शास्ता के पास ले गए और पूरी बात बताई। तब शास्ता ने उन्हें बताया कि चित्तहस्त सच बोल रहा था। पहले उसका चित्त स्थिर नहीं था। अत: बार-बार आना-जाना करता था। पर अब अर्हत्व प्राप्त कर उसका चित्त स्थिर हो गया है। अत: अब उसे बार-बार आने-जाने की जरूरत नहीं रह गई है।

तब उन्होंने ये दो गाथायें कहीं।





गाथा: कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा, नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन, जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया।। 40।।

अर्थ: इस शरीर को घड़े के समान नश्वर जान और चित्त को नगर के समान (मजबूत और दृढ़) बना प्रज्ञारूपी हथियार लेकर मार के साथ युद्ध करे। उसे जीत लेने पर भी चित्त की रक्षा करे और अनासक्त बना रहे।

प्रज्ञा रूपी हथियार से मार को परास्त करें
पाँच सौ विपश्यनाधारी भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार पाँच सौ विपश्यनाधारी भिक्षु श्रावस्ती से वन की ओर प्रस्थान कर गए। घने जंगल में उन्हें एक जगह अच्छी लगी और उन्होंने सोचा कि यहीं ध्यान-विपश्यना करेंगे। उन पेड़ों पर रहने वाले देवताओं ने सोचा कि ये भिक्षु यहाँ आये हैं, ये यहाँ ध्यान-विपश्यना करेंगे तो हम लोग ठीक से नहीं रह सकेंगे। अत: कुछ ऐसा किया जाये जिससे ये यहाँ नहीं रहें तथा यह जगह छोड़कर चले जायें।

सभी देवताओं ने मिलकर भयावह माहौल बना दिया। जब भी भिक्षु ध्यान में बैठते, उनके सामने नंग-धड़ंग, भयावह आकृतियाँ आकर नाचने, उछलने-कूदने लगतीं। इससे भिक्षु डर जाते और अपनी साधना पर ध्यान केन्द्रित नहीं रख पाते। जब परिस्थिति में सुधार नहीं हुआ तो भिक्षुओं ने शास्ता के पास जाकर पूरी बात बताई। बुद्ध ने उनकी पूरी बात सुनी और उनसे कहा, "भिक्षुओं ! तुम्हारा वहीं रहकर साधना करना ठीक है।" "नहीं भन्ते ! हमारा वहाँ रहना संभव नहीं है। वहाँ हमें विभिन्न प्रकार के भयंकर शब्द सुनाई देते हैं। वहाँ साधना में व्यवधान पड़ता है। हमें वह स्थान छोड़ना उचित लगता है।" "भिक्षुओं ! तुम लोग बिना अस्त्र-शस्त्र के निहत्थे होकर गए थे। अपने औजारों को तेज करो और अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर जाओ," बुद्ध ने सलाह दी।

भिक्षुगण शास्ता के निर्देशानुसार 'करणीयमंत्र सूत्र' का पाठ करते हुए वन में प्रविष्ट हुए। जब देवों ने उनकी तरफ से मैत्री की हवा बहते देखी तो वे बहुत खुश हुए। वे उन भिक्षुओं की सेवा करने लगे।

अब भिक्षुगण वहाँ बिना किसी कठिनाई के साधना कर सकते थे।





गाथा: अचिरं वतयं कायो, पठविं अधिसेस्सति।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो, निरत्थं व कलिंगरं।। 41।।

अर्थ: अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनाहीन हो निरर्थक काठ के टुकड़े की तरह धरती पर पड़ा रहेगा।

देखो : इस निरर्थक, सूखे काठ के शरीर को !
पुतिगत्ततिस्स स्थविर की कथा

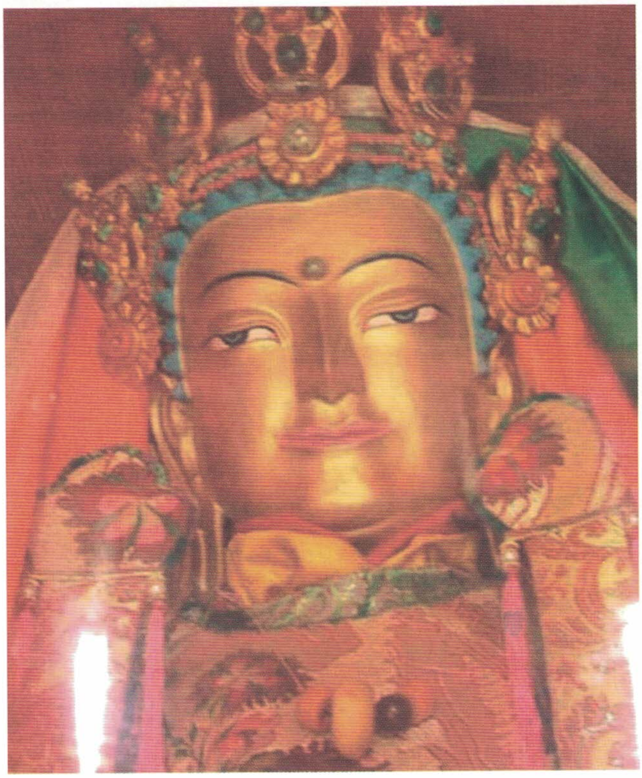
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय थेर तिस्स शास्ता से प्रव्रज्या लेकर ध्यान विपश्यना करने लगे। इस अभ्यास काल में उन्हें भयंकर बीमारी ने आ दबोचा। शरीर पर छोटे-छोटे दाने फफोले के रूप में निकल आये और उनमें पीब भरने लगा। बाद में पीब बाहर आने लगा। भीषण बदबू आने लगी। उनके कपड़े भी गंदे हो गए। उनका बदबूदार चीवर उनके शरीर से चिपक गया। शरीर से खून की दुर्गन्ध आने लगी। पूरा का पूरा शरीर दुर्गन्धमय हो गया। अतः भिक्षुगण उन्हे 'पुतिगत्ततिस्स' नाम से पुकारने लगे।

शास्ता ने अपनी दिव्यदृष्टि से देखा कि थेर तिस्स बहुत कष्ट में थे। उन्होंने पाया कि उसके सारे साथी उसकी हालत देखकर उससे अलग हो गए हैं। उन्होंने यह भी देखा कि उसके अन्दर अर्हत्व प्राप्त करने की संभावनाएं हैं। अतः पानी गर्म किया और गर्म पानी लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ तिस्स सो रहा था। जब अन्य भिक्षुओं ने उन्हें वहाँ आते देखा तो वे भी दौड़कर आ गए। तथागत ने तिस्स को आग के पास ले जाने का निर्देश दिया। फिर उसे नहलाया गया और उसके शरीर को साफ कपड़े से पोंछा गया। उसके चीवर को भी साफ किया गया और उसे धूप में सुखाया गया। स्नान से तिस्स स्वच्छ हो गया और अच्छा अनुभव करने लगा। उसका शरीर निर्मल हुआ और उसके साथ-साथ उसका चित्त भी निर्मल हो गया। उसका मन साधना में दृढ़ हो गया।

शास्ता जब तिस्स को स्नान करा रहे थे, उसका शरीर काठ की भाँति जमीन पर पड़ा हुआ था। उन्होंने समझाया, "भिक्षुओं ! देखो यह शरीर जमीन पर कैसे काठ की भाँति पड़ा रहता है और धरती का बोझ बढ़ाता रहता है। निरर्थक लकड़ी की भाँति फेंका गया यह शरीर जल्द ही धरती पर सदा के लिए सो जाएगा। नौ द्वारों से सुसज्जित यह शरीर एक दिन शून्य हीन हो जाएगा।"

फिर उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: दिसो दिसं यं तं कयिरा, वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं, पापियो नं ततो करे।। 42।।

अर्थ: जितनी हानि शत्रु-शत्रु की या वैरी-वैरी की कर सकता है, उससे कहीं अधिक हानि बुरे मार्ग पर लगा हुआ चित्त कर सकता है।

चित्त के प्रति सावधान रहें
नन्द गोपाल की कथा

स्थान : कोसल जनपद

नन्द नाम का एक चरवाहा अनाथपिंडिक की गायों की रखवाली करता था। लोग उसे नन्दगोपालक के नाम से पुकारते थे। वह यदा-कदा अनाथपिंडिक के घर पर शास्ता का धर्म उपदेश सुना करता था। वह भी शास्ता को अपने घर निमंत्रित करना चाहता था। अतः उसने बुद्ध से अपने यहाँ आने की प्रार्थना की । बुद्ध ने कहा, "मैं अवश्य चलूँगा, पर अभी नहीं, कुछ समय बाद।" बुद्ध ने अपनी अर्न्तदृष्टि से देखा कि उसके घर चलने का समय अभी परिपक्व नहीं है ।

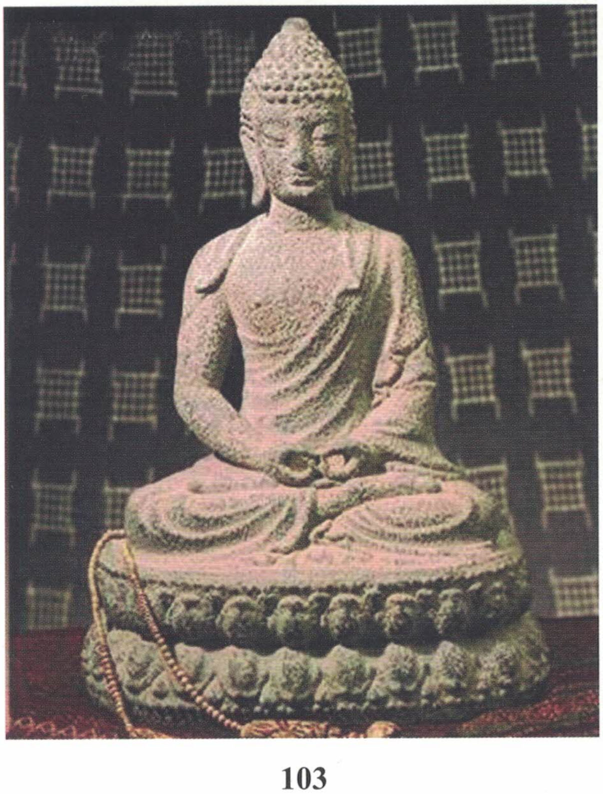
कुछ दिनों बाद एक दिन शाक्य-मुनि भिक्षुओं के साथ भिक्षाटन कर रहे थे। चलते-चलते उन्होने अपना रास्ता बदल दिया और नन्दगोपालक के घर जा पहुँचे।

नन्द ने शास्ता और भिक्षुसंघ की बड़े प्रेम से आवभगत की। सात दिनों तक वह ऐसा ही करता रहा। सातवें दिन बुद्ध का उपदेश सुनकर वह स्रोतापन्न स्थिति प्राप्त कर गया। अंतिम दिन जब बुद्ध उसके घर से निकले तब वह भी शास्ता का भिक्षापात्र लेकर उन्हें विदा करने के लिए उनके साथ घर से निकला। थोड़ी दूरी के बाद शाक्य-मुनि ने उससे भिक्षापात्र ले लिया और उसे वापस चले जाने के लिए कहा। वह लौट रहा था कि किसी शिकारी के बाण से मारा गया।

शास्ता के पीछे-पीछे आ रहे भिक्षुओं ने सब कुछ देखा। जब वे बुद्ध से मिले तो उन्हें बताया कि किस प्रकार घर वापस लौटते समय रास्ते में ही नन्दगोपालक मारा गया। उन्होंने यह भी कहा, "संभव है कि आप अगर उसके घर नहीं जाते तो वह आपके पीछे-पीछे नहीं आता और न मारा जाता।"

शास्ता ने बताया, "मैं आता या नहीं आता, जब नन्दगोपालक की मृत्यु आती तो वह बेबस था। उसे यहाँ से जाना ही पड़ता। उसे मृत्यु से छुटकारा नहीं मिल सकता था।"

यह कहकर उन्होंने यह धर्मदेशना कही।





गाथा: न तं माता पिता कयिरा, अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं, सेय्यसो नं ततो करे।। 43।।

अर्थ: जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई-बंधु नहीं कर सकते, उससे कहीं अधिक भलाई सन्मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।

चित्त से बढ़कर हितैषी मित्र नहीं
सोरेय्य स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

कोसल राज्य में एक धनी व्यक्ति का सोरेय्य नाम का एक पुत्र था। एक दिन वह घोड़ा गाड़ी में बैठ कर अपने मित्रों के साथ स्नान करने हेतु निकला। रास्ते में भन्ते महाकच्चायन तालाब के किनारे स्नान कर वस्त्र बदल रहे थे। सोरेय्य ने उन्हें देखा। उनका गौर वर्ण देखकर वह मोहित हो गया और सोचने लगा, "काश ! मेरी स्त्री का रंग-रूप भी स्थविर की तरह होता ? " मन में ऐसे बुरे विचार आते ही उसके अन्दर लिंग परिवर्तन हो गया। अब वह पुरुष से स्त्री बन चुका था। उसे बहुत लज्जा महसूस हुई।

वह मौका निकालकर मित्रों की मंडली से खिसक गया तथा तक्षशिला जाने वाले रास्ते को पकड़ लिया। उसके नौकरों और घर वालों ने उसे बहुत खोजा पर वह नहीं मिल पाया। उधर सोरेय्य ने अपनी अंगूठी देकर एक गाड़ीवान से आग्रह किया कि वह उसे भी अपनी बैलगाड़ी में बिठा ले। गाड़ीवान ने उसे गाड़ी में बिठा लिया और इस प्रकार वह तक्षशिला जा पहुँचा।

तक्षशिला में एक धनवान व्यक्ति ने उसे देखा और उससे शादी कर ली। उस धनवान व्यक्ति से उसे दो पुत्र हुए।

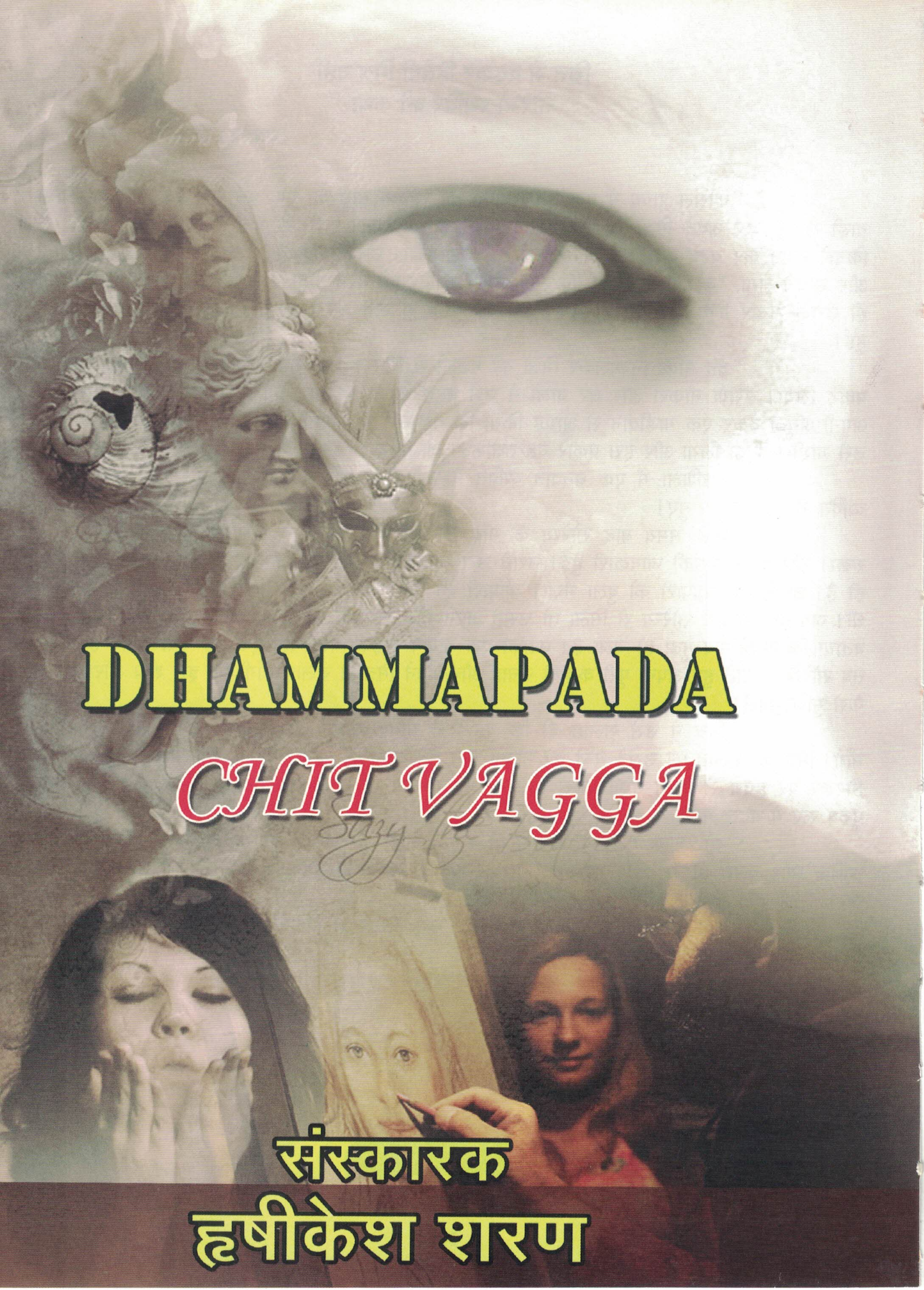
कुछ समय बाद सोरेय्य के गाँव का एक व्यापारी अपने काफिले के साथ तक्षशिला में रुका। सोरेय्य को इसकी जानकारी हुई। उसने उस व्यापारी को पहचान लिया कि वह उसका पुराना मित्र ही है। उसने उस व्यापारी को बुला भेजा। व्यापारी को बहुत आश्चर्य हुआ कि एक महिला उसे बुला रही थी। जब वह व्यापारी सोरेय्य से मिला तो उसने अपने गाँव के सभी लोगों का हाल-चाल पूछा। व्यापारी ने बताया कि श्रेष्ठी अब बूढ़ा हो चला है। उसका एक जवान लड़का पता नहीं एकाएक कैसे गायब हो गया। तब सोरेय्य ने रोते हुए अपनी पूरी कहानी सुनाई और अपने मित्र से सलाह माँगी कि इस शाप और पाप से कैसे मुक्ति मिले।

मित्र ने उसे सलाह दी कि वह भन्ते महाकच्चायन को निमंत्रित करे और उनसे माफी माँगे। मित्र की सलाह पर उसने भन्ते को भोजन दान हेतु आमंत्रित किया और भोजनोपरान्त उनके पैरों पर गिरकर पूरे हृदय से माफी माँगी। जैसे ही भन्ते महाकच्चायन ने कहा 'मैं तुम्हें माफ करता हूँ', वह फिर पुरुष रूप में बदल गया।

सोरेय्य के पुरुष के रूप में दो पुत्र थे और स्त्री रूप में दो। लोग पूछते, "किन पुत्रों को अधिक प्यार करते हो ? " तो वह उत्तर देता, "जो मेरी कोख से पैदा हुए हैं।" लेकिन उसने एक दिन कहा, "मुझे कोई भी प्यारा नहीं है।"

अब उसका मोह भंग हो गया था। उसे संसार से विरक्ति हो चुकी थी। उसने गृहत्याग किया और भिक्षुसंघ में शामिल हो गया।




DHAMMAPADA
CHIT VAGGA
संस्कारक
हृषीकेश शरण


पुण्य पुष्प का बागीचा उगाएं
धम्मपद
पुष्प वर्ग
गाथा और कथा
HOPE
संस्कारक : हृषीकेश शरण

पुण्य पुष्प का बागीचा उगाएं

धम्मपद

पुष्प वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक

हृषीकेश शरण

विषय सूची

पुष्प वर्ग



गाथा: को इमं पठविं विचेस्सति, यमलोकं च इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ।।44।।

अर्थ: कौन है जो इस पृथ्वी और देवताओं सहित यम लोक को जीत सकेगा ? कौन चतुर व्यक्ति अच्छी तरह से उपदिष्ट धर्म के पद को फूल की भाँति चुन सकेगा ?

यमलोक कौन जीत सकेगा ?
माली की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन विहार में प्रवास के दौरान बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में ये दो गाथाएं कहीं।

एक बार कुछ भिक्षु बुद्ध के साथ एक गाँव गए और फिर वहाँ से जेतवन विहार लौट आए। संध्या बेला में सभी भिक्षु चर्चा कर रहे थे कि गाँव कैसा था, वहाँ की जमीन उपजाऊ थी या नहीं, अधिक बालू था या जमीन पथरीली थी - मिट्टी लाल थी या काली आदि-आदि। उसी समय बुद्ध वहाँ आए। उन्होंने जाना कि किस विषय पर चर्चा हो रही थी। तब शाक्य मुनि ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! तुम उस धरती की चर्चा कर रहे हो जो शरीर से बाहर है; अच्छा हो अगर तुम अपने शरीर का ध्यान करो, उसके बारे में जानो। उससे तुम्हें साधना में मदद मिलेगी। तुम्हें आध्यात्मिक धरती पर मनन करना चाहिए।"

उन्होंने एक माला बनाने वाले का उदाहरण देकर समझाया। एक मालाकार सही फूलों को चुनता है और फिर उन्हें तोड़कर एक अच्छी माला बनाता है। उसी प्रकार जीवन के सत्य को जानने के लिए कौन प्रयत्न करेगा ? संसार में जीवन के सही रहस्य को कौन खोज पायेगा ? स्वर्ग और पाताल की जानकारी किसे प्राप्त हो सकेगी ? जैसे एक मालाकार सुन्दर-सुन्दर फूलों को पहचान लेता है और फिर उससे एक सुन्दर माला बना देता है उसी प्रकार धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों को एक मालाकार की तरह कौन समझ पायेगा ?





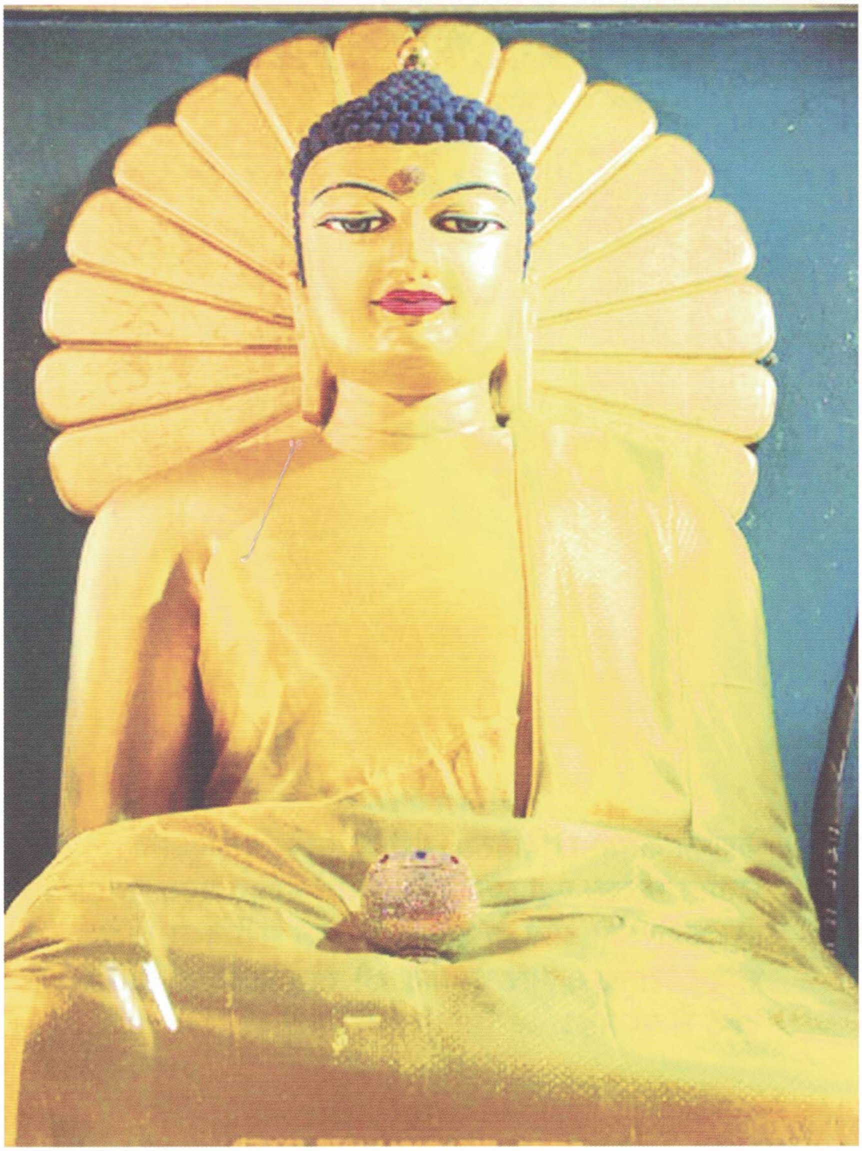
गाथा: सेखो पठविं विचेस्सति, यमलोकं च इमं सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।।45।।

अर्थ: शैक्ष्य (निर्वाण की खोज में लगा हुआ व्यक्ति) ही देवताओं सहित इस यमलोक और धरती को जितेगा। चतुर शैक्ष्य ही अच्छी तरह से उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भाँति चयन करेगा।

निर्वाण की खोज में लगा हुआ यमलोक जीतेगा
माली की कथा

इन प्रश्नों को पूछने के बाद शाक्य मुनि इन प्रश्नों के उत्तर भी देते हैं। जो आत्मज्ञान का चयन करेगा, जानेगा, समझेगा, साक्षात्कार करेगा अर्थात् कुशल साधक ही धर्मपदों का भली भाँति चयन कर पायेगा। जैसे कोई माली बागीचे में जाकर अभी नहीं खिले हुए, कीड़ों द्वारा खाये हुए, सूखे तथा गाँठ बने फूलों को छोड़ देता है और उनकी जगह सुन्दर, सुगन्धित फूलों को चुन लेता है उसी प्रकार शैक्ष्य (साधक) बुद्ध द्वारा सुकथित, बोधिपक्षीय धर्म पदों का प्रज्ञा द्वारा चयन करेगा, समझेगा तथा साक्षात्कार करेगा। इस प्रकार एक सच्चा साधक ही यमलोक, स्वर्ग-लोक और धरती-लोक के विषय में ठीक-ठीक समझ सकेगा।

ऐसा कहकर शाक्य-मुनि ने ये दो गाथायें कहीं।





गाथा: फेणूपमं कायमिमं विदित्वा, मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि, अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे।।46।।

अर्थ: इस शरीर को झाग के समान या मरू मरीचिका के समान जानकर, मार के फंदे को तोड़ यमराज की दृष्टि से दूर रहे।

जीवन: पानी का एक बुलबुला
मरीचिकर्मस्थनिक की कथा

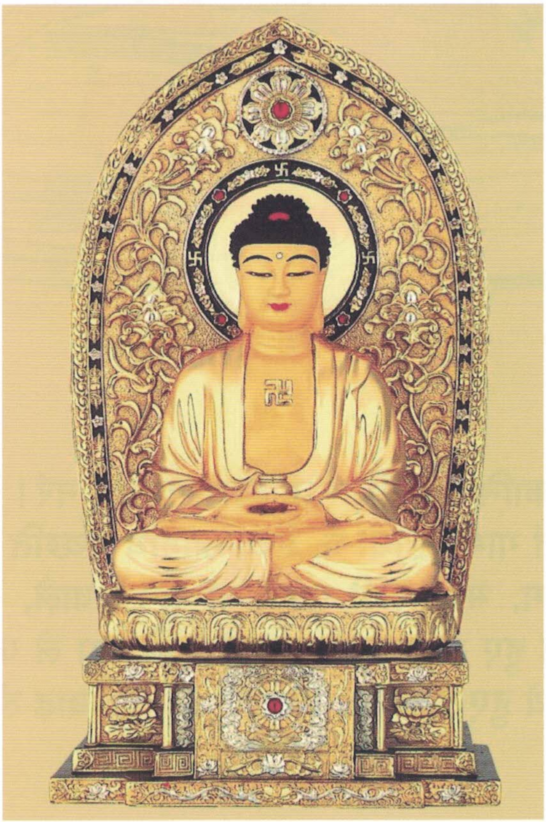
स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

एक भिक्षु विपश्यना साधना करने हेतु वन में गया। उसने चित्त को वश में करने की पूरी कोशिश की पर वह सफल नहीं हो पाया। उसका ध्यान तुरंत भंग हो जाता था। असंतुष्ट होकर उसने सोचा कि शास्ता के पास चलता हूँ और उनसे ही शिक्षा लूँगा कि क्या करूँ। रास्ते में उसने मरीचिका देखी और उसके अन्त:नेत्र खुल गए।

उसने विचार किया, "कितने आश्चर्य की चीज है मरीचिका ! बालू से तप्त भूमि पर दूर से देखने से ऐसा आभास होता है कि वहाँ पानी है। जब आदमी वहाँ पहुँचता है तो उसे पानी नहीं दिखता है। पर कुछ दूर आगे पुन: तप्त बालू के ऊपर पानी का आभास होता है। मृग मरीचिका के पीछे दौड़ता है कि उसे पीने के लिए पानी प्राप्त हो जाए। पर उसे पानी नहीं मिलता और इस प्रकार पानी की तलाश में दौड़ता-दौड़ता अपने प्राण गँवा देता है।" उसने जीवन की तुलना मरीचिका से की और सोचा, "यह जीवन भी मरीचिका की तरह है। हम धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा के पीछे दौड़ते हैं। पर धन-दौलत, मान-मर्यादा, पद-प्रतिष्ठा- किसी से भी हमारी तृप्ति नहीं होती है। कोई एक चीज प्राप्त होती है तो फिर दूसरी चीज प्राप्त करने के लिए तृष्णा जाग जाती है। इस प्रकार तृष्णा के पीछे दौड़ते-दौड़ते मनुष्य अंतत: मृत्यु तक पहुँच जाता है।"

चूँकि उस भिक्षु ने मरीचिका के माध्यम से अर्न्तज्ञान प्राप्त किया था अत: अन्य भिक्षुओं ने उसका नाम 'मरीचिकर्मस्थनिक' रख दिया।

वह भिक्षु चिंतन-मनन करता हुआ शास्ता के पास पहुँचा। शास्ता ने उसे समझाया "जो व्यक्ति यह समझ जाता है कि यह जीवन मरीचिका के समान है या यह शरीर झाग के बुलबुले के समान है वह जीवन के सत्य को समझ जाता है। वह मार के फूल के वाणों को तोड़ देता है। उसे मृत्यु के सम्राट का कभी दर्शन नहीं होता।"





गाथा: पुप्फानि हेव पचिनन्तं, व्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघो व, मच्चु आदाय गच्छति।।47।।

अर्थ: काम, भोग रूपी पुष्पों को चुनने वाले, आसक्ति में डूबे हुए मनुष्य को मृत्यु वैसे ही बहा ले जाती है जैसे सोये हुए गाँव को नदी की बढ़ी हुई बाढ़ ले जाती है।

जीवन पर्यन्त कामभोग के फूल मत चुनिए
विडूडभ की कथा

स्थानः जेतवन, श्रावस्ती

कोसलराज पसेनदि तथागत से सामीप्य बढ़ाने का इच्छुक था। वह सोचता था कि ऐसा करने से उसका कल्याण होगा। अतः उसने विचार किया कि शाक्य वंश से वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिया जाए। अपने दूतों के माध्यम से उसने शाक्य राज-दरबार में अपना प्रस्ताव भेजा।

शाक्यों की सभा हुई। उसमें विचार-विमर्श हुआ कि राजा पसेनदि का कुल उनके योग्य नहीं है। अतः किसी राजकुमारी का हाथ देना अनुचित था। महानाम ने एक रास्ता निकाला जिसे पूर्णतः गुप्त रखा गया। राजकुल के बाहर वाषभ क्षत्रिया की एक लड़की से उसका विवाह कर दिया गया। वाषभ सुन्दर थी, राजा पसेनदि उससे खुश था। बाद में उसे एक पुत्र हुआ जिसका नाम विडूडभ रखा गया। राजकुमार सात वर्ष का हुआ। उसने नाना के यहाँ जाने की जिद पकड़ ली। वह नाना के यहाँ गया; वहाँ उसकी अच्छी खातिरदारी की गयी।

कोसल वापसी के दिन सभी लोग राजमहल से निकले । पर एक सैनिक गलती से अपनी तलवार अंदर ही भूल आया। अतः वह अपनी तलवार लेने राजमहल में गया। वहाँ उसने देखा कि एक नौकरानी उस स्थान को धो रही थी जहाँ राजकुमार विडूडभ बैठा हुआ था तथा बड़बड़ा रही थी, "चले आते हैं दासी के लड़के जगह अपवित्र करने ! जगह साफ कर लूँ।" सैनिक ने उसे कुरेदा और पूरी सच्चाई जानकर राजकुमार को बता दी।

राजकुमार यह सुनते ही आग-बबूला हो गया। उसने शाक्य वंश को नाश करने का प्रण कर लिया। राजा पसेनदि भी सारी बात सुनकर क्रुद्ध हो गया। वह शास्ता से मिला। शास्ता ने उसे ठीक से समझा दिया। तब राजा पसेनदि का गुस्सा शान्त हो गया।

समय के अन्तराल से विडूडभ कोसल देश का राजा बन गया। उसने शाक्य राज पर चढ़ाई कर दी। महानाम शाक्य और कुछ अन्य शाक्यों को छोड़कर सभी को मार डाला। जो बचे वे 'तृण शाक्य' तथा 'नल शाक्य' के नाम से जाने गए। शाक्य वंश का नाश कर विडूडभ कोसल वापस जा रहा था। रास्ते में अचिरावती नदी पड़ती थी। नदी के किनारे वे सभी रुककर विश्राम करने लगे। अचानक नदी में भीषण बाढ़ आ गई। सभी उसमें डूबकर मर गए। इस प्रकार विडूडभ का भी अंत हो गया।

जब तथागत को इसकी जानकारी हुई तो उन्होंने कहा, "विडूडभ जैसे लोग पूरे जीवन कामभोग रूपी फूल चुनते रहते हैं। ऐसे लोगों के जीवन का अंत वैसे ही हो जाता है जैसे बाढ़ सोये हुए गाँव को बहा ले जाती है। तब उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: पुप्फानि हेव पचिनन्तं, व्यासत्तमनसं नरं।
अतित्तं येव कामेसु, अन्तको कुरुते वसं।।48।।

अर्थ: काम भोग रूपी पुष्प चुनने वाले, आसक्ति में डूबे मनुष्य को, जो अभी तक कामनाओं से तृप्त नहीं हुआ है, यमराज अपने वश में कर लेता है।

कामभोग रूपी पुष्प न चुनें, यमराज पकड़ लेगा
पतिपूजिका की कथा

स्थानः जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक महिला रहती थी। सोलह वर्ष की आयु में ही उसका विवाह कर दिया गया। उसे चार पुत्र हुए। वह विहार जाकर वहाँ सफाई आदि और भिक्षुओं की सेवा करती थी। उसे पूर्व जन्म की बातें जानने की सिद्धि प्राप्त थी। अपने पूर्व जन्म में वह तावतिंस दिव्य लोक में मालभारी की पत्नी थी। धरती पर जन्म लेने पर भी उसके मन में सदा यह लालसा बनी रही कि उसका पुनर्जन्म तावतिंस दिव्य लोक में हो और वह एक बार फिर मालभारी की पत्नी बने। वह इसी भावना से भिक्षुओं की सेवा करती थी। चूँकि वह अपने पति को बहुत चाहती थी, मानों उसकी पूजा ही किया करती थी, अतः लोगों ने उसका नाम 'पतिपूजिका' रख दिया था।

एक दिन वह किसी बीमारी के कारण चल बसी। मृत्यु के बाद तावतिंस दिव्य लोक में अपने पति के पास जा पहुँची। उस समय उसकी दूसरी सहेलियाँ उसके पति की सेवा कर रही थीं। मालभारी ने पूछा, "आज सुबह से कहाँ थीं ? अभी-अभी देख रहा हूँ।" "स्वामी ! मेरी मृत्यु हो गई थी।" "सच ! कहाँ जन्म हुआ था ? " "श्रावस्ती के एक उच्च कुल में।" "वहाँ कितना समय बिताया ? " "दस मास तो माँ की कोख में और उसके बाद सोलह वर्ष की आयु में विवाह हुआ, चार पुत्रों की माता बनी और धरती पर शरीर त्यागने के बाद एक बार पुनः तावतिंस दिव्य लोक में जन्म हुआ है और आपके सामने उपस्थित हूँ।" "मनुष्यों की उम्र सामान्यतः कितनी होती है ? " "अधिक से अधिक सौ वर्ष।" "बस इतनी कम उम्र होती है ? " "जी, हाँ श्रीमान्।" "इतनी कम उम्र पाकर भी लोग क्या प्रमाद में ही अपना समय बिता देते हैं या धर्म, पुण्य आदि सत्कर्म भी करते हैं ? " "प्रश्न मत कीजिए, स्वामी ! वहाँ तो मनुष्य अपने को अजर-अमर मानते हैं और उसी के अनुकूल प्रमत्त आचरण करते हैं।" यह सुनकर मालभारी को बहुत दुःख हुआ। उसने सोचा, "आश्चर्य है ! घोर आश्चर्य है ! सिर्फ सौ वर्ष की छोटी आयु प्राप्त करने पर भी धरती के लोग प्रमत्त होकर सोते हुए अपना सारा समय नष्ट कर देते हैं। पता नहीं धरती के ये लोग अपने दुःखों से कब मुक्त होंगे ? मनुष्यों की यह आयु त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक के सिर्फ एक दिन के बराबर है। इतनी कम उम्र प्राप्त कर प्रमाद युक्त जीवन बिताना सचमुच ही एक भीषण प्रमाद की बात है।"

उधर भिक्षुओं ने देखा कि विहार साफ सुथरा नहीं है। पता किया तो पता चला पतिपूजिका का देहावसान हो गया है। वे शास्ता के पास गए और पूरी बात बताई। शाक्य-मुनि ने उन्हें समझाया, "हाँ भिक्षुओं ! मनुष्य जीवन की अवधि बहुत ही छोटी है। इसी कारण सांसारिक विषयों में लिप्त इंसान को जब मृत्यु पकड़कर ले जाती है तो वह रोता, कलपता रहता है।"

यह कहकर उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: यथापि भमरो पुप्फं, वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय, एवं गामे मुनी चरे।।49।।

अर्थ: जैसे भँवरा किसी भी पुष्प को बिना हानि पहुँचाये रस पीकर चल देता है, उसी प्रकार भिक्षु को भी भिक्षाटन करनी चाहिए।

भिक्षु भिक्षाटन की कला भँवरे से सीखें
कंजूस कोसिय की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में कोसिय नाम का एक कंजूस सेठ रहता था। वह किसी को कोई चीज न तो देना चाहता था और न देता था। एक दिन पति-पत्नी को विचार आया कि मालपुए बनायें । पर उन्हें भय था कि अगर सभी के सामने मालपुए बनाए गए तो लोग आयेंगे और उन्हें भी मालपुए खिलाने होंगे। ऐसा सोचकर वे घर की ऊपरी मंजिल में चले गए और वहीं मालपुए बनाने लगे।

उन दिनों शास्ता श्रावस्ती में ही थे। उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि पति-पत्नी जल्दी ही स्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में हैं। अत: उन्होंने भन्ते महामोग्गलान को भेजा कि वे पति-पत्नी को जेतवन विहार लेकर आएँ। मोग्गलान वहाँ पहुँचे और पति-पत्नी को दान देने का महत्त्व बताया। कोसिय सेठ उनकी बातों को सुनकर बहुत प्रभावित हुआ। उसने मालपुए की पूरी टोकरी भन्ते मोग्गलान को दान स्वरूप दे दी। इसी के साथ एक आश्चर्यजनक बात हुई। उसकी अपनी क्षुधा गायब हो गई।

मोग्गलान सेठ पति-पत्नी को लेकर शास्ता के पास पहुँचे। पति-पत्नी ने मालपुओं की टोकरी से सभी भिक्षुओं और तथागत को मालपुए परोसे। इसके बाद कंजूस सेठ ने अपनी सारी सम्पत्ति बौद्ध त्रिरत्न : बुद्ध, धर्म एवं संघ को समर्पित कर दी और स्वयं भिक्षु बन गया।

कुछ दिनों बाद मालपुए के प्रश्न पर भिक्षुगण मोग्गलान की प्रशंसा कर रहे थे। शाक्य-मुनि ने उनके वार्त्तालाप को सुनकर कहा : भिक्षुओं ! भिक्षु को लोगों के अंदर श्रद्धा बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए और भँवरे की तरह ग्राम वासियों से भिक्षाटन करना चाहिए जैसा मेरा शिष्य मोग्गलान करता है।"

भिक्षु को चाहिए कि वह जब भिक्षाटन करे तो बिना किसी भेद-भाव के भिक्षा ग्रहण करे और भिक्षा प्राप्त कर विहार वापस आ जाए।





गाथा: न परेसं विलोमानि, न परेसं कताकतं।
अत्तनो व अवेक्खेय्य, कतानि अकतानि च।।50।।

अर्थ: मनुष्य को चाहिए कि वह न तो दूसरों के दोष देखे और न दूसरों के कृत-अकृत पर ध्यान दे। उसे चाहिए कि वह अपने ही कृत-अकृत को देखे।

अपना ही कृत-अकृत देखें
पावेयक आजीवक की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक महिला पावेयक नामक एक आजीवक नग्न साधु को पुत्र समान मानती थी। उसकी खातिरदारी में वह कोई कसर नहीं छोड़ती। उसके पड़ोसी अक्सर बुद्ध के प्रवचन सुनने जाया करते थे और लौटकर उसे बताते 'बुद्ध के धर्म प्रवचन की विधि अनूठी है'। वे बुद्ध-शिक्षा की खूब प्रशंसा करते थे। बार-बार सुनकर उस स्त्री के मन में भी बुद्ध-प्रवचन सुनने की प्रबल इच्छा उठ खड़ी हुई। उसने पावेयक से अपने मन की बात कही कि वह भी बौद्ध विहार जाकर धर्मदेशना सुनना चाहती है। पावेयक ने उसे सलाह दी कि वह वहाँ नहीं जाए। उसके बार-बार आग्रह करने पर भी वह साधु नहीं माना। अत: उस महिला ने सोचा कि क्यों न बुद्ध को अपने घर पर ही भोजन के लिए आमंत्रित कर लूँ। यह विचार कर संध्या बेला में उसने अपने पुत्र से कहा कि वह बौद्ध विहार जाए और कल के लिए तथागत को भोजन के लिए आमंत्रित करके आए।

उसका पुत्र जब शाक्य-मुनि को आमंत्रित करने जा रहा था तो उसे रास्ते में पावेयक मिल गया। पूछने पर लड़के ने बता दिया कि वह शास्ता को निमंत्रित करने जा रहा है। उस साधु ने उसे सलाह दी कि वह बुद्ध को निमंत्रित करने न जाए। लड़के ने कहा, "मुझे अपनी माँ से बहुत डर लगता है। अतः मुझे जाना ही होगा।" "ठीक है तुम अपने घर का रास्ता उसे मत बताना।" "जो आदेश श्रीमान् ! " यह कहकर वह लड़का बौद्ध विहार चला गया और बुद्ध को भोजन के लिए निमंत्रित कर दिया। रास्ते में वह नग्न साधु एक बार फिर मिला। पूछने पर उस लड़के ने स्पष्ट कर दिया कि उसने अपने घर का पता नहीं बताया है। इससे वह नग्न साधु बहुत प्रसन्न हुआ।

दूसरे दिन वह आजीवक उस महिला के यहाँ सुबह-सुबह ही आ पहुँचा। वह पीछे के कमरे में बैठ गया। उसने सोचा, "अच्छा हुआ बुद्ध को मार्ग नहीं बताया गया। अब तो वह नहीं आ पाएगा।" लेकिन उसे नहीं मालूम था कि जिसने बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर 'अमृत महानिर्वाण का मार्ग' खोज लिया था, उसके लिए भौतिक जगत का कोई मार्ग खोजना कठिन नहीं था। उसे गाँव के रास्ते बताने की जरूरत कहाँ ?

शाक्य मुनि नियत समय पर उस महिला के यहाँ पहुँचे। महिला ने शरीर के पंच अंगों से सादर प्रणाम किया और आसन पर बैठाकर भोजन कराया। भोजनोपरान्त शास्ता ने मधुर स्वर में अनुमोदन किया। वह महिला बार-बार 'साधु-साधु' कह रही थी। आजीवक यह सुनकर आग-बबूला होने लगा। वह भला-बुरा कहते हुए पीछे के कमरे से निकला और वहाँ से चला गया।

उपासिका उसके व्यवहार से शर्मिन्दगी महसूस कर रही थी। अत: उसका ध्यान धर्मकथा से विचलित हो रहा था। बुद्ध ने उससे पूछा, "धर्मकथा में मन क्यों नहीं लगा पा रही हो ? " "भन्ते ! इस घटना से मेरा मन विचलित हो गया है।" तब बुद्ध ने समझाया, "धर्म के विपरीत बातों में चित्त को रमने नहीं देना चाहिए। ऐसी बातों से मन हटाकर केवल अपने करने या न करने पर ध्यान देना चाहिए।"





गाथा: यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, अफला होति अकुब्बतो।।51।।

अर्थ: जैसे फूल सुन्दर हो, पर वह गंध रहित हो उसी प्रकार कहे अनुसार कार्य न करने वाले की सुभाषित वाणी निष्फल होती है।

कौन फूल उपयोगी है ?
छत्रपाणि उपासक की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में छत्रपाणि नाम का एक उपासक रहता था। वह त्रिपिटक का ज्ञाता था तथा अनागामी भी था। किसी दिन वह शास्ता का धर्मप्रवचन सुनने पहुँचा। वह शास्ता के सामने गया, सादर प्रणाम किया और फिर एक तरफ बैठ गया।

थोड़ी देर बाद राजा प्रसेनजित भी तथागत की पूजा-आराधना और धर्म-प्रवचन के लिए आया। छत्रपाणि वहीं बैठा हुआ था। उसने सोचा, "इस समय बौद्ध विहार में राजा के आगमन पर उठकर उसका सत्कार करना उचित है या नहीं ? " फिर उसने सोचा, "इस समय संसार में जो सर्वश्रेष्ठ हैं मैं उनके सम्मुख बैठा हूँ। राजा का स्तर तो उससे नीचे होता है। अतः जो सर्वश्रेष्ठ बुद्ध हैं उनके सामने अगर राजा का सत्कार करने के लिए खड़ा होता हूँ तो निश्चय ही यह शास्ता का अपमान होगा। इसके विपरीत अगर राजा के सम्मान में खड़ा नहीं होता हूँ तो राजा नाराज होगा। राजा नाराज होता है तो होए, मैं शास्ता की तुलना में उसे अधिक सम्मान नहीं दूँगा। अतः मैं अपने आसन से नहीं उठूँगा।" ऐसा विचार कर वह अपने आसन से नहीं उठा।

बुद्धिमान और समझदार लोग, बड़े-बुजुर्गों एवं श्रेष्ठ लोगों के सामने सम्मानित नहीं किए जाने पर नाराज नहीं होते परन्तु राजा इस प्रकृति का नहीं था। छत्रपाणि से प्रणाम और उचित सम्मान न पाकर वह मन ही मन क्रोधित हो गया और शास्ता को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया।

शाक्य मुनि सर्वज्ञानी थे। उन्होंने राजा के हाव-भाव से उसका मनोभाव पकड़ लिया। अतः उसका गुस्सा शांत करने के लिए उन्होंने छत्रपाणि के गुणों का बखान किया। इससे राजा का क्रोध कुछ हद तक शांत हो गया।

कुछ दिनों बाद राजा ने एक दिन छत्रपाणि उपासक को अपने महल के सामने से, भोजन के बाद छाता ताने हुए तथा जूते पहने हुए जाते देखा। उसने अपने सिपाहियों को भेजकर उसे बुलाने के लिए कहा। छत्रपाणि ने राजा के निकट पहुँच कर छाता और जूता एक तरफ रख दिया और उन्हें प्रणाम कर खड़ा हो गया। राजा ने व्यंग्य करते हुए कहा, "क्यों जी, उपासक ? जूता और छाता अलग क्यों रख दिया ? " "राजा से मिलने आ रहा हूँ, अतः उनके सम्मान में।" "तो तुम्हें आज समझ में आ रहा है कि मैं राजा हूँ।" "नहीं राजन ! मैं तो सदैव ध्यान रखता हूँ कि आप राजा हैं।" "अगर ऐसी बात थी तो उस दिन शास्ता के सामने तुम बैठे क्यों रहे। उस दिन तुम मेरे सम्मान में खड़े क्यों नहीं हुए ? " "राजन ! उस दिन मैं संसार में सर्वश्रेष्ठ के आगे बैठा हुआ था। अगर प्रदेश के राजा के सम्मान पर मैं उठ खड़ा होता तो संसार के राजा का अपमान होता। यह सोचकर मैं अपने आसन से नहीं उठा।"





गाथा: यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, सफला होति कुब्बतो।।52।।

अर्थ: जैसे फूल सुन्दर हो और उसमें गंध भी हो, उसी प्रकार कहे अनुसार कार्य करने वाले की सुभाषित वाणी सफल होती है।

सुभाषित वाणी गंधमय फूल की तरह होती है
छत्रपाणि उपासक की कथा

तब राजा ने कहा, "चलो ठीक है ! मैंने तुम्हारी बात मान ली। सुना है तुम इस लोक और परलोक के विषय में, उचित-अनुचित के विषय में तथा त्रिपिटक के अच्छे विद्वान हो। कृपया अंत:पुर में आकर रानी को धर्मकथा सुनाया करो।" "नहीं राजन ! ऐसा नहीं हो सकेगा।" "क्यों श्रीमान् ?" "राजन ! राजा के महल में उचित-अनुचित सभी कुछ होता रहता है। अतः वह दोषपूर्ण होता है।" "क्या ऐसी बात तो नहीं कि उस दिन की सत्कार वाली घटना को याद किये हुए हो ? " "नहीं श्रीमान् ! ऐसी बात नहीं है। गृहस्थों का राजा के अंत:पुर में जाना उचित नहीं है। उनसे कोई अनुचित कार्य हो सकता है। अतः उचित यही होगा कि आप किसी भिक्षु को अंत:पुर में आने के लिए आमंत्रित कर लीजिए और उससे धर्मकथा सुनवा लीजिए।" "ठीक है, तुम जा सकते हो", राजा ने कहा। उसे विदा कर राजा शास्ता के पास गया और उनसे आग्रह किया, "भन्ते ! रानी मल्लिका देवी एवं उनकी पतोहू, वासभखत्तिया आपसे धर्म प्रवचन सुनना चाहती हैं। अतः अच्छा होता कि आप प्रतिदिन भिक्षु संघ के साथ मेरे राजमहल में आते और धर्म कथा सुनाते।" तब शाक्य-मुनि ने राजा को समझाया, "राजन ! बुद्ध कहीं भी बँधकर धर्म प्रवचन नहीं किया करते। इसलिए मेरे लिए संभव नहीं होगा कि प्रतिदिन तुम्हारे यहाँ आकर धर्म-प्रवचन किया करूँ।" "अगर ऐसी बात है तो भन्ते किसी अन्य भिक्षु को भेज दें।" तब शास्ता ने आनन्द स्थविर को यह कार्य सौंपा। वे प्रतिदिन अंत:पुर में जाकर धर्मकथा सुनाने लगे। उन दोनों श्रोताओं में मल्लिका देवी बहुत ही श्रद्धा से कथा सुनती थीं। वह किसी भी कथा को सावधानी से सुन तुरंत ही हृदयंगम कर लेती थीं। पर वासभखत्तिया न तो सावधानी से सुनती थी और न मन लगाती थी। अतः वह कुछ भी हृदयंगम नहीं कर पाई। एक दिन तथागत ने आनन्द भन्ते से पूछा, "क्या उपासिकाएं रानी और उनकी पतोहू मन से धर्म ज्ञान प्राप्त कर रही हैं ? " तब आनन्द ने बताया, "रानी मल्लिका तो श्रद्धा से धर्म श्रवण कर रही है पर उसकी पतोहू कथा में मन नहीं लगाती है।"

यह सुन शास्ता ने ये गाथाऐं कहीं।





गाथा: यथापि पुप्फरासिम्हा, कयिरा मालागुणे बहू।
एवं जातेन मच्चेन, कत्तब्बं कुसलं बहुं।।53।।

अर्थ: जिस तरह कई फूलों के ढेर से फूल चुनकर मालायें गूँथ लेता है, उसी प्रकार संसार में उत्पन्न हुए प्राणी को चाहिए कि वह बहुत सारे शुभ कर्म करे।

इंसानः शुभ कर्म करः जीवन छोटा है
विशाखा की कथा

स्थानः पुब्बाराम, श्रावस्ती

एक समय की बात है। शास्ता श्रावस्ती के पुब्बाराम विहार में रह रहे थे। उस समय पाँच सौ महिलाओं के एक समूह ने उनसे धर्म की दीक्षा ली। वे सभी सदाचारिणी महिलाएं थीं। तथागत ने आनन्द को बताया कि इससे पूर्व भी वे कस्सप बुद्ध के समय में सद्गुणों के प्रति पूर्णतः समर्पित थीं। इसी कारण बुद्ध के समय भी उनका पुनर्जन्म हुआ था। व्यक्ति को जीवन में सदैव कुशल कर्म करते रहना चाहिए। एक कुशलकर्मी अपने सद्कर्मों से अपना यह लोक और परलोक दोनों ही सुधार लेता है। अतः इंसान को सदा अच्छे कर्म करने पर जोर देना चाहिए। अगर फूलों का ढेर रखा हो परन्तु माली कुशल न हो तो वह अच्छी माला नहीं बना सकता। लेकिन अगर माली चतुर हो तो वह अच्छी माला बना लेगा।

मनुष्य के साथ भी यही होता है। अगर उसमें कुशल मूल है पर श्रद्धा कम है तो वह बहुत कुशल कर्मों को करने में सक्षम नहीं होता है। दूसरी ओर अगर कुशल मूल भी कम है और श्रद्धा भी कम है तो निश्चय ही वह कुशल कर्मों को करने में सक्षम नहीं होता। इसके विपरीत उसमें कुशल मूल भी अधिक मात्रा में हो तथा श्रद्धा भी अधिक मात्रा में हो तो निश्चय ही वह बहुत ही अधिक कुशल मूल के कर्म करेगा।

अच्छे कर्म करने में और एक सुन्दर माला बनाने में समानता है। अच्छे फूल चुनने का तात्पर्य अच्छे-अच्छे कर्म करना है। जैसे माली के सुन्दर माला की खुशबू दूर-दूर तक जाती है वैसे ही इंसान के कर्म ऐसे होने चाहिए कि उसके सद्कर्मों की सुगंध दूर-दूर तक लोगों को पहुँचे।





गाथा: न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतं च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायति।।54।।

अर्थः फूलों, चन्दन, तगर या जूही किसी की भी गन्ध उल्टी हवा की दिशा में नहीं जाती किन्तु सज्जनों की सुगन्ध हवा की विपरीत दिशा में भी जाती है। सद्‌पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध फैलाता है।

सद्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध फैलाता है
आनन्द थेर के प्रश्न की कथा

स्थान :जेतवन, श्रावस्ती

एक बार आनन्द थेर श्रावस्ती में सायंकाल ध्यान विपश्यना कर रहे थे । उनका ध्यान फूलों की ओर गया। और वे सुगन्ध के विषय में चिंतन करने लगे, "इन फूलों की सुगन्ध कितनी अच्छी है ? किन्तु ये उसी दिशा में जा रहे हैं जिस दिशा में हवा का रुख है। फूलों की सुगन्ध को तो चारों ओर फैलना चाहिए। ऐसा क्यों है कि उनकी सुगन्ध सभी दिशाओं में न फैलकर सिर्फ हवा की दिशा में ही फैल रही है। शास्ता ने तीन प्रकार के उत्तम गंध की चर्चा की है :- 1. मूलगंध 2. सारगंध एवं 3. पुष्पगंध। क्या कोई ऐसी सुगन्ध हो सकती है जो हवा के विपरीत दिशा में भी फैले ? " ऐसा सोचते हुए आनन्द शास्ता के पास गए, प्रणाम किया और उनसे अपने मन की बात कही "भन्ते ! क्या कोई ऐसी सुगन्ध भी है जो अनुकूल-प्रतिकूल दोनों दिशाओं में जाती हो।"

शाक्य-मुनि ने आनन्द को स्पष्ट करते हुए कहा, "आनन्द ! इन तीनों गन्धों से परे भी एक गन्ध है जिसे शीलगंध कहते हैं। जो व्यक्ति बुद्ध, धर्म एवं संघ के त्रिरत्न की शरण में जाता है और शिक्षा को जीवन में उतारता है, हिंसा (प्राणातिपात) से दूर रहता है, चोरी (अदत्तादान) नहीं करता, कामभोगों में गलत (व्यभिचार, मिथ्याचार) नहीं करता, असत्य भाषण (मृषावाद) नहीं बोलता, सुरा, मद्यपान एवं नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करता, शीलवान की तरह जीवन जीता है और जीवन में शुभ कर्म करने वाला (कल्याणधर्मकर्त्ता) है, दुर्गुण एवं निम्न विचारों से मुक्त चित्त से गृहस्थ धर्म का पालन करता है, मुक्तहस्त दान देता है, सभी इन्द्रियों पर संयम रखता है, त्याग को जीवन में उचित महत्त्व देता है, योग में निष्ठावान होकर उसमें स्थित रहता है, वह व्यक्ति एक अच्छा मनुष्य बन जाता है। निश्चय ही लोग ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं। ऐसे व्यक्ति की देवतागण भी सभी दिशाओं में प्रशंसा करते हैं। ऐसे व्यक्ति के गुणों की सुगंध चारों तरफ फैलती है, लोग उसका सम्मान करते हैं तथा सर्वत्र उसकी प्रशंसा करते हैं। निश्चय ही शीलगन्ध एक ऐसी गन्ध है जो हवा की दिशा में, हवा के विपरीत दिशा में और हवा की दिशा और विपरीत दोनों दिशाओं में चलती है। गुणों की सुगन्ध सभी दिशाओं में जाती है।





गाथा: चन्दनं तगरं वापि, उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं, सीलगन्धो अनुत्तरो।।55।।

अर्थ: चन्दन या तगर, कमल या जूही - इन सभी गन्धों की तुलना में शील (सदाचार) की सुगन्ध श्रेष्ठ होती है।

सदाचार की सुगन्ध श्रेष्ठ होती है
आनन्द थेर के प्रश्न की कथा

टिप्पणी : त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक में पारिजातक वृक्ष की लम्बाई-चौड़ाई सौ योजन मानी जाती है। उसके फूलों की सुन्दरता पचास योजन तक दीखती है और सुगन्ध सौ योजन तक। लेकिन वह हवा के अनुकूल ही जा सकती है, विपरीत दिशा में तो आठ अंगुल भी जाना संभव नहीं है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ फूल की गंध का भी हवा के प्रतिकूल जाना संभव नहीं है। वृक्षों में श्रेष्ठ चंदन की गन्ध, टगर की गन्ध तथा जूही (मल्लिका) के फूलों की गन्ध भी वायु के अनुकूल ही जा सकती है, प्रतिकूल नहीं।

परन्तु बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध एवं बुद्ध श्रावकों के गुणगानों की प्रशंसा की गन्ध हवा के प्रतिकूल जाने में भी सक्षम है। ऐसा कैसे ? क्योंकि अच्छा आदमी अपने शीलों की गंध सभी दिशाओं में फैलाता हुआ चलता है। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि 'उसकी सुगन्ध हवा के विपरीत दिशा में नहीं जा सकती।'

इस प्रकार हम पाते हैं कि शीलवान व्यक्तियों की शीलगन्ध की कोई समानता नहीं कर सकता। यह अनूठी और अद्वितीय है। इसके समान कोई गंध है ही नहीं।





गाथा: अप्पमत्तो अयं गन्धो, य्वायं तगरचन्दनं।
यो च सीलवतं गन्धो, वाति देवेसु उत्तमो।।56।।

अर्थ: तगर और चन्दन की गन्ध तो थोड़ी-सी ही फैलती है। शीलवानों की सुगंध देवलोक तक फैल जाती है।

शीलवानों की सुगन्ध देवलोक तक जाती है
महाकस्सप थेर के पिंडपात की कथा

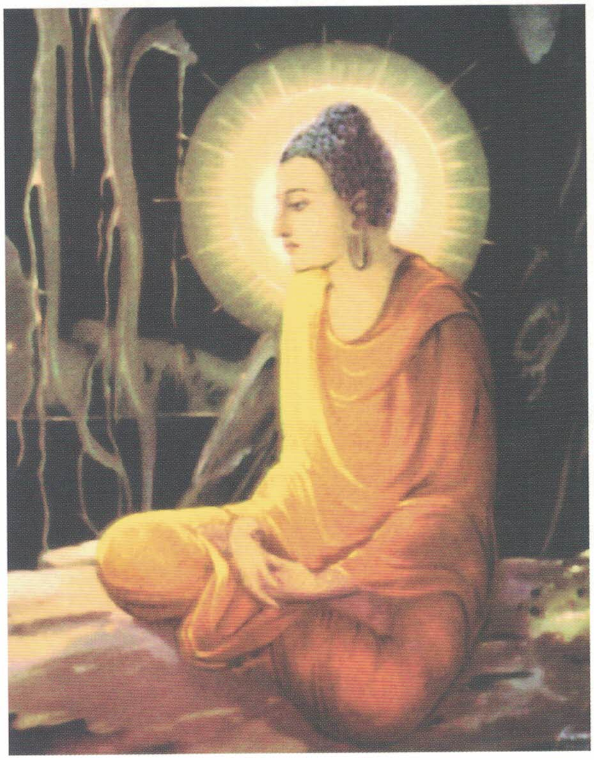
स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन थेर महाकस्सप निरोध समाधि से उठे। उनके मन में आया कि आज किसी गरीब से भिक्षा ग्रहण करूँगा ताकि उसे इसका पुण्यफल मिल सके। उधर देवताओं के राजा इन्द्र को पता चल गया कि महाकस्सप भिक्षाटन करने जा रहे हैं। उसने भी महसूस किया कि बुद्ध काल में उसने अभी तक किसी भिक्षु को भिक्षादान नहीं किया है। अतः उसने सोचा कि वह स्थविर को भोजनदान देकर पुण्य कमाएगा। अतः शक्र और उसकी पत्नी सुजाता ने एक गरीब जुलाहे का रूप लिया और गरीबों के मुहल्ले में आकर रहने लगे।

महाकस्सप भिक्षाटन करते हुए शक्र की झोपड़ी के सामने पहुँचे। शक्र और सुजाता ने उन्हें सादर प्रणाम कर उनसे भिक्षापात्र ले लिया और चावल-कढ़ी आदि खाद्य सामग्री डालकर उन्हें दे दी। कढ़ी बहुत ही सुगंधित थी। खाद्य-पदार्थों की सुगंध पूरे राजगृह में फैल गई। महाकस्सप को लग गया कि यह दानकर्त्ता कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। फिर उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से जान लिया कि यह देवताओं का राजा इन्द्र है। शक्र ने इस बात को स्वीकार किया कि वह देवताओं का राजा शक्र है। उसने यह भी स्पष्ट किया कि उसे आज तक सुअवसर नहीं मिला था कि वह बुद्ध-काल में किसी भिक्षु को भिक्षा दे सके। उसने कहा, "मैं दान करके पुण्य कमाना चाहता था, मेरी पुण्य कमाने की इच्छा थी। अतः मैंने ऐसा किया।" फिर महाकस्सप को अपनी पूरी श्रद्धा के साथ प्रणाम कर इन्द्र और सुजाता अन्तर्ध्यान हो गए।

तथागत विहार में विराजमान थे। उन्होंने यह सब देखा और भिक्षुओं को इस बारे में बताया। भिक्षुगण को आश्चर्य हुआ कि इन्द्र को किस प्रकार पता चल गया कि महाकस्सप अभी-अभी निरोध समाधि से उठे हैं, भिक्षाटन करने जा रहे हैं और यही अवसर उसके लिए सर्वश्रेष्ठ है जब वह भिक्षादान दे सकता है। तब शाक्य-मुनि ने भिक्षुओं को संबोधित किया, "भिक्षुओं ! इन्द्र ने मेरे पुत्र महाकस्सप के शील की गंध से जानकर भोजन-दान दिया है। टगर और चंदन से आने वाली गंध थोड़ी होती है पर शीलवान पुरुषों के शील की गंध देवलोक में भी जाती है।"

तब उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: तेसं संपन्नसीलानं, अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं, मारो मग्गं न विन्दति। ।57। ।

अर्थ: शीलवान, आलस से मुक्त, ज्ञान द्वारा मुक्त व्यक्तियों के मार्ग को 'मार' नहीं जान सकता।

मार किसे नहीं जान सकता ?
गोधिक थेर के परिनिर्वाण की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक समय की बात है। मगध के इसिगिल पर्वत पर थेर गोधिक विपश्यना साधना कर रहे थे। वे साधना की एक सीढ़ी चढ़े और बीमार पड़ गए। पर उन्होंने अपनी साधना नहीं छोड़ी। उन्होंने कठोर परिश्रम जारी रखा और फिर बीमार पड़ गए। यह सिलसिला चलता रहा। जब भी वे साधना की अगली सीढ़ी तक पहुँचते, कमजोर होकर बीमार पड़ जाते। एक बार तो वे छः महीनों तक बीमार रहे। लेकिन वे भी दृढ़ निश्चयी थे। उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी। उन्होंने निर्णय लिया कि इस बार कुछ भी हो जाए वे अपनी साधना पूरी करके ही रहेंगे, अर्हत्व प्राप्त करके ही छोड़ेंगे, भले ही इसके लिए उन्हें मृत्यु का ही वरण क्यों न करना पड़े। इसलिए बिना किसी विश्राम के वे अपनी साधना में लगे रहे। इतना करने पर भी वे समाधि के निकट नहीं पहुँच सके। अतः उन्होंने निर्णय लिया कि अपनी गर्दन काट लेंगे। उन्होंने ऐसा ही किया। लेकिन मृत्यु के समय उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। तथागत ने अपनी अन्तर्दृष्टि से यह सारा दृश्य देखा और भिक्षुओं के साथ इसिगिल पर्वत पर पधारे।

'मार' को भी इस घटना की जानकारी हुई। वह भी वहाँ जा पहुँचा जहाँ बुद्ध भिक्षुगण के साथ विद्यमान थे। उसने बुद्ध से प्रश्न किया कि गोधिक थेर का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। तब शाक्य-मुनि ने कहा, "मार ! गोधिक ने कहाँ पुनर्जन्म ग्रहण किया है यह जानकर तुम्हारा कोई लाभ नहीं होगा। तुम जानकर क्या करोगे ? पूर्णतः आस्रवमुक्त गोधिक ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। तुम अपनी पूरी शक्ति से भी पता नहीं लगा सकते कि ऐसे अर्हत मरणोपरांत कहाँ जाते हैं।"

वेणुवन में धर्म चर्चा करते समय बुद्ध ने बताया कि मार शीलवान, उद्यमी तथा उत्साही व्यक्तियों का पीछा नहीं कर सकता।





गाथा: यथा संकारधानस्मिं, उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ, सुचिगन्धं मनोरमं।।58।।

अर्थ: जैसे कूड़ा-कर्कट फेंके गए राजमार्ग पर सुगन्धित तथा मनभावक कमल का फूल खिल उठे ....

बुद्ध श्रावक कैसे शोभता है ?
गर्हादत्त की कथा

स्थान :जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में श्रीगुप्त तथा गर्हादत्त नाम के दो मित्र रहते थे। श्रीगुप्त शास्ता का शिष्य था और गर्हादत्त निर्ग्रन्थों (जैनों) का। गर्हादत्त को निर्ग्रन्थ साधु सदा समझाते, "अपने मित्र श्रीगुप्त से क्यों नहीं पूछते कि वह श्रमण गौतम के पास क्यों जाता है ? वहाँ उसे कुछ नहीं मिलेगा। अगर वह हमारे यहाँ आकर धर्म श्रवण करे तो उसका बहुत कल्याण होगा।" गर्हादत्त जब भी अपने मित्र श्रीगुप्त से मिलता तो यही प्रश्न किया करता। श्रीगुप्त बहुत दिनों तक अपने मित्र की बात सुनता रहा और चुप रहा पर अन्त में उसने खिन्न होकर अपने मित्र से पूछा, "मित्र ! तुम सुबह-शाम यही प्रश्न करते हो कि मैं श्रमण गौतम के पास क्यों जाता हूँ और तुम्हारे गुरू का प्रवचन सुनने क्यों नहीं आता। लेकिन मुझे यह तो बताओ कि तुम्हारे गुरू क्या जानते हैं।" गर्हादत्त ने उत्तर दिया, "मित्र ! यह पूछो कि मेरे गुरू क्या नहीं जानते। मेरे गुरू के लिए अज्ञात नाम की कोई चीज नहीं है। वे भूत, वर्त्तमान एवं भविष्य सभी कुछ जानते हैं। उन्हें यह भी मालूम है कि 'यह होगा' और 'यह नहीं होगा।" "अगर ऐसी बात है तो तुमने आजतक अपने गुरूओं के विषय में क्यों नहीं बताया ? अब मैंने उनका महत्व समझ लिया है। कल ही मेरी ओर से उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित करो।" गर्हादत्त अपने गुरूओं के पास गया और सादर प्रणाम कर उन्हें बताया कि श्रीगुप्त ने उन सभी को अगले दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया है। गुरूओं ने पूछा, "क्या उसने स्वयं कहा है ? " "हाँ श्रीमान्।" "तब तो बहुत ही अच्छा हुआ। हम प्रसन्न और संतुष्ट हुए। हमारी चाह पूरी हो जाएगी। अगर वह हमारा शिष्य हो जाएगा तो फिर उसकी सारी सम्पत्ति हमारी हो जाएगी।"

श्रीगुप्त का भवन बहुत विशाल था। उसने एक लम्बा और चौड़ा नाला खुदवाया और उसे कूड़े-कचड़े से भर दिया। उसके ऊपर सावधानी से चादर बिछा आसन लगा दिया। बडे-बड़े बर्त्तनों को केले के पत्तों तथा चादर से ढँक दिया। देखने से लगता था कि इन बर्त्तनों में चावल और कढ़ी रखी हुई है और उसे केले के पत्तों तथा चादर से ढँक दिया गया था। निगंठ आए और जैसे ही वे सभी अपने-अपने आसन पर बैठने लगे, आसन खिसक गए और वे सभी उस खाई में गिर गए। श्रीगुप्त बोल उठा, "आप तो भूत, भविष्य और वर्त्तमान के ज्ञाता हो। आप तो दूसरों के विचारों को जानते, समझते हो। आपकी ऐसी दुर्गति कैसे हो गई ? " इस प्रकार निगंठों की पोल खुल गई।





गाथा: एवं संकारभूतेसु, अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय, सम्मासंबुद्धसावको।। 59।।

अर्थ: ....वैसे ही कूड़ा कर्कट के समान अन्धे अज्ञानी लोगों में सम्यकसम्बुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से प्रकाशित होता है।

श्रावक प्रज्ञा से शोभता है
गर्हादत्त की कथा

गर्हादत्त इस घटना से बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने श्रीगुप्त से बदला लेने का निश्चय किया। उसने भी बुद्ध और भिक्षुसंघ को आमंत्रण दिया। श्रीगुप्त ने इस बीच बुद्ध को पूरी घटना सुना दी और यह भी बता दिया कि संभव है गर्हादत्त ने बदला लेने की भावना से निमंत्रण दिया हो। शास्ता ने अपने अन्तर्नेत्र से देखा कि ये दोनों मित्र स्रोतापन्न स्थिति प्राप्त करने के लिए परिपक्व हैं। अतः उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

गर्हादत्त ने भी वही सब किया जिसे श्रीगुप्त ने किया था। उसने भी एक लम्बी और चौड़ी खाई खुदवाई और उसमें जलते अंगारे डलवा दिए तथा खाई पर चटाई बिछवा दी और उसके ऊपर आसन लगवा दिया। बड़े-बड़े खाली कड़ाहों को केले के पत्तों और कपड़ों से इस प्रकार ढँक दिया ताकि आभास होने लगे कि ये चावल और कढ़ी से भरे हुए हैं। निमंत्रण के दिन शाक्य-मुनि अपने शिष्यों के साथ गर्हादत्त के घर पहुँचे। बुद्ध ने जब चटाई पर पैर रखा तो वह अपनी जगह पर ज्यों का त्यों रहा, नीचे की ओर न तो खिसका और न गिरा। वे चटाई पर कदम रखकर आगे की ओर बढ़ते चले गए और जलते अंगारे सुन्दर फूलों में बदलने लगे। चारों तरफ मनमोहक और सुगन्धित फूल खिल उठे। उत्सव-स्थल का नजारा देखते ही बनता था। गर्हादत्त फटी-फटी आँखों के साथ देखता ही रह गया। उसने शास्ता को साष्टांग प्रणाम किया। भोजन में भी सभी चीजें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो गईं।

भोजन समाप्त हुआ। भोजनोपरान्त शास्ता ने धर्म प्रवचन किया। उन्होंने समझाया, "लोग अज्ञानी होने के कारण मेरे शिष्यों के गुणों और उनकी शक्ति को नहीं जानते हैं। ऐसे ही अज्ञानी लोगों को इस संसार में 'अंधा' कहा जाता है। इसके विपरीत प्रज्ञावान, ज्ञानी पुरुषों को दृष्टि वाला कहा जाता है।"

यह कहकर शास्ता ने ये दो गाथाएं कहीं।





DHAMMAPADA

PUPPA VAGGA

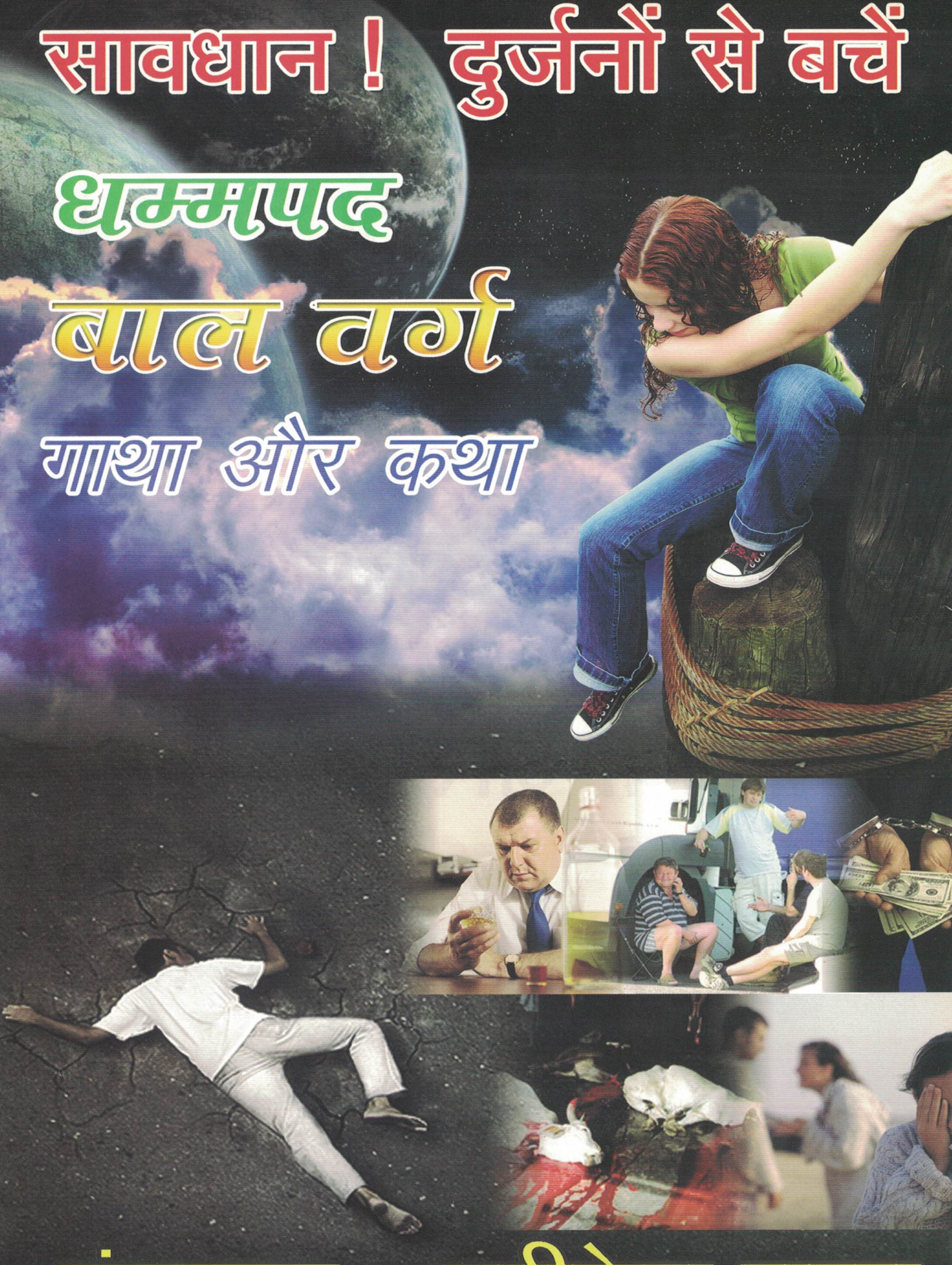
संस्कारक : हृषीकेश शरण

सावधान ! दुर्जनों से बचें

धम्मपद

बाल वर्ग

गाथा और कथा



संस्कारक : हृषीकेश शरण

सावधान ! दुर्जनों से बचें ।

धम्मपद

बाल वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

बाल वर्ग



गाथा: दीघा जागरतो रत्ति, दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघो बालानं संसारो, सद्धम्मं अविजानतं ।।60।।

अर्थ: जागने वाले के लिए रात एक न कटने वाली रात हो जाती है। थके हुए आदमी के लिए एक योजन का मार्ग भी बहुत लम्बा हो जाता है। उसी प्रकार सद्धर्म न जानने वालों के लिए संसार का चक्र लम्बा हो जाता है।

किसकी यात्रा लम्बी हो जाती है ?
दरिद्र दुग्गत की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन राजा प्रसेनजित नगर भ्रमण कर रहे थे तब उनकी दृष्टि एक अति सुन्दर स्त्री पर पड़ी। उनके हृदय में काम-वासना का तूफान उठ खड़ा हुआ। उन्होंने पता लगाया तो पता चला कि वह एक गरीब व्यक्ति दुग्गत की पत्नी थी। राजा उस स्त्री को किसी भी प्रकार प्राप्त करने के लिए पागल हो रहा था।

अत: उसने दुग्गत को बुलाकर उसके नहीं चाहने पर भी उसे जबरदस्ती अपने यहाँ नौकरी पर रख लिया। पर वह दुग्गत के काम में कोई ऐसा दोष नहीं ढूँढ़ पाया जिसके आधार पर उसे मृत्यु दंड देकर उस स्त्री को हथिया सके।

एक दिन राजा ने सोचा कि इसे कोई ऐसा कार्य दिया जाए जो संपादित नहीं हो पाएगा। उसका अभिप्राय मात्र इतना था कि इस बहाने वह दुग्गत को प्राण दंड दे देगा और उसकी पत्नी को अपना लेगा। उसने संध्या बेला में स्नान से पूर्व ही कुमुद कमल के फूल और अरुणावती लाने का आदेश दिया। अगर वह शाम के स्नान से पूर्व ये फूल लेकर नहीं आयेगा तो फिर उसे मृत्यु-दंड मिलेगा।

दुग्गत राह में खाने के लिए थोड़ा-सा भोजन पोटली में बाँधकर कुमुद कमल के फूल और अरुणावती लाने के लिए चल पड़ा। रास्ते में उसने भोजन के थोड़े से अंश को एक राहगीर को खिलाया और बचे हुए चावल के कुछ दाने नदी में फेंक दिया। फिर वह जोर से बोल उठा, "हे नदी के रखवालों ! आप देखो कि किस प्रकार राजा प्रसेनजित मुझे असंभव कार्य सौंपकर मार डालना चाहता है। उसने मुझे ऐसे फूल लाने का आदेश दिया है जिसे शाम तक लाना असंभव है। मैंने भूखे राहगीर को भोजन कराया है तथा मछलियों और जीव-जंतुओं के खाने के लिए चावल के दाने दिए हैं। अत: आप कृपा करके मेरे लिए कुमुद कमल का फूल और अरुणावती मँगाने की व्यवस्था कर दीजिए।" यक्षों के राजा ने उसकी प्रार्थना सुनी तो उसे दुग्गत पर दया आ गई। उसने दुग्गत को कुमुद कमल का फूल और अरुणावती लाकर दे दिया।

उधर राजा प्रसेनजित अपना धैर्य खोता जा रहा था। उसने संध्या होने से पूर्व ही नगर-द्वार बंद करा दिया ताकि दुग्गत नगर में प्रवेश न कर पाए। दुग्गत जब लौटा तब द्वार बंद था। उसने द्वारपाल से द्वार खोलने का आग्रह किया पर उसे द्वारपाल ने बताया कि दरवाजे की चाबी राजा के पास है। अत: उसने अरुणावती को महल की दीवार पर रख दिया और कुमुद कमल के फूल को जमीन में गाड़ दिया और जोर से बोला, "हे नगर वासियों ! तुम मेरे साक्षी बनो। मैंने राजा द्वारा दिए गए असंभव कार्य को कर दिखाया है पर राजा मुझे जान से मार देना चाहता है।" ऐसा कहकर वह जेतवन विहार की ओर चला गया और संपूर्ण रात भिक्षुओं के पास भयभीत होकर सोता रहा।

उधर राजा प्रसेनजित की हालत बहुत खराब थी। उसे पूरी रात बुरे-बुरे सपने आते रहे, भयानक आवाजें आती रहीं। अगले दिन उसने अपने दुखद स्वप्नों का जिक्र रानी मल्लिका से किया और उसकी सलाह पर बुद्ध के पास गया। वहाँ पहुँच कर राजा ने शास्ता को प्रणाम किया और उन्हें बताया, "कल की रात इतनी लम्बी थी मानों समाप्त ही नहीं हो रही थी।" तभी दुग्गत ने स्वर मिलाते हुए कहा, "भन्ते ! मुझे भी कल एक योजन की यात्रा बहुत लम्बी लग रही थी।"

बुद्ध ने दोनों की मनोदशा देखी तथा उन्हें समझाते हुए कहा, "रात्रि के स्वप्न में वे भयानक आवाजें उन चार लोगों की थी जिन्होंने 'कस्सप बुद्ध' के समय पराई स्त्रियों के साथ संबंध रखा था। पराई स्त्रियों के साथ गमन करने के कारण वे अब तक नरक में लौह कुंड में सजा भुगत रहे हैं।" राजा सब कुछ समझ गया, उसे अपनी गलती का एहसास हो गया।



तब शास्ता ने धर्म प्रवचन करते हुए यह गाथा कही।



गाथा: चरं चे नाधिगच्छेय्य, सेय्यं सदिसमत्तनो ।
एकचरियं दळहं कयिरा, नत्थि बाले सहायता ।।61।।

अर्थ: अगर सन्मार्ग पर चलते समय मनुष्य को अपने समान या अपने से श्रेष्ठ सहयात्री न मिले तो उसे दृढ़ता के साथ अकेला ही चलना चाहिए। परन्तु किसी भी मूल्य पर उसे मूर्ख का साथ नहीं पकड़ना चाहिए, मूर्ख से मित्रता नहीं करनी चाहिए।

मूर्ख का साथ छोड़ दें
महाकस्सप थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक समय महाकस्सप थेर पिप्पलीगुहा में रह रहे थे। उनके दो शिष्य उनकी सेवा किया करते थे। महाकस्सप थेर बहुत ही पहुँचे हुए ज्ञानी भिक्षु थे।

उनके शिष्यों में एक गुरू की पूरी तन्मयता से सेवा करता था। दूसरा आलसी था, वह स्वयं सेवा क्या करे, आज्ञाकारी शिष्य द्वारा किए गए कार्य को ही अपना कार्य कह दिया करता था। जैसे, अगर पहला शिष्य थेर के मुँह धोने के लिए दतुअन, पानी आदि रख देता था तो दूसरा शिष्य स्थविर के पास जाकर कहता कि दतुअन आदि रख दिए गए हैं, चलकर दाँत साफ कर लीजिए। आज्ञाकारी शिष्य को जब यह पता चला तो उसे अच्छा नहीं लगा। उसने कुछ ऐसा किया कि स्थविर को पता चल गया कि दूसरा शिष्य आलसी था। इससे आलसी भिक्षु नाराज हो गया। महाकस्सप ने उस कर्त्तव्यबोधहीन भिक्षु को भिक्षुओं के आचरण के विषय में समझाने की चेष्टा की तो वह जल भुन उठा। उसके अन्दर प्रतिशोध की ज्वाला धधकने लगी।

आलसी भिक्षु एक दिन भिक्षाटन हेतु गाँव में गया। उसने वहाँ उपासकों को बताया कि महाकस्सप बीमार हैं और ऐसा कहकर उसने उनसे स्वादिष्ट भोजन ले लिया और स्वयं ही मार्ग में खा गया। महाकस्सप ने उसको डाँटकर समझाने की कोशिश की पर वह पुनः नाराज हो गया।

दूसरे दिन महाकस्सप आज्ञाकारी शिष्य के साथ भिक्षाटन के लिए निकले। उधर दूसरा शिष्य क्रोध से पागल हो रहा था। उसने आव देखा, न ताव। विहार की वस्तुओं को इधर-उधर फेंक दिया और विहार में आग लगा दिया।

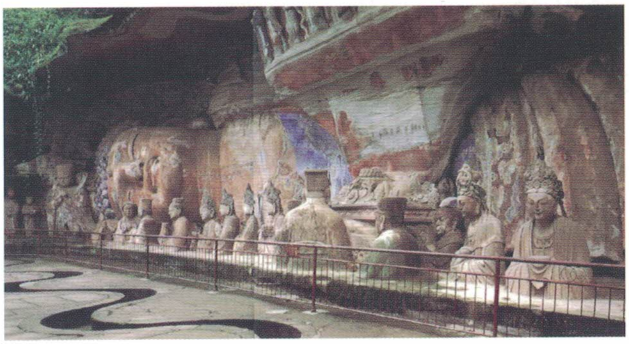
शास्ता को उक्त घटना की जानकारी मिली। उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि महाकस्सप को ऐसे मूर्ख का साथ छोड़ देना चाहिए। उन्होंने कपि जातक की कथा सुनाई कि यह दुष्ट भिक्षु पूर्व जन्म में भी इस प्रकार के कर्म किया करता था। एक पूर्व जन्म में यह दुष्ट भिक्षु एक बन्दर था तथा महाकस्सप एक पक्षी थे। उस समय भी चिड़िया से उपदेश सुनकर वानर रूप में वह क्रुद्ध हुआ था तथा उसने चिड़िया का घोंसला उजाड़ दिया था और भाग गया था। ऐसे दुष्ट व्यक्ति का संग त्याग देना चाहिए।

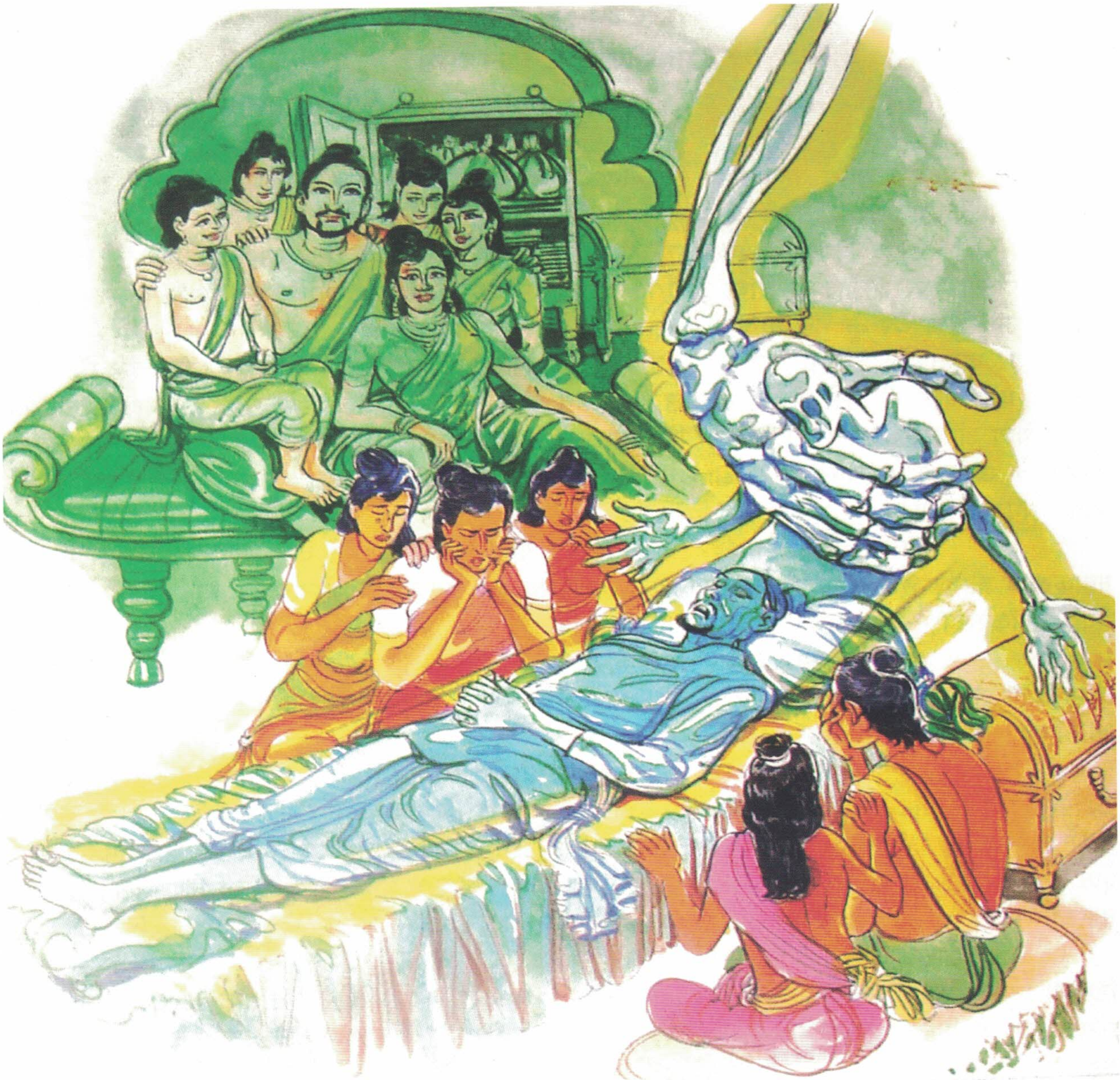
तब उन्होंने उक्त गाथा कही।

टिप्पणी: अगर गलती से मूर्ख से मित्रता हो भी जाए तो उस परिस्थिति में यथाशीघ्र, अति सावधानी से उसके संग से निकल आना चाहिए क्योंकि मूर्ख की मित्रता मंहगी और कष्टदायी होती है, उससे वैर भी मँहगा पड़ता है।

उदाहरण के लिए कुत्ते से न तो वैर अच्छा है और न प्रीति। कहा गया है "काटे, चाटे स्वान को, दोऊँ भाँति विपरीत।"

अर्थात् कुत्ते से मित्रता भली नहीं है, क्योंकि तब वह हमें चाटने लगेगा। उससे वैर भी उचित नहीं है क्योंकि तब वह हमें काट लेगा।





गाथा: पुत्ता मत्थि धनं मत्थि, इति बालो विहञ्ञति ।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि, कुतो पुत्ता कुतो धनं ।।62।।

अर्थ: 'यह पुत्र मेरा है', 'यह धन मेरा है' - ऐसा सोचकर मूर्ख व्यक्ति का जीवन दुखमय हो जाता है। अरे ! जब मनुष्य स्वयं अपने आप का नहीं है तो कहाँ से उसका पुत्र और कहाँ से उसका धन होगा ?

किस बात की आसक्ति ?
आनन्द श्रेष्ठी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक करोड़पति सेठ रहता था। उसका नाम आनन्द श्रेष्ठी था। वह स्वयं तो बहुत बड़ा कंजूस था ही, अपने पुत्र मूलसिरि को भी शिक्षा दिया करता था कि दान-दक्षिणा कदापि नहीं देनी चाहिए। उससे धन नष्ट हो जाता है। वह पुत्र को सलाह देता, "धन का स्वाभाविक नाश हो जाता है। अत: इस पर ध्यान रखना चाहिए। खुशामदी लोग दीमक की तरह धन को खा जाते हैं। अत: उनसे बचकर रहना चाहिए। घर में शराबी लोगों के एकत्र होने पर सतर्क हो जाना चाहिए और इस प्रकार धन का संचय करते हुए घर चलाना चाहिए।" आनन्द श्रेष्ठी ने पाँच बड़े-बड़े घड़ों में चालीस करोड़ मूल्य की सोने की मुहरें छिपा रखी थीं जिसकी जानकारी उसके पुत्र को भी नहीं थी।

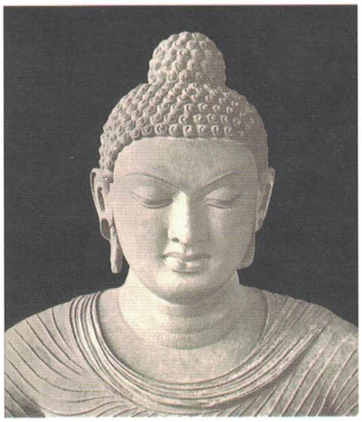
मृत्यु पर किसका वश चलता है ? बिना बुलाए, बिना बताए, अनचाहे मेहमान की तरह कभी भी आ धमकती है। आनन्द श्रेष्ठी के साथ भी यही हुआ। एक दिन मृत्यु आई और वह दुनियाँ से चल बसा। पर मरते समय भी उसकी अपने धन में आसक्ति बनी रही।

श्रेष्ठी जीवन पर्यन्त कंजूस था। उसने कभी भी भलाई का काम नहीं किया था। कर्म के देवता के लेखा-जोखा में कोई गलती नहीं होती । उसका जन्म श्रावस्ती के पास ही भिखारियों के एक गाँव में हुआ। जैसे ही वह अपनी माँ की कोख में प्रविष्ट हुआ, भिखारियों के जैसे बुरे दिन आ गए। उनकी आमदनी घट गई, लोगों ने भिक्षा देना कम कर दिया। अत: उन्होंने आपस में विचार-विमर्श कर पता कर लिया कि महिला के गर्भधारण के बाद से ही उनके बुरे दिन आ गए हैं। अत: उन्होंने उस स्त्री को गाँव से बाहर निकाल दिया।

पुत्र-जन्म हुआ। वह बहुत ही कुरूप और भयावह था। बड़ा हुआ। एक दिन वह जब मूलसिरि के घर के सामने से गुजर रहा था तो उसे देखकर घर के बच्चे जोर-जोर से रोने लगे। मूलसिरि ने अपने लोगों से भिखारी को पिटवा दिया।

बुद्ध आनन्द के साथ वहाँ से गुजर रहे थे। उन्होंने इस घटना को देखा और आनन्द से कहकर मूलसिरि को बुलवा लिया। उन्होंने उसे बताया कि वह भिखारी पूर्वजन्म में उसका पिता था। मूलसिरि को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। तब उन्होंने जवान भिखारी को बुलाया और उससे पूछा, "बताओ कि पूर्व जन्म में जब तुम मूलसिरि के पिता थे तब तुमने धन कहाँ गाड़ रखा था ?" जवान भिखारी ने स्थान बता दिया। जमीन खोदने पर वह धन मिल गया।

इस घटना के बाद मूलसिरि बुद्ध का भक्त बन गया। बुद्ध ने शिष्यों को समझाया कि हम सदैव गलतफहमी में रहते हैं कि हम सदा के लिए जीवित रहेंगे। अत: हमारी सांसारिक चीजों में आसक्ति हो जाती है जबकि सच्चाई यह है कि जीवन तो पानी के बुलबुले की तरह है। वह जल्दी ही फूट जाएगा।





गाथा: यो बालो मञ्ञति बाल्यं, पण्डितो वापि तेन सो।
बालो च पण्डितमानी, स वे बालो ति वुच्चति।।63।।

अर्थ: अगर मूर्ख, मूर्ख होते हुए यह मानता है कि
वह मूर्ख है तो वह पण्डित के ही समान है।
इसके विपरीत जो है तो मूर्ख पर समझता है
अपने को विद्वान, वह वास्तव में मूर्ख है।

वस्तुत: मूर्ख कौन है ?
दो जेबकतरों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मगाथा शास्ता ने जेतवन में दो गिरहकटों के संदर्भ में कही थी।

एक बार दो मित्र जेतवन में धर्मप्रवचन सुनने सामान्य नागरिकों के समूह में बैठ गए। उनमें से एक ने बहुत ही ध्यान से धर्म-श्रवण किया और स्रोतापन्न हो गया। दूसरा किसी को खोजने में ही व्यस्त रहा जिसकी जेब काट सके। उसने किसी के वस्त्र से पाँच मासा सोना काट लिया। उसे बेचकर उसने अपने घर में उस दिन अच्छे-अच्छे पकवान बनवाए। धर्मश्रोता के घर में पैसे की कमी थी। अत: उसके घर में साधारण भोजन भी नहीं बन पाया। चोर अपनी कमाई पर बहुत प्रसन्न था तथा उसने अपने धर्मश्रोता मित्र को, उसकी पत्नी के सम्मुख लज्जित करते हुए कहा, "तू तो अपने को बहुत बड़ा विद्वान समझता है। पर कहाँ गई तुम्हारी विद्वत्ता ? तुम तो अपने लिए भोजन का भी प्रबंध नहीं कर पाए।" दूसरे मित्र ने उसकी बातें ध्यान पूर्वक सुनीं तथा मन ही मन सोचा कि मेरा मित्र निश्चय ही मूर्खतावश इस प्रकार की बातें कर रहा है। उसने काम तो गलत किया है पर बातें ऐसी कर रहा है जैसे उसने कोई सद्कर्म किया हो।

धर्मश्रोता बाद में बौद्ध विहार गया और शास्ता को पूरी कहानी सुनाई।

बुद्ध ने शिष्यों को समझाया कि इंसान जैसा है उसे स्वयं को वैसा ही स्वीकार करना चाहिए यही सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है।

टिप्पणी: बाजार में तरह-तरह के दर्पण बिकते हैं। सामान्य सतह वाला दर्पण वह है जिसमें तस्वीर हू-ब-हू ज्यों कि त्यों दीखती है। दूसरे दर्पणों में आकृति विकृत दीखती है। मनुष्य जैसा है, वैसा देख नहीं पाता। जीवन के दर्पण में, हम जैसे हैं, अगर ठीक उसी प्रकार अपने को देखते हैं, तब तो ठीक है। लेकिन अगर हम जैसे नहीं हैं, अपने आप को वैसा मानकर चलते हैं तो फिर जीवन में समस्या उठ खड़ी होती है।

जैसे बेईमान व्यक्ति अगर स्वीकार कर ले कि वह बेईमान है तो फिर संभावना है कि वह बेईमानी से अपने को मुक्त कर ले पर अगर बेईमान होकर वह ईमानदार होने का स्वांग भरता है तो फिर भगवान ही उसका मालिक है।





गाथा: यावजीवं पि चे बालो, पण्डितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति, दब्बी सूपरसं यथा।।64।।

अर्थ: मूर्ख जीवन पर्यन्त भी अगर पंडित पुरुष के साथ रहे तो भी वह धर्म के विषय में कुछ भी नहीं जान पायेगा जैसे सूप के अंदर पड़ा हुआ चम्मच सूप के स्वाद को जरा भी नहीं जान पाता।

सद्पुरुषों के साथ से लाभ उठाने के लिए परिश्रम करना पड़ेगा
थेर उदायी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

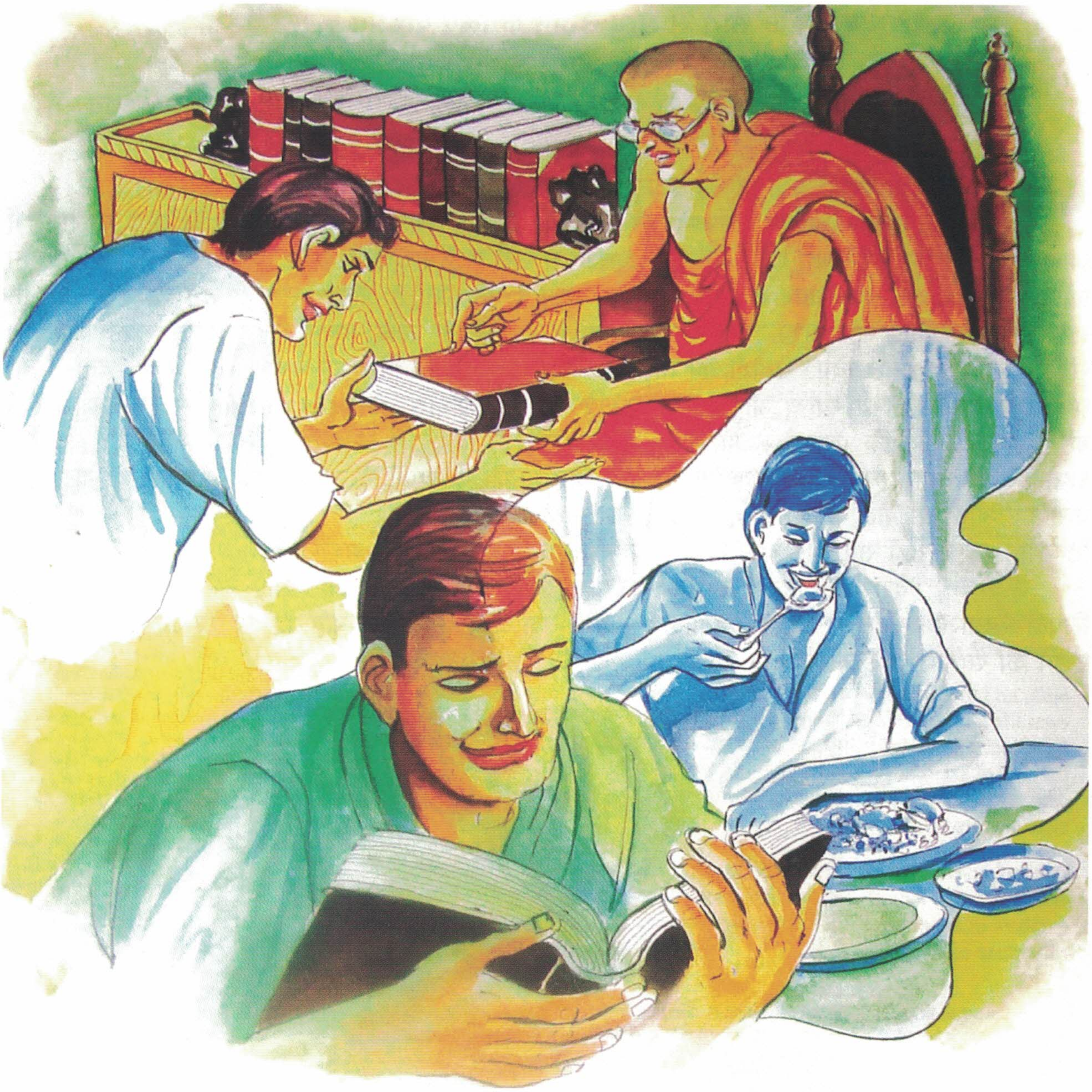
यह गाथा तथागत ने जेतवन प्रवास काल में थेर उदायी के संदर्भ में कही थी।

उदायी स्थविर धर्मसभा की समाप्ति पर, महास्थविरों के चले जाने के बाद धर्मसभा में जाकर धर्मासन पर बैठ जाता था। आगन्तुक भिक्षुओं ने उसे कई बार ऐसा करते देखा। उसे देखकर उन्होंने सोचा, "यह स्थविर यहाँ विहार में अनेक वर्षों से रहता है, विचरता है और शास्ता के संग समय बिताता है, यह निश्चय ही कोई बहुत बड़ा ज्ञानी होगा।" अतः उन्होंने अपनी शंका समाधान हेतु उससे स्कन्ध आदि से संबंधित कुछ प्रश्न पूछ दिए। उदायी को तो कुछ आता था नहीं, तो फिर वह बेचारा उत्तर क्या देता ? वह धर्म से सम्बन्धित विषय स्कन्ध और आयतन आदि पर कोई प्रकाश नहीं डाल पाया। आगन्तुक भिक्षुओं को बहुत आश्चर्य हुआ कि ऐसा कैसे हो सकता है कि एक ही विहार में तथागत के साथ अनेक वर्षों से साथ रहते हुए भी उदायी धर्म का क, ख, ग भी नहीं जान पाया। वे अपनी उत्सुकता रोक न सके। वे शास्ता के पास गए और पूरी बात बताई। तब शास्ता ने यह गाथा कही।

टिप्पणी: बुद्ध ने यहाँ सूप और चम्मच का उदाहरण दिया है जो बड़ा ही सटीक है।

दूसरा उदाहरण है चंदन के वृक्ष से लिपटे हुए साँप का। साँप सदैव चंदन के वृक्ष से लिपटा रहता है। चंदन में सुगंध होता है पर वर्षों तक लिपटे रहने के बाद भी साँप अपना विष संजोकर रखने का स्वभाव नहीं त्यागता है।





गाथा: मुहुत्तमपि चे विञ्ञू, पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति, जिह्वा सूपरसं यथा।।65।।

अर्थ: यदि समझदार व्यक्ति किसी पंडित के साथ क्षण भर भी रहे तो वह ज्ञान को तत्काल उसी प्रकार जान जाता है जैसे जिह्वा सूप के स्वाद को तुरंत जान जाती है।

ज्ञानी धर्म का सार तुरंत समझ जाता है
भद्रवर्गीय भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा तथागत ने जेतवन प्रवास काल में तीस पावावासी भिक्षुओं के संदर्भ में कही थी।

किसी समय पवेय्यका देश के कुछ नवयुवक जंगल में मौज-मस्ती के लिए निकले। उनके साथ एक वैश्या भी थी। जब वे मौज-मस्ती में खोये हुए थे तब वह वैश्या उनके बहुमूल्य आभूषण आदि कीमती चीजें लेकर भाग गई। जब वे नौजवान होश में आये तो हक्के-बक्के रह गए। वे वैश्या को इधर-उधर बेचैन होकर खोजने लगे। उन्हें वैश्या तो मिली नहीं पर मार्ग में उनका बुद्ध से साक्षात्कार हो गया। उन्होंने बुद्ध से पूछा कि क्या आपने फलाँ-फलाँ औरत को देखा है जिसे हम लोग ढूँढ़ रहे हैं। वह उनके आभूषण लेकर भाग गई है।

तथागत ने उनसे उल्टा प्रश्न किया, "तुम किसे ढूँढ़ रहे हो ? क्या अधिक हितकर है - अपने आप को ढूँढ़ना या किसी पराई स्त्री को ढूँढ़ना ?" उन्होंने सोच-समझकर उत्तर दिया, "अच्छा तो यही होगा कि हम दूसरों को ढूँढ़ने की बजाय स्वयं अपने-आप को ढूँढ़ें।" शास्ता ने तब उन्हें पास बुलाकर धर्म की बात बताई। ध्यान पूर्वक धर्म की बात सुनकर उनकी आँखों के ऊपर पड़ा पर्दा उठ गया। उनके अन्र्तनेत्र खुल गए। वे सभी स्रोतापन्न हो गए।

आगे चलकर शास्ता कभी जेतवन विहार में जीवन के आवागमन की अनंत श्रृंखला पर प्रवचन दे रहे थे। अनात्मग्ग (अनादि) सूत्र की धर्मदेशना सुनकर वे सभी उपासक अर्हत्व प्राप्त कर गए।

मात्र एक धर्मदेशना श्रवण के प्रभाव से अर्हत्व प्राप्ति पर भिक्षुओं को घोर आश्चर्य हुआ। उन्होंने यह प्रश्न धर्म सभा में चर्चा के लिए उठाया, "अरे ! कितने आश्चर्य की बात है कि इन भिक्षुओं ने एक ही बैठक में तत्काल अर्हत्व प्राप्त कर लिया।" शास्ता ने इस प्रश्न को सुना और फिर गहराई में जाकर समझाया कि इन तीस परस्पर मित्र भिक्षुओं ने, तुण्डिलजातक के अनुसार महातुण्डिल से धर्मदेशना सुनकर तुरंत धर्मज्ञान से पंचशील अपना लिया था। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि आज जब अवसर मिला तो उन्होंने तत्काल ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया।





गाथा: चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकप्फलं।।66।।

अर्थ: दुष्ट बुद्धि वाले व्यक्ति स्वयं ही अपने शत्रु हैं। वे अपने ही शत्रु बनकर घूमते रहते हैं और पापमय कर्म करते रहते हैं। उन पापमय कर्मों का कड़ुआ फल मिलना सुनिश्चित है।

दुष्ट व्यक्ति अपना शत्रु स्वयं है
सुप्रबुद्ध कोढ़ी की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में सुप्रबुद्ध नामक एक कोढ़ी रहता था। उदान ग्रंथ में उसकी कथा का विस्तृत ढंग से जिक्र आता है।

एक दिन सुप्रबुद्ध धर्म सभा में एक किनारे बैठा हुआ धर्म प्रवचन सुन स्रोतापन्न को प्राप्त हो गया। उसका मन पुलकित हो उठा और वह शास्ता को अपनी सफलता के विषय में बताने के लिए चल पड़ा। देवराज इन्द्र ने इसे देखा तो सोचा कि सुप्रबुद्ध की परीक्षा लेनी चाहिए। अतः वह सुप्रबुद्ध के सम्मुख प्रकट हुआ तथा उससे कहा, "सुप्रबुद्ध ! तुम बहुत ही गरीब हो। अतः दया के पात्र हो। तुम सिर्फ इतना कह दो कि तुम्हें तथागत के त्रिरत्न - बुद्ध, धर्म एवं संघ में कोई श्रद्धा नहीं है। मैं तुम्हें धन से मालामाल कर दूँगा।" सुप्रबुद्ध इस बात से खुश नहीं हुआ, वरन् नाराज होते हुए कहा, "अरे मूर्ख ! निर्लज्ज ! तुमने सोचा कैसे कि मैं दरिद्र, कृपण एवं दयापात्र हूँ ? मेरे पास जब त्रिरत्न का धन उपलब्ध है, तब मैं कृपण कैसे हुआ ? मैं तो बहुत ही सुखपूर्वक जीवन जी रहा हूँ। मेरे पास प्रचुर मात्रा में धन है क्योंकि जिसके पास श्रद्धा, शील, ह्री, पापभीरुता, श्रुत, त्याग एवं प्रज्ञा का धन है वह दरिद्र कैसे हुआ ? उसका जीवन तो पूर्णतः सफल जीवन है। मेरे पास ये सातों आर्योचित धन हैं। जिनके पास ये सात धन उपलब्ध हों उन्हें बुद्ध या प्रत्येक बुद्ध भी दरिद्र नहीं कह सकते।"

यह उत्तर सुन देवराज वहाँ से चला गया तथा शास्ता के पास जाकर बताया कि किस प्रकार उसने सुप्रबुद्ध की परीक्षा ली थी और किस प्रकार सुप्रबुद्ध परीक्षा में खरा उतरा। तब तथागत ने इन्द्र को समझाया कि सुप्रबुद्ध जैसे उपासक की त्रिरत्न में श्रद्धा को डिगाना असंभव है। बाद में सुप्रबुद्ध भी शास्ता के पास पहुँचा और उसने अपनी सफलता की चर्चा की। वहाँ से जब वह लौट रहा था तो रास्ते में एक तरुण गौ ने उसे टक्कर मार दी और उसकी मृत्यु हो गई।

भिक्षुओं ने शास्ता से सुप्रबुद्ध के मृत्यु का कारण पूछा। बुद्ध ने बताया कि वह गौ वस्तुतः एक यक्षिणी थी जो अनेक जन्मों से चार पुरुषों को, जिनमें सुप्रबुद्ध भी एक था, टक्कर मारकर मृत्यु के घाट पहुँचा दिया करती थी। वास्तव में एक पूर्व जन्म में वह यक्षिणी एक वैश्या थी और एक बार ये चार युवक उसके साथ मौज-मस्ती करने जंगल गए। दिन भर उसके साथ मौज-मस्ती किया और फिर संध्या होने पर सोचा कि क्यों न इस वैश्या के सारे आभूषण छीन लिए जायें तथा उसकी हत्या कर दी जाय। वैश्या को जब वे मार रहे थे तब उसने भी प्रण लिया कि मैं भी अनेक जन्मों तक यक्षिणी का रूप लेकर इनके मृत्यु का कारण बनकर इनसे बदला लेती रहूँगी।

उसके अगले जन्म के विषय में पूछे जाने पर बुद्ध ने बताया कि उसका अगला जन्म तावतिंस दिव्य लोक में हुआ है। वह किस कर्म के कारण कोढ़ी हुआ, इसका स्पष्टीकरण करते हुए बुद्ध ने बताया कि एक पूर्व जन्म में तगरशिखी प्रत्येक बुद्ध को देखकर उन पर थूकते हुए उसने कहा था, "यह कौन कोढ़ी जा रहा है ?" अपने इसी कर्म के कारण वह नरक में पैदा हुआ और इस जन्म में कोढ़ी हुआ।





गाथा: न तं कम्मं कतं साधु, यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं, विपाकं पटिसेवति।।67।।

अर्थ: उस कर्म का करना ठीक नहीं है जिसे करके पछताना पड़े और जिसका फल रोते-रोते भोगना पड़े।

वैसा कर्म न करें कि पीछे पछताना पड़े
किसान की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा-कथा बुद्ध ने जेतवन विहार के प्रवास काल में एक कृषक के संदर्भ में कही थी।

एक दिन प्रातः काल शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि जेतवन का एक किसान स्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में है। अतः वे प्रातः काल ही आनन्द के साथ भिक्षाटन करते हुए वहाँ गए जहाँ किसान खेती कर रहा था। कृषक ने शाक्य-मुनि को प्रणाम किया और पुनः अपने कृषि-कार्य में लग गया।

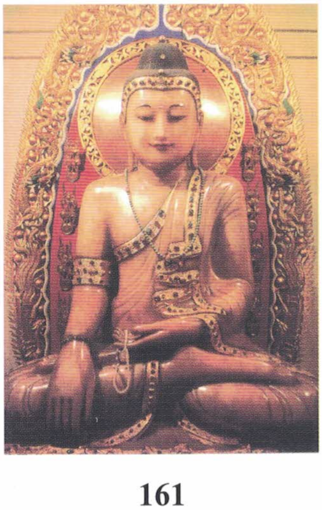
किसान जहाँ खेती कर रहा था वहीं पर चोरी किए गए धन की एक थैली पड़ी हुई थी। रात में चोर उसे किसी के घर से उठा लाए थे तथा बँटवारा करते समय उसे गलती से छोड़ गए थे। कृषक ने उसे देखा तो वह उधेड़-बुन में पड़ गया कि वह उसका क्या करे। वह निर्णय नहीं ले पा रहा था। अतः उसने उस थैली को मिट्टी से ढँक दिया ।

बुद्ध ने आनन्द को उस धन की थैली की ओर इशारा करते हुए बताया, "आनन्द, उस जहरीले साँप को देखो।" आनन्द ने भी उस थैली की ओर देखते हुए कहा, "हाँ भन्ते ! मैं उस जहरीले साँप को देख रहा हूँ।"

बुद्ध और आनन्द भिक्षाटन हेतु आगे चले गए। उधर धन का मालिक चोरों के पदचिन्हों का पीछा करते-करते उस खेत तक पहुँचा और धन की थैली पाकर राजा के सिपाहियों ने किसान को पकड़ लिया और पकड़कर राजा के पास ले गए। किसान अपनी रक्षा में कुछ भी नहीं कह सका और राजा ने उसे मृत्युदंड दे दिया।

राजा के सिपाही उसकी कमर में रस्सी लगा, दोनों हाथों को पीछे की ओर बाँध वधस्थल की ओर ले जा रहे थे। वह कृषक पूरे रास्ते बुदबुदाता रहा, "आनन्द ! उस जहरीले साँप को देखो।" "हां भन्ते ! मैं उस जहरीले साँप को देख रहा हूँ।" सिपाहियों ने जब यह बात लगातार सुनी तो उन्हें उत्सुकता हुई तथा उन्होंने किसान से पूछा कि वह क्या बड़बड़ा रहा था। किसान ने उन्हें कुछ नहीं बताया और कहा कि वह इसका स्पष्टीकरण राजा के सामने ही दे सकता है।

अतः सिपाहीगण उसे राजा के पास ले गए। राजा के पूछने पर किसान ने पूरी-पूरी बात बता दी। तब राजा उस किसान के साथ संध्या बेला में बौद्ध विहार गया और शास्ता को घटना की पूरी जानकारी दी। शास्ता ने राजा को बताया कि किसान सच बोल रहा था कि उसने चोरी नहीं की थी, उन्होंने सुबह की घटना सुनाई कि कैसे उन्होंने उस धन को 'जहरीला साँप' कहा था। इस प्रकार बुद्ध और आनन्द को साक्षी बनाकर वह किसान मृत्यु दंड से बच गया।





गाथा: तं च कम्मं कतं साधु, यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो, विपाकं पटिसेवति।।68।।

अर्थ: कर्म वही शुभ होता है जिसके करने के बाद पछताना नहीं पड़े बल्कि जिसका फल ऐसा हो कि हम उसे प्रसन्नचित्त होकर भोग सकें।

शुभ कर्म : जिससे पछताना न पड़े
सुमन माली की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजा बिंबिसार के यहाँ सुमन नाम का एक माली था। वह प्रतिदिन राजा को सुन्दर-सुन्दर फूल अर्पित किया करता था। एक दिन शास्ता अपने भिक्षुसंघ के साथ उधर से गुजरे। सुमन ने उनकी दिव्य आभा देखी और वह गद्‌गद् हो गया। उसके अन्दर प्रीति जाग पड़ी और वह उन पुष्पों को, जो राजा के लिए ले जा रहा था, शास्ता को समर्पित करने के लिए तड़प उठा। पर उसी समय उसके मन में द्वंद्व भी उठा। अगर उसने ये फूल बुद्ध को अर्पित कर दिए और वे फूल राजा को नहीं मिले तो क्या होगा ? संभवतः राजा उसे इस जन्म के लिए मृत्यु-दंड दे देगा पर अगर उसने इन फूलों को बुद्ध के ऊपर चढ़ा दिया तो क्या होगा ? उसका जन्म-जन्मान्तर सुधर जाएगा।

सुमन अपने द्वंद्व से ऊपर उठा। उसने निर्णय लिया और सही निर्णय लिया। शास्ता के ऊपर उन फूलों की बरसात कर दी। वे फूल आकाश में जाकर वहीं रुक गए। फूलों के समूह ने मिलकर एक चाँदनी बना दी। अब बुद्ध जब चलते, तो वह चाँदनी भी उनके साथ-साथ चलती। जब वे रुकते तो वह भी रुक जाती। बाँये मुड़ते तो वह बाँये मुड़ जाती, दायें मुड़ते तो वह दायें मुड़ जाती। सीधा चलते तो सीधी चलती जाती। तथागत के अद्‌भुत स्वरूप एवं आभा को देखने के लिए चारों तरफ से अपार भीड़ दौड़ पड़ी। राजा बिंबिसार पहले से ही स्रोतापन्न थे। जब उन्होंने यह बात सुनी तो वे भी अपने-आप को रोक नहीं पाये। शास्ता के दर्शन हेतु आए। उनकी पूजा-अर्चना की और भोजनदान दिया। सुमन माली को उचित पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

संध्या-बेला में जब धर्म-सभा बैठी तब आनन्द ने शास्ता से प्रश्न किया कि आज का सुन्दर कर्म करके सुमन माली ने किस प्रकार का पुण्य अर्जित किया है। तब तथागत ने बताया, "सुमन को अपने प्राण का भय हो सकता था और इस कारण वह फूल न चढ़ाने का निर्णय ले सकता था। पर बिना भय किए, अपनी जान की परवाह न करके सुमन ने बुद्ध को श्रद्धा सुमन अर्पित किए। इसलिए आने वाले जन्मों में कभी भी चार अपायों में जन्म नहीं लेगा। समय आने पर वह प्रत्येक बुद्ध बनेगा।"





गाथा: मधु वा मञ्ञति बालो, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चती पापं, अथ बालो दु:खं निगच्छति।।69।।

अर्थ: जब तक पाप का फल नही मिलता है तब तक मूर्ख उसे मधु के समान मीठा मानता है। किन्तु जब उसे पाप का फल मिलता है तब उसे कठोर दु:ख का वहन करना पड़ता है।

पाप मधु समान मीठा हो ही नहीं सकता
उत्पल थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

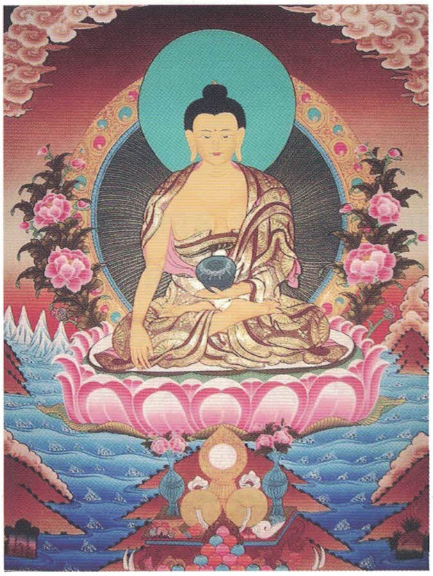
उत्पल थेरी का जन्म श्रावस्ती के एक श्रेष्ठिकुल में हुआ था। वह बहुत ही सुन्दर थी और उसके विवाह हेतु अनेकानेक प्रस्ताव आए। कोई भी परिवार ऐसा न बचा जिसने विवाह का प्रस्ताव नहीं भेजा हो। तब उसके पिता ने सोचा कि मैं सबों का मन तो रख नहीं सकता। अतः पूर्व जन्मों के कर्मफल से उसने पुत्री से प्रव्रजित होने का प्रस्ताव रखा और उसकी पुत्री खुशी-खुशी प्रव्रजित हो गई। वह साधना में रत हो गई और अपनी कठिन तपस्या से उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

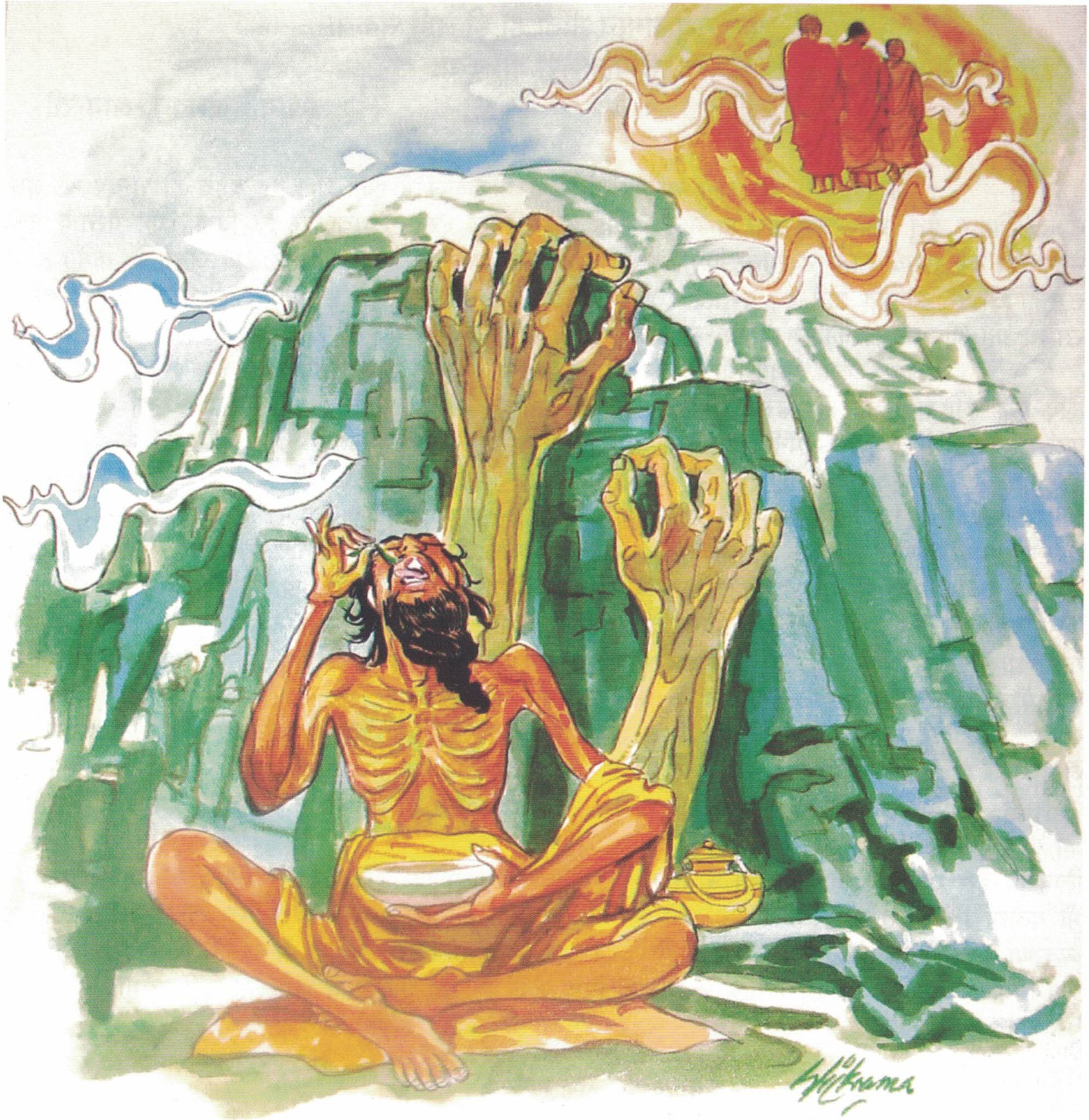
उन दिनों भिक्षुणियों के लिए वन में रहना वर्जित नहीं था। अतः अन्धवन में लोगों ने उसके लिए एक कुटिया बनवा दी, उसमें उसके रात्रि शयन के लिए चौकी की व्यवस्था कर दी तथा दरवाजे पर पर्दा भी लगवा दिया। वह अपनी कुटिया में रहकर साधना करने लगी।

एक दिन की बात है। वह भिक्षाटन हेतु श्रावस्ती गई हुई थी। उसके ममेरे भाई नन्द को पता चल गया था कि वह अन्धवन में रहती है। उत्पल के भिक्षुणी बनने के पूर्व से ही वह उस पर अनुरक्त था। थेरी के श्रावस्ती से लौटने के पूर्व ही वह कुटिया में प्रवेश कर चौकी के नीचे छिप गया। उत्पल ने अभी कमरे में प्रवेश किया ही था और चौकी पर बैठी ही थी कि वह चौकी के नीचे से निकल आया। उत्पल चूँकि बाहर प्रकाश से आई थी अतः उसे स्पष्ट देख नहीं पाई और उसके बार- बार निषेध करने पर भी नन्द नहीं माना और उसने जबरदस्ती थेरी के साथ बलात्कार कर ही दिया। नन्द का पाप इतना भयानक था कि इस कृत के तुरंत बाद धरती फट गई, नन्द उसमें गिर गया, मर कर नरक चला गया।

थेरी ने इस बात का जिक्र अन्य भिक्षुणियों से किया और उनके द्वारा यह बात शास्ता की जानकारी में आई। शास्ता ने सभी भिक्षु एवं भिक्षुणियों को एकत्र कर संदेश दिया, "भिक्षु-भिक्षुणियों, उपासक- उपासिकाओं में जो कोई ऐसा दुष्कर्म करता है वह वैसे ही आनन्द की अनुभूति करता है जैसे मधु की मात्र एक-दो बूँद चखने से मिलता है।"

टिप्पणी: इस घटना के बाद शास्ता ने राजा प्रसेनजित को बुलाकर इस घटना के विषय में बताया तथा यह भी बताया कि किस प्रकार भिक्षुणियों को वन में भय बना रहेगा। अतः भिक्षुणी संघ की स्थायी आवासीय व्यवस्था नगर में ही होनी चाहिए। राजा ने शास्ता की आज्ञा मानकर नगर के अन्दर ही भिक्षुणीसंघ के लिए एक निवास स्थल बनवा दिया। साथ ही आदेश दिया गया कि अब भिक्षुणियाँ जंगल में नहीं रहेंगी।





गाथा: मासे मासे कुसग्गेन, बालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो संखातधम्मानं, कलं अग्धति सोळसिं।।70।।

अर्थ: अगर कोई मूर्ख व्यक्ति महीने-महीने के अन्तराल पर केवल कुश की नोंक से भोजन करे, तो भी वह धर्म के जानकारों के सोलहवें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकता।

कौन धर्म के जानकारों की बराबरी नहीं कर सकता ?
जम्बुक स्थविर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

श्रावस्ती नगर में एक श्रेष्ठी के घर एक पुत्र का जन्म हुआ। उसकी आदतें बड़ी विचित्र थीं। वह बिस्तर की बजाय जमीन पर सोता था तथा सामान्य खाद्य सामग्री खाने की बजाय मल खाता था। उसके माता पिता ने उसे नंगे रहने वाले एक साधु समाज में भेज दिया जिसका नाम आजीवक था। उसकी इन विचित्र आदतों के कारण उसका नाम जम्बुक पड़ गया। लोग उसे जम्बुक आजीवक के नाम से पुकारने लगे।

जम्बुक रात्रि में मल खाता था और दिन में मुँह खोलकर एक पैर पर खड़ा हो जाता था। लोगों के पूछने पर उन्हें बताता था कि दोनों पैरों को जमीन पर रखने से धरती का बोझ बढ़ जाता है। उसका कहना था कि वह मुँह खोलकर इसलिए खड़ा रहता था कि वह हवा ले सके क्योंकि वह हवा पर ही जिन्दा रहता था। लोग उसे खाने की कोई चीज देते तो वह उन्हें नहीं खाता था। अगर कोई बहुत जिद करता था तो वह कुशाग्र के बराबर खा लेता था और कहता था कि इससे तुम्हें बहुत पुण्य मिलेगा।

इस प्रकार जम्बुक पचपन वर्षों तक मल खाकर नंगा रहा। एक दिन महाकारूणिक ने अपनी अंर्तदृष्टि से देखा कि जम्बुक में अर्हत्व प्राप्त करने की संभावना है। अत: वे वहाँ पहुँचे जहाँ जम्बुक रहता था। शास्ता के वहाँ पहुँचने पर रात्रि के विभिन्न प्रहर में विभिन्न देवता उनकी स्तुति करने आए। उनके आने पर वन बिल्कुल आलोकित हो गया। जम्बुक ने उस आलोक को देखा तो वह उससे बहुत प्रभावित हुआ और बुद्ध की स्तुति करने लगा और बोला, "हे महापुरुष ! आप निश्चय ही महान हैं क्योंकि मैंने देवी-देवताओं को स्तुति करते हुए देखा है। मैं पचपन वर्षों से तपस्या में रत हूँ पर मेरे पास अभी तक कोई नहीं आया।"

तब शाक्य मुनि ने जम्बुक की भर्त्सना करते हुए कहा, "जम्बुक ! तुम साधारण लोगों को धोखा दे सकते हो पर मुझे धोखा नहीं दे सकते। तुमने पिछले पचपन साल में क्या किया है वह सब मुझे मालूम है। तुमने पूर्व जन्म में कस्सप बुद्ध के समय एक भिक्षु को किसी उपासक के घर से भोजन लेने नहीं दिया था। उस भिक्षा को जमीन पर फेंक दिया था, इसी गलती के कारण आज तुम मल खा रहे हो।"

यह सब सुनते ही जम्बुक को अपनी गलती का एहसास हो गया और वह शाक्य मुनि के चरणों पर गिर पड़ा। वह एक भिक्षु बन गया।





गाथा: न हि पापं कतं कम्मं, सज्जु खीरं व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति, भस्मच्छन्नो व पावको।।71।।

अर्थ: जैसे ताजा दूध तुरंत नहीं जम जाता है, उसी प्रकार कृत पाप कर्म शीघ्र अपना फल नहीं लाता है। राख से ढँकी आग की तरह जलाता हुआ वह मूर्ख का पीछा करता है।

पाप को भी पकने में समय लगेगा
अहिप्रेत की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन थेर महामोग्गलान लक्ष्मण थेर के साथ राजगृह में भिक्षाचर्या कर रहे थे। चलते-चलते मोग्गलान मुस्कुरा दिए। लक्ष्मण थेर ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि विहार वापस पहुँचकर शास्ता के सामने बतायेंगे।

भिक्षाटन समाप्त कर दोनों बौद्ध विहार पहुँचे। तब मोग्गलान ने बताया कि उन्होंने एक ऐसा प्रेत देखा था जिसका सिर मनुष्यों की तरह था पर शरीर सर्प का था। तब शाक्य मुनि ने बताया, "मैंने भी इस प्रेत को सम्बोधि प्राप्ति के दिन देखा था। लेकिन मैंने इसका उल्लेख किसी से नहीं किया कि कहीं लोग मेरी कही बात पर विश्वास नहीं करेंगे तो उनका अहित हो जाएगा। मेरे नहीं कहने के पीछे लोगों के प्रति मेरी कृपा छिपी हुई थी।"

भिक्षुगण ने जानना चाहा कि उसकी ऐसी गति क्यों हुई तो बुद्ध ने वर्णन किया:

प्राचीन काल में वाराणसी में नदी के किनारे किसी प्रत्येकबुद्ध की कुटिया बनी हुई थी। वे वहीं रहते थे और वहीं से नगर में भिक्षाटन हेतु जाते थे। नागरिक भी वहाँ आते थे और प्रत्येक बुद्ध की सेवा करते थे। उस आने-जाने वाली पगडंडी पर जमीन के मालिक ने जुताई कर दी। आने-जाने वाले लोग उस जमीन को रौंद देते थे। किसान उनको आने-जाने के लिए मना करता था पर उन्हें रोक नहीं पाता था। अंत में उसने सोचा, "अगर यहाँ पर यह पर्णकुटी न होती तो मेरा खेत बरबाद न होता।" ऐसा सोचकर उसने एक दिन उस झोपड़ी को जला डाला। प्रत्येक बुद्ध उस स्थान को छोड़ कहीं और चले गए।

जब जनता को पता चला कि प्रत्येक बुद्ध वह स्थान छोड़कर कहीं और चले गए हैं तब किसान वहीं खड़ा था। उसने कहा, "यह पर्णशाला मैंने जला डाली ।" क्रुद्ध भीड़ ने कहा, "इस पापी के कारण अब हमें प्रत्येक बुद्ध के दर्शन नहीं हो पायेंगे।" ऐसा कहकर उमड़ी भीड़ ने उस किसान को पीट-पीटकर मार डाला। मरने के बाद वह नरक में गया और अपने प्रारब्ध के कारण गृद्धकूट पर्वत पर अहिप्रेत बनकर उत्पन्न हुआ।





गाथा: यावदेव अनत्थाय, ञत्तं बालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं, मुद्धमस्स विपातयं।।72।।

अर्थ: मूर्ख का जितना भी ज्ञान होता है वह उसका अनिष्ट ही करता है। वह उसकी अच्छाई को समाप्त कर देता है तथा उसके कुशल कर्मों का नाश कर देता है।

षष्टिकूट प्रेत की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन थेर महामोग्गलान लक्ष्मण थेर के साथ राजगृह में भिक्षाचर्या कर रहे थे। चलते-चलते मोग्गलान मुस्कुरा दिए। लक्ष्मण थेर ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि विहार पहुँचकर शास्ता के सामने बतायेंगे।

भिक्षाटन समाप्त कर दोनों बौद्ध विहार पहुँचे। तब मोग्गलान ने बताया कि उन्होंने एक ऐसा प्रेत देखा था जिसके मस्तक पर लगातार आग के गोले गिर रहे थे और उसको फोड़ रहे थे। यह क्रम निरन्तर चल रहा था। आज तक इतना कष्ट सहते हुए मैंने किसी को नहीं देखा।" तब शाक्य मुनि ने बताया, "मैंने भी इस प्रेत को सम्बोधि प्राप्ति के दिन देखा था। लेकिन मैंने इसका जिक्र नहीं किया कि कहीं लोग मेरी कही बात पर विश्वास नहीं करेंगे तो उनका अहित हो जाएगा। मेरे नहीं कहने के पीछे लोगों के प्रति मेरी कृपा छिपी हुई थी।"

भिक्षुओं ने जिज्ञासा जाहिर की, यह जानना चाहा कि किस कारण से उस प्रेत की यह दुर्गति हुई। तब शाक्य मुनि ने उसके पूर्व जन्म की कथा सुनाई:

पूर्वकाल में सट्ठिकूट नाम का एक व्यक्ति था जिसने सधा हुआ निशाना लगाने की कला सीख ली थी। इस कला को सीखने के बाद उसने अपने गुरू से इस कला को प्रयोग में लाने के लिए आज्ञा माँगी। गुरू ने अपनी स्वीकृति दे तो दी पर उसके साथ यह शर्त भी लगा दी, "किसी भी गाय या मनुष्य पर पत्थर मत मारना। ऐसे वस्तु पर भी पत्थर मत फेंकना जिसका कोई मालिक हो या जिसका कोई सम्बन्धी हो। लक्ष्य उसी निशाने पर लगाना जिसका न कोई मालिक हो और न कोई सम्बन्धी ।" सट्ठिकूट ने उनकी बात मान ली।

उसी काल में एक प्रत्येक बुद्ध भी हुए थे। एक दिन वे अपनी दैनिक चर्या के अनुसार भिक्षाटन के लिए जा रहे थे। सट्ठिकूट ने उन्हें देखा। उसने सोचा, "मेरे गुरू ने कहा है कि मैं किसी ऐसे लक्ष्य को बेध सकता हूँ जिसका कोई स्वामी नहीं हो। श्रमण का तो कोई स्वामी नहीं होता । अत: उस पर निशाना लगाने में कोई हर्ज नहीं है।" ऐसा सोचकर उसने पत्थर से प्रत्येक बुद्ध पर प्रहार कर डाला। प्रहार का वेग इतना तीव्र था कि वह पत्थर थेर के एक कान को छेदता हुआ दूसरे कान से निकल गया। चोट इतनी गहरी थी कि विहार आते-आते प्रत्येकबुद्ध के प्राण निकल गए।

श्रद्धालुओं को पता चला कि किस प्रकार सट्ठिकूट ने प्रत्येक बुद्ध की हत्या कर दी थी। अत: उन्होंने उसे खूब पीटा और पीटने से उसकी मृत्यु हो गई। वह नरक में जा गिरा। अपने प्रारब्ध कर्म के कारण वह गृद्धकूट पर्वत पर षष्टिकूट प्रेत बनकर प्रकट हुआ।

शाक्य मुनि ने इस पूर्व घटना का जिक्र करते हुए कहा, "मूर्खों का ज्ञान और कला उनके लिए अहितकर ही होता है।

तब उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: असतं भावनमिच्छेय्य, पुरेक्खारं च भिक्खुसु।
आवासेसु च इस्सरियं, पूजा परकुलेसु च।।73।।

अर्थ: मूर्ख व्यक्ति जो नहीं है उसकी चाह करता है, भिक्षुओं में बड़ा बनना चाहता है, मठों और संघों का स्वामी बनना चाहता है और दूसरे कुलों में आदर-सत्कार की कामना करता है।

मूर्ख इच्छाओं का गुलाम होता है
सुधम्म थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जिन पाँच भिक्षुओं ने सर्वप्रथम बुद्ध से ज्ञान हासिल किया था उनमें महानाम भी थे। वे अमृतोदन के पुत्र तथा अनुरुद्ध के बड़े भाई थे। वे प्रव्रजित हुए तथा संघ में शामिल हो गए। सतत साधना करते हुए वे थेर बन गए थे।

एक दिन वे विहार से भिक्षाटन के लिए निकले। रास्ते में चित्त नामक एक गृहस्थ ने उन्हें अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। स्थविर महानाम उसके घर गए, भोजन-दान स्वीकार किया और पुण्यानुमोदन किया। उनके प्रवचन से चित्त बहुत ही प्रभावित हुआ। उसका मन पवित्र हो गया और प्रवचन समाप्त होते-होते वह स्रोतापन्न हो गया। वह बुद्ध के त्रिरत्न में प्रतिष्ठित हो गया। उसमें इतनी अटूट श्रद्धा जग गई कि उसने अपनी ओर से एक विहार बनवाया और भिक्षु संघ को दान कर दिया ताकि भिक्षुगण उसमें रह सकें।

विहार बनकर तैयार हो गया, भिक्षुगण उसमें आकर रहने लगे। उनका चित्त ध्यान-साधना, विपश्यना में लगने लगा। यदा-कदा दूसरे विहारों से भी भिक्षुगण आ जाया करते थे। वे अपने-अपने अनुभव एक दूसरे से बाँटा करते थे। भिक्षुगण उपासकों को संदेश दिया करते थे। चित्त पूरी सावधानी से उन भिक्षुओं की सुख-सुविधा और आवश्यकताओं का ध्यान रखा करता था।

एक बार सारिपुत्त और महामोग्गलान उस विहार में पधारे। सारिपुत्त ने भिक्षुओं को धर्म-प्रवचन दिया। चित्त ने भी वह प्रवचन ध्यान-पूर्वक सुना। एक-एक बात उसके हृदय में उतरती गई और वह अनागामी फल प्राप्त कर गया। उसने दूसरे दिन सारिपुत्त तथा महामोग्गलान को अपने आवास पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। सुधम्म थेर भी वहीं उपस्थित था। उपासक ने उसे भी आमंत्रित किया, पर आमंत्रण पाकर सुधम्म थेर गुस्से से आग-बबूला हो गया। निमंत्रण स्वीकार करने की बजाय उसने गुस्से में कहा, "अरे ! तुमने पहले इन दोनों को न्यौता दिया है। मुझे बाद में निमंत्रण देकर अपमानित किया है।" उपासक ने नम्र भाव से उससे एक बार फिर प्रार्थना की पर वह टस से मस न हुआ। उपासक की सारी प्रार्थना बेकार गई। सुधम्म ने निमंत्रण ग्रहण नहीं किया।





गाथा: ममेव कत मञ्ञन्तु, गिही पब्बजिता उभो।
ममेव अतिवसा अस्सु, किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि।
इति बालस्स संकप्पो, इच्छा मानो च वड्ढति।।74।।

अर्थ: 'गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों मेरा कहना मानें', 'कृत-अकृत्य में मुझपर ही निर्भर रहें' ऐसी उसकी चाह होती है। इस प्रकार का संकल्प करने से मूर्ख आदमी की इच्छाएं और उसका अभिमान बढ़ता है।

सुधम्म थेर की कथा

अगले दिन चित्त भिक्षुओं के लिए भोजन की व्यवस्था करने में लग गया। उसी समय सुधम्म उसके घर के दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया। चित्त ने उन्हें सादर प्रणाम कर घर में प्रवेश करने के लिए आमंत्रित किया। पर सुधम्म ने अंदर आने का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया और कहा, "मैं तो भिक्षाटन के लिए निकला हूँ, मैं अंदर नहीं आ सकता और न बैठ सकता हूँ।"

थोड़ी देर बाद सारिपुत्त और महामोग्गलान आये। उन्होंने भोजन किया और भोजन के बाद धर्म प्रवचन दिया और फिर वे वापस चले गए। उनके साथ पधारे अन्य भिक्षुगण भी वापस चले गए। सुधम्म ने सारिपुत्त तथा मोग्गलान को दान में दी गई वस्तुओं को देखा। वह ईर्ष्या की आग में जल-भुनकर राख हो गया। गुस्से में वह उपासक को अपशब्द कहने लगा, "अब मैं तुम्हारे घर में एक पल भी टिक नहीं सकता।" यह कहकर वह वहाँ से चला गया।

सुधम्म वहाँ से सीधा शाक्य-मुनि के पास गया। उन्हें सादर प्रणाम कर सारी कहानी विस्तार से सुनाई। शास्ता पर उसकी बातों का कोई असर नहीं पड़ा। उन्होंने वस्तुस्थिति का गहराई से विश्लेषण किया और आकलन कर समझाया, "किसी भी श्रमण को 'यह मेरा विहार है,' 'यह मेरा आवास है,' 'यह मेरा उपासक है,' 'यह मेरी उपासिका है' - ऐसा कहना और इस बात का ईर्ष्या करना उचित नहीं है।"

तब शास्ता ने ये दो गाथाएं कहीं।





गाथा: अञ्ञा हि लाभूपनिसा, अञ्ञा निब्बाणगामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य, विवेकमनुब्रूहये।।75।।

अर्थ: सांसारिक लाभ-सत्कार प्राप्त करने का मार्ग दूसरा है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग दूसरा। इस प्रकार इसे भली-भाँति जानकर बुद्ध का अनुगामी शिष्य सांसारिक आदर-सत्कार की इच्छा न करें और त्रिविध विवेक अर्थात् काय विवेक, चित्त विवेक तथा विक्खम्भन विवेक को बढ़ावा दे।

हमारे सामने खुले हैं दो रास्ते
वनवासी तिस्स थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक धनी श्रेष्ठी का एक पुत्र था। नाम था उसका - तिस्स। उसने सात साल की उम्र में ही प्रव्रज्या हासिल कर ली और सामनेर बन गया। सारिपुत्त ने उसे प्रव्रज्या दिलाई थी। बुद्ध से उसने ध्यान की पद्धति सीखी और उसमें पूरी लगन से लग गया। विहार छोड़कर जंगल चला गया। लोग उसे वनवासिक तिस्स के नाम से जानने लगे।

गृहस्थ उसे भिक्षा देते तो सामनेर कहते, "सदा सुखी रहो, दुःखों से मुक्त होवो।" वे अपने शरीर के भरण पोषण मात्र ही भिक्षा लेते। उनके शरीर की आभा इतनी तेज थी कि जो कोई भी उन्हें भिक्षा देता, भिक्षा देने के बाद उन्हें देखता ही रह जाता, घर वापस नहीं जाता। जहाँ का तहाँ ही खड़ा रहता। वन में रहते हुए उन्होंने घोर साधना की और तीन महीनों में ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

तिस्स थेर के गुणों से अति प्रभावित होकर स्थविरगण सारिपुत्त, महामोग्गलान, महाकाश्यप, अनुरुद्ध, उपालि, पूर्ण आदि अपने भिक्षुओं के साथ तिस्स से मिलने पधारे। ग्रामवासी उन सभी को विहार में ले गए जहाँ तिस्स रहते थे। ग्रामवासियों ने सबों का भोजन-सत्कार आदि किया और फिर धर्मश्रमण की बारी आई। तब सारिपुत्त स्थविर ने कहा, "तिस्स ! धर्मकथा सुनाओ।" सभी उपासक बोलने लगे, "हमें इनसे नहीं सुनना। इन्हें सिर्फ दो वाक्य आते हैं- सदा सुखी रहो, दुःख से मुक्त होवो। कोई और धर्मवाचक कथा सुनावें।" तब स्थविर सारिपुत्त ने कहा, "तिस्स ! यह तो बताओ कि दुःख से कैसे मुक्त हुआ जाता है, कैसे सुखी हुआ जाता है।" तब सामनेर ने अर्हत्व प्राप्त करने की विधि बताई और कहा, "भन्ते ! अर्हत्व प्राप्त को ही सुख होता है। बाकी लोग तो जन्म-मृत्यु और बुढ़ापा आदि दुःखों के चक्कर से मुक्त नहीं हो पाते हैं।" "साधु ! साधु !! " सारिपुत्त, मोग्गलान आदि स्थविर बोल उठे।

सूर्योदय होने को आया। उपासकों में विभाजन हो गया। कुछ इस बात से गुस्सा हो गए कि "इतने दिनों से, इतना ज्ञानी होने पर भी, इन्होंने हमें अभी तक कुछ क्यों नहीं बताया?" अन्य सामनेर के प्रवचन सुनकर बहुत संतुष्ट थे।

शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि अगर नकारात्मक विचारों वाले उपासकों को समझाकर सही रास्ते पर नहीं लाया जाएगा तो वे अपने लिए गलत कर्म का सृजन कर बैठेंगे। अतः शास्ता वहाँ आकर प्रकट हो गए। भोजनोपरान्त उपासकों ने अनुमोदन हेतु आग्रह किया। तब शास्ता ने समझाया, "सामनेर तिस्स के कारण ही तुम्हें सारिपुत्त, मोग्गलान आदि का और मेरा भी दर्शन हुआ है। अतः तुम्हें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।" यह सुनकर सभी ग्रामवासी तिस्स के प्रति मैत्रीभाव से भर गए।

धर्म सभा में चर्चा चली कि तिस्स को सैकड़ों कंबल और चीवर दान में प्राप्त हुए पर उन्होंने सिर्फ जीवन चलाने मात्र चीजें लीं। उनका त्याग अनूठा था। तब शास्ता ने यह गाथा कही।



DHAMMAPADA

BALA VAGGA



संस्कारक : हृषीकेश शरण

सच्चा पंडित कौन ?

धम्मपद

पंडित वर्ग



गाथा और कथा

संस्कारक : हृषीकेश शरण

सच्चा पंडित कौन ?

धम्मपद

पंडित वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

पंडित वर्ग



गाथा: निधीनं व पवत्तारं, यं पस्से वज्जदस्सिनं।
निग्गय्हवादिं मेधाविं, तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो।।76।।

अर्थ: जो व्यक्ति अपना दोष दिखाने वाले को जमीन में गड़े धन दिखाने वाले की तरह समझे, जो संयम से रहने वाले मेधावी पंडित का साथ करे वैसे व्यक्ति का सदा भला (कल्याण) ही होता है, बुरा (अकल्याण) नहीं।

सज्जनों का संग कल्याणकारी होता है
ब्राह्मण राध की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध के समय की बात है। राध नाम का गरीब बूढ़ा ब्राह्मण विहार में रहता था। वह विहार में सफाई का काम करता था तथा भिक्षुओं की सेवा करता था। उसके मन में भी प्रबल चाहत थी कि वह भी जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति पाये और भवसागर पार पहुँचे। वह भिक्षुओं के साथ सदा सत्संग में लगा रहता था तथा भिक्षु भी बनना चाहता था पर उसे कोई सही अवसर नहीं मिल पा रहा था। अत: वह विहार की सफाई में लगा रहता था और अपने आप से संतुष्ट रहता था। कभी-कभी कोई भिक्षु उसे किसी बात के लिए कुछ अच्छा कह देता था तो कभी बुरा। पर वह कभी भी किसी की बात का बुरा नहीं मानता था।

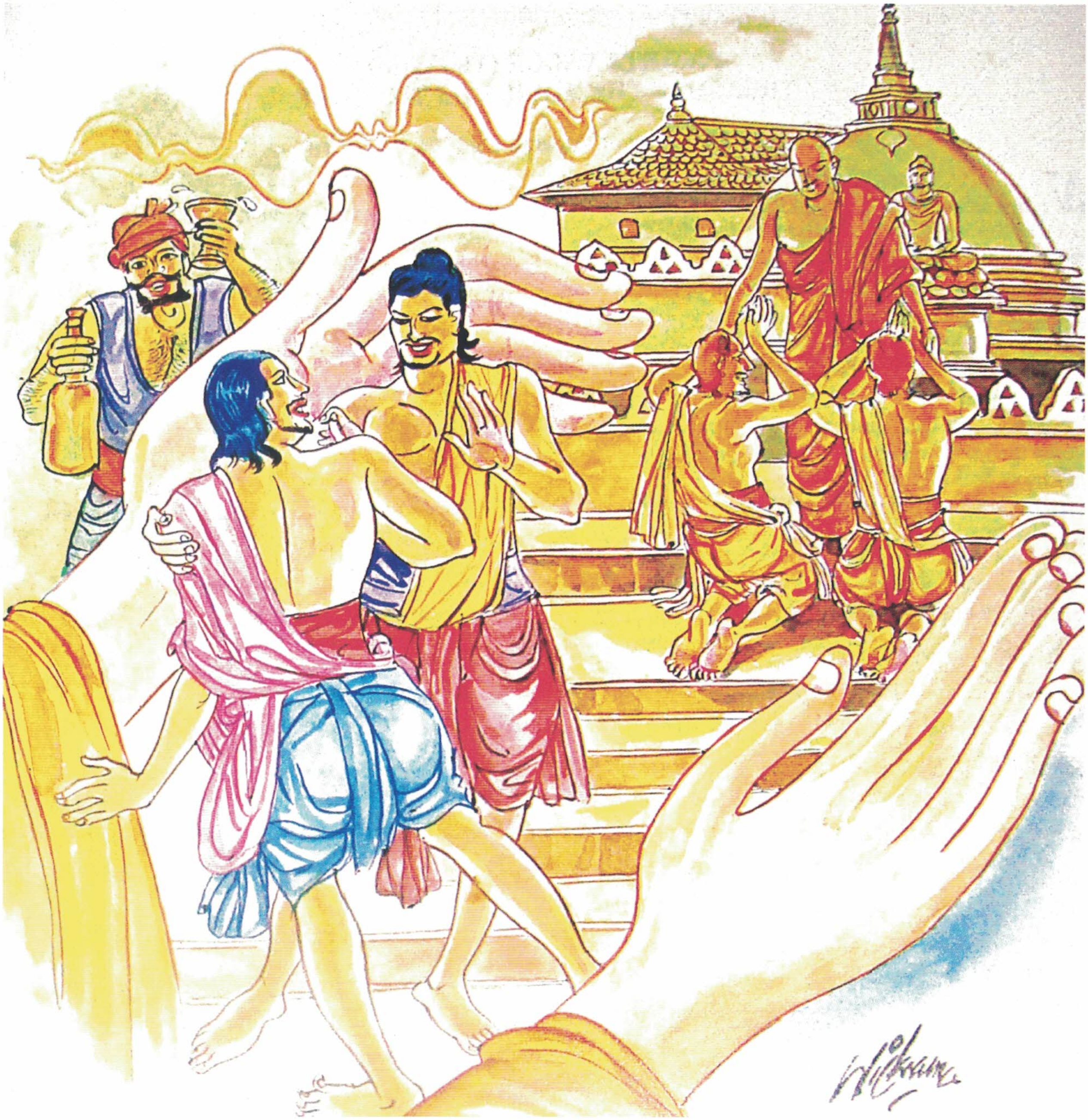
राध एक दिन शाक्य मुनि की अन्तर्दृष्टि में आ गया। उन्होंने देखा कि राध में अर्हत्व प्राप्त करने की तीव्र कामना है पर उसे उचित अवसर नहीं मिल पा रहा है। अत: वे राध के पास गए और उससे पूछा, "राध ! तुम अच्छे तो हो ? भिक्षुगण तुम्हारा ख्याल रखते हैं न ?" उसने जवाब दिया, "हाँ भन्ते ! भिक्षुगण मेरा ख्याल रखते हैं। मुझे भोजन तो देते हैं पर प्रव्रजित नहीं करते हैं।" तब शास्ता ने भिक्षुओं को बुलाया और उनसे पूछा, "क्या तुम बता सकते हो कि राध ने तुम्हारे लिए कोई भलाई का काम किया है या नहीं ?" "हाँ भन्ते, उसने हमारे लिए फलां-फलां काम किया है, "उन्होंने कहा। तथागत ने तब उन्हें समझाया, "जिस व्यक्ति ने तुम्हारा थोड़ा भी भला किया है और अगर वह भवसागर पार जाना चाहता है तो क्या उसे भवसागर पार करने में मदद नहीं करोगे ?"

सारिपुत्त ने स्वीकार किया कि राध को प्रव्रजित कर देना चाहिए। ऐसा कहकर उन्होंने राध को प्रव्रजित कर दिया। थोड़े ही दिनों में स्थविर सारिपुत्त की छत्रछाया में रहकर राध ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

बुद्ध उन दिनों जेतवन विहार में रह रहे थे। एक दिन धर्म प्रवचन में उन्होंने राध की बहुत बड़ाई की। उन्होंने भिक्षुओं को बताया कि अगर तुम्हें एक ऐसा आदमी मिल जाए जो तुम्हें बताए कि खजाना कहाँ है तथा यह भी बताए कि किन चीजों से बचना चाहिए, किन चीजों से सावधान रहना चाहिए तो ऐसे व्यक्ति को साथ रखना चाहिए। ऐसे व्यक्ति का साथ रखना शुभ है।

तब शास्ता ने यह गाथा कही।





गाथा: ओवदेय्यानुसासेय्य, असब्भा च निवारये।
सतं हि सो पियो होति, असतं होति अप्पियो।।77।।

अर्थ: जो उपदेश देता है, अनुशासित करता है और गलत कर्मों को करने से रोकता है वह सज्जनों को प्रिय होता है और दुर्जनों को अप्रिय।

उपदेशक सज्जनों को प्रिय और दुर्जनों को अप्रिय
अस्सजी और पुनब्बसु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार भिक्षु अस्सजी और पुनब्बसु अपने शिष्यों के साथ कीटागिरी गाँव में रुके हुए थे। वहाँ उन्होंने कुछ पेड़-पौधे तथा फल-फूल बोए ताकि उनसे कुछ पैसे निकाल सकें। ऐसा करना विनय के नियम के विपरीत था। वे इन पौधों से फूल निकलवाते थे और माला बनवाते थे। वे परिवार वाली कुमारियों, स्त्रियों, वधुओं, बालाओं के लिए अपने साथ माला ले जाते थे तथा दूसरों से उनके लिए माला भिजवाते भी थे। वे उनके साथ-साथ एक ही थाली में भोजन करते थे, एक ही चारपाई पर साथ बैठते थे, लेटते थे, ओढ़ते थे, बिछाते थे आदि। अर्थात् उनका इन स्त्रियों के साथ उठना, बैठना, घूमना, सोना होता था। वे माला, इत्र तथा उबटन भी लगाते थे। नाचते थे, गाते थे, बजाते थे, दौड़ते थे, दौड़ाते थे।

एक दिन एक भिक्षु किटागिरी आया। वह एक उपासक के घर गया और वहीं भोजन किया। भोजन के बाद उपासक ने भिक्षु से प्रश्न किया, "भन्ते ! आप यहाँ से कहाँ जाएँगे ?" "मैं श्रावस्ती जाऊँगा।" तब उपासक ने उस भिक्षु से प्रार्थना की, "वहाँ पहुँचकर जगदाराध्य तथागत से कहना कि यहाँ किटागिरी गाँव में रहना मुश्किल हो गया है। अस्सजी और पुनब्बसु नामक दो बेशर्म भिक्षु यहाँ अपने शिष्यों के साथ रह रहे हैं तथा वे भिक्षु-संघ की सारी मर्यादाओं को लांघ गए हैं। गाँव वाले जो पहले श्रद्धालु हुआ करते थे वे अब अश्रद्धालु हो गए हैं, अप्रसन्न रहते हैं और कोई दान-दक्षिणा नहीं देते हैं। तथागत किसी अच्छे, जिम्मेवार भिक्षु को भेजें ताकि यहाँ का वातावरण सुधारा जा सके।" भिक्षु ने कहा, "ठीक है, तुम्हारा संदेश पहुँचा दूँगा", यह कहकर वह भिक्षु श्रावस्ती की ओर चल दिया।

श्रावस्ती पहुँच वह बौद्ध विहार गया तथा तथागत को सादर प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। शास्ता ने उसका कुशल-क्षेम पूछा। उसने अपनी बातें बताईं तथा ज्ञानी भिक्षु को भेजने के लिए कहा ताकि कीटागिरी का वातावरण ठीक किया जा सके। तथागत ने सारिपुत्त तथा मोग्गलान को वहाँ भेज दिया। उन्हें समझाया, "वहाँ जाकर उन भिक्षुओं से कहो कि उपासकों को गलत शिक्षा और उदाहरण न दें और अगर फिर भी न मानें तो उन्हें संघ से निकाल दो।"

उन्हें समझाते हुए शास्ता ने यह गाथा कही।





गाथा: न भजे पापके मित्ते,न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे, भजेथ पुरिसुत्तमे।।78।।

अर्थ: न तो दुष्ट मित्रों की संगति करें और न अधम पुरुषों की। संगति करें अच्छे मित्रों की, उत्तम पुरुषों की।

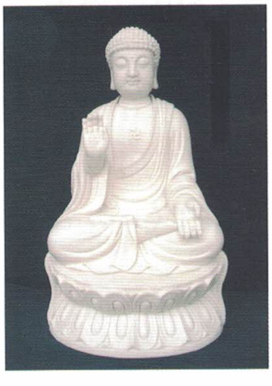
उत्तम पुरुषों की संगति कल्याणकारी होती है
थेर छन्न की कथा

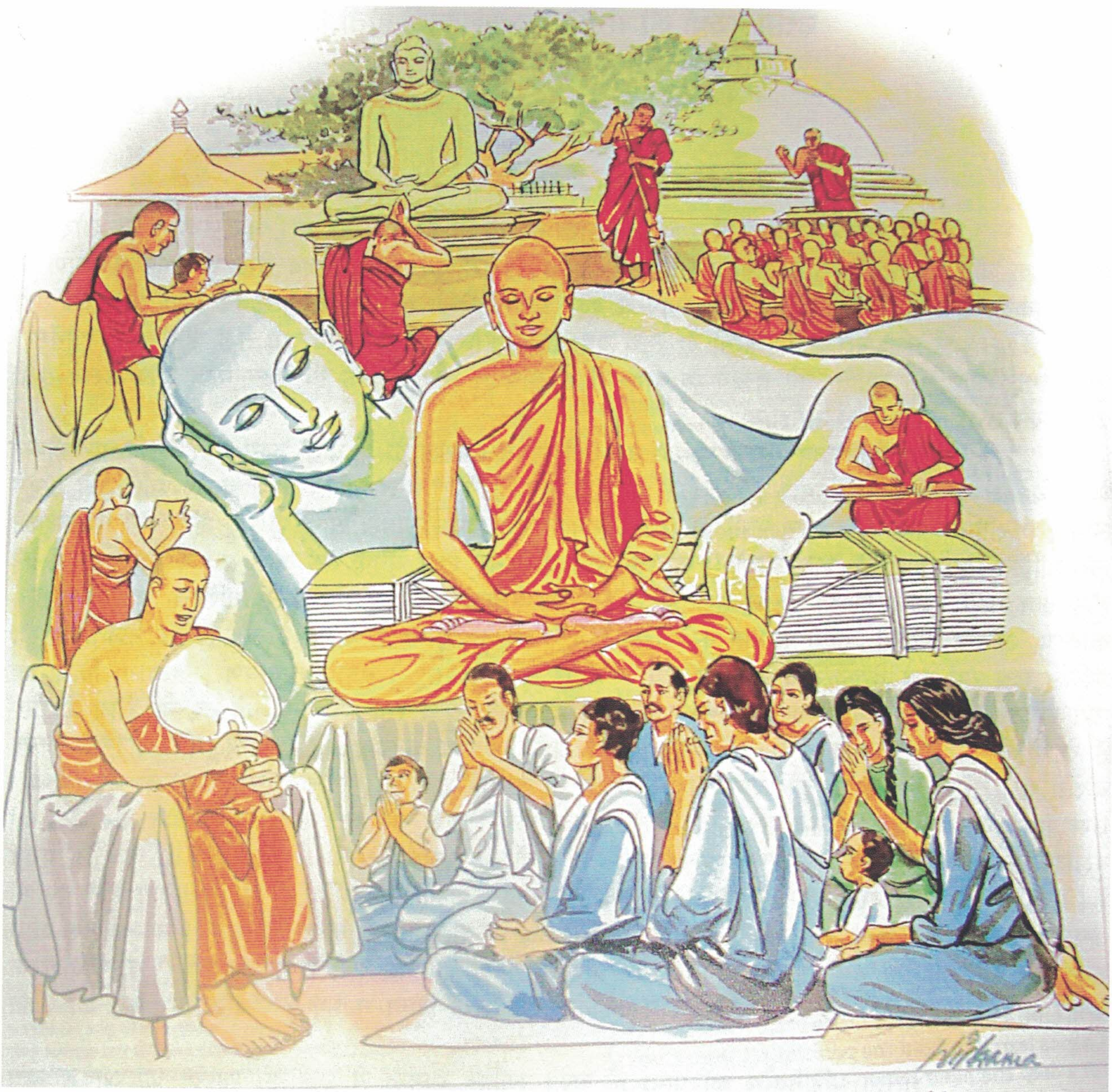
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

थेर छन्न राजकुमार सिद्धार्थ से उनके बचपन से ही परिचित था। जब उन्होंने घर छोड़ा तो वह कंटक घोड़े पर उनके साथ अनामा नदी तक आया। इससे पूर्व भी जब-जब सिद्धार्थ नगर में भ्रमण के लिए निकले, छन्न उनके साथ था। राजकुमार ने बूढ़ा आदमी देखा तो छन्न से पूछा कि क्या सभी की यही नियति है। छन्न ने उन्हें बताया कि सभी के साथ यही होगा अगर व्यक्ति उतनी उम्र तक जीवित रह पायेगा। एक बीमार और मृत व्यक्ति को देखने के बाद भी सिद्धार्थ ने छन्न से ऐसे ही प्रश्न किए और उसने इसी प्रकार का उत्तर देकर उन्हें समझाया।

महाभिनिष्क्रमण के बाद छः वर्षों की सतत् तपस्या के पश्चात् फल्गु नदी के किनारे पीपल के बोधि वृक्ष के नीचे राजकुमार सिद्धार्थ से बुद्ध हो गए। उन्होंने सत्य-दर्शन और ज्ञान- प्राप्ति को अपने आप तक सीमित नहीं रखा वरन् सभी के साथ बाँटना प्रारंभ किया। पहले सारनाथ गए और वहाँ पंचभिक्षुओं को प्रव्रजित किया। उसके बाद लोगों में बुद्ध का उपदेश सुनने तथा उनके धर्म और संघ में प्रवेश करने की होड़ लग गई। बुद्ध के अनेक शिष्य हुए जो साधना की ऊँचाइयों को छू गए जैसे सारिपुत्त, महामोग्गलान, काश्यप, आनन्द आदि। अपनी साधना के कारण वे बुद्ध की कृपादृष्टि के पात्र हुए और उनके नजदीकी भी, लेकिन छन्न यह सब देखकर जलता था। वह कहता, "जब शास्ता ने महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) किया था उस समय मैं अकेला उनके साथ था और तब से मैं ही उनके साथ रहा हूँ। आज जो नए-नए भिक्षु आ गए हैं वे कहते हैं, 'मैं मोग्गलान हूँ', 'मैं सारिपुत्त हूँ' आदि।" ऐसा कहकर वह इन भिक्षुओं की निंदा किया करता था। तथागत को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने छन्न को बुलाकर ऐसा करने से मना किया। उस समय तो वह चुप हो गया पर बाद में फिर निंदा करनी शुरू कर दी। तब बुद्ध ने तीन बार छन्न को बुलाकर सलाह दी, "छन्न ! सारिपुत्त और मोग्गलान दोनों ही तुम्हारे हितैषी हैं। ये दोनों ही पूजनीय पुरुष हैं। तुम्हें इनकी निंदा नहीं करनी चाहिए। वरन् तुम्हें उनकी सेवा करनी चाहिए।" छन्न ने इतना होने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ी। अन्त में शाक्य मुनि ने सभी भिक्षुओं को बुलाकर कहा, "भिक्षुओं ! मेरे जीवित रहने तक छन्न को कोई भी नहीं समझा पाएगा। मेरे परिनिर्वाण के बाद ही उसे समझ आयेगी।" परिनिर्वाण के समय आनन्द ने शास्ता से पूछा, "भन्ते ! छन्न को क्या दंड दिया जाना चाहिए ?" "ब्रह्मदंड", बुद्ध का उत्तर था।

शास्ता परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। स्थविर आनन्द ने छन्न को शास्ता का आदेश बता दिया कि उसे ब्रह्मदंड मिला था। यह सुनकर छन्न तीन बार मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा तथा भन्ते आनन्द के चरणों में गिर पड़ा, "भन्ते ! इतना कठोर दंड देकर मेरा अंत मत कीजिए।" उसके बाद वह स्थविरों के प्रति श्रद्धा और सम्मान से पेश आने लगा और कुछ ही दिनों में अर्हत्व प्राप्त कर गया।





गाथा: धम्मपीति सुखं सेति, विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे, सदा रमति पण्डितो।।79।।

अर्थ: धर्म रस ग्रहण करने वाला प्रसन्न चित्त होकर सुख से सोता है। पंडित (विद्वान) व्यक्ति बुद्ध की शिक्षा में सदा रमण करता है।

सुखपूर्वक सोना चाहते हैं तो धर्म रस का पान करें
महाकप्पिन थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

हिमालय की तराई में कुक्कुट नाम का एक नगर था। उस राज्य का नाम था कुक्कुटावती। महाकप्पिन उस राज्य का राजा था। उसकी पत्नी अनोजा बहुत ही सुन्दरी और गुणवती थी। वह राजा के हर पुण्य के काम में हाथ बँटाती थी।

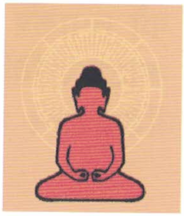
एक बार श्रावस्ती से व्यापारियों का एक मंडल कुक्कुटावती आया। श्रावस्ती और कुक्कुटावती के बीच व्यापार होता था। राजा श्रावस्ती के विषय में, वहाँ के राजा, देश और धर्म के बारे में जानने के लिए आग्रह करता है। वह जानना चाहता है कि ये व्यापारीगण किसके अनुयायी हैं। व्यापारी उत्तर नहीं देते तथा समझाते हैं कि बिना मुँह हाथ धोये वे कुछ नहीं बता सकते। पानी लाया जाता है, वे मुँह-हाथ धोते हैं और तब बताते हैं, "हमारे यहाँ सम्यक-सम्बुद्ध प्रकट हुए हैं और उनके ज्ञान से दिगदिगंत प्रकाशित हो रहा है।" राजा का हृदय भी बुद्ध के विषय में जानने के लिए व्याकुल हो जाता है। वह व्यापारियों से बुद्ध के विषय में विस्तृत रूप से समझाने का आग्रह करता है। व्यापारीगण बुद्ध, धर्म और संघ के विषय में व्याख्यान देते हैं। राजा बहुत प्रभावित होता है, उन्हें एक लाख रूपये का पुरस्कार देता है तथा घोड़े पर सवार होकर उनके साथ श्रावस्ती के लिए चल देता है।

उधर शास्ता ने अपने दिव्य चक्षु से देखा कि महाकप्पिन उनके दर्शन के लिए आ रहा है। अतः वे भिक्षाटन से निवृत्त होकर, चिनाब नदी के तट पर, वट वृक्ष के नीचे बैठ गए। उनके शरीर से चारों ओर दिव्य रोशनी निकल रही है। महाकप्पिन उनकी दिव्य आभा देख मोहित हो गया। उसने वहाँ जाकर शास्ता को सादर प्रणाम किया। उसके अन्तर्नेत्र खुल गए। शंकाएं दूर हो गईं। उसने शास्ता से प्रव्रज्या दिलाने का आग्रह किया। शास्ता ने अनुमति दे दी। राजा प्रव्रजित हो गया और उसके साथ उसके अनुचर भी प्रव्रजित हो गए।

उधर रानी अनोजा ने सुना कि राजा अपने अनुचरों के साथ श्रावस्ती के लिए प्रस्थान कर गये हैं तो वह भी अपनी दासियों के साथ शास्ता के दर्शन के लिए चल पड़ी। वह भी चिनाब नदी के तट पर पहुँची, शास्ता को प्रणाम किया और उनका भव्य रूप देखकर तुरंत प्रव्रजित होने के लिए आग्रह करने लगी। तथागत ने उप्पलवण्णा से कहा कि वह उन्हें प्रवजित करे। सभी दासियों सहित रानी प्रव्रजित हो गई।

राजा को ध्यान साधना में रस आने लगा। वह हृदय से अति प्रसन्न था और अर्हत प्राप्ति के बाद अक्सर कह उठता था, "अहो सुख ! अहो सुख !! " सुनने वाले इसे सुनकर सोचते थे कि वह अपने पहले के कामभोग सुखों को याद कर ऐसा बोलता है। अतः यह बात शास्ता तक पहुँची। शास्ता ने महाकप्पिन को बुलाकर पूछा, "क्या तुम वास्तव में अपने पूर्व के राज सुखों को याद कर ऐसा कहते हो ? " "भन्ते ! आप तो मेरे हृदय की बात जानते हैं कि मैं ऐसा क्यों कहता हूँ," राजा ने कहा। तब बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मेरा पुत्र अपने पुराने राजसुखों को याद करके ऐसा नहीं बोलता। वरन् उसे धर्म प्रीति से जो रस प्राप्त हुआ है उसके आधार पर बोलता है।"

ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: उदकं हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता।।80।।

अर्थ: जैसे नहरों से किसान जल ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को तपाकर सीधा करते हैं, बढ़ई लकड़ी को काटकर विभिन्न स्वरूप देते हैं, उसी प्रकार पंडित जन भी अपना दमन करते हैं।

आत्म संयमी पंडित अर्हत्व प्राप्त करते हैं
पंडित सामनेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक धनी सेठ रहता था। पंडित नाम का उसका पुत्र सात वर्ष की उम्र में ही सामनेर बन गया। प्रव्रज्या के आठवें दिन वह स्थविर सारिपुत्त के साथ चल रहा था। रास्ते में उसने देखा कि किसान क्यारियाँ बनाकर जहाँ चाहें, वहीं पानी पहुँचा रहे हैं। वे वैसी जगह भी पानी पहुँचा रहे हैं जहाँ पानी अपनी स्वाभाविक गति से नहीं पहुँच सकता है। पंडित ने सारिपुत्त से प्रश्न किया, "इस अचेतन पानी को क्या कोई जहाँ चाहे वहाँ ले जा सकता है ?" सारिपुत्त ने उसे समझाया, "हाँ सामनेर ! इस अचेतन को कोई भी अपनी इच्छा से जिधर ले जाना चाहता है, ले जा सकता है और जल को उधर जाना ही होता है।" पंडित सोच में डूब गया, "जब ऐसी अचेतन वस्तु को प्रयत्न कर जहाँ चाहे ले जाया जा सकता है और उसका उपयोग किया जा सकता है तो क्या मैं अपने चित्त को अपने वश में करके शान्त नहीं कर सकता ?"

दोनों आगे बढ़े। बढ़ई काठ को काटकर उससे विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जैसे रथ आदि बना रहे थे। उसने फिर सोचा, "अगर ऐसी अचेतन वस्तु को प्रयत्न कर, जैसा चाहे वैसा स्वरूप दिया जा सकता है और उसका उपयोग किया जा सकता है तो फिर अपने चित्त को वश में कर श्रमण धर्म का पालन क्यों नहीं किया जा सकता ?"

सारिपुत्त तथा पंडित और भी आगे बढ़े। पंडित चिंतन में खोया था। उसने इस बार धनुष बनाने वालों को देखा कि वे सरकंडा लेकर उसे आग में तपाते हैं और फिर आँख के किनारे से देखकर उसे सीधा करते हैं और फिर वाण बनाते हैं।" उसने पुनः सारिपुत्त से उसी प्रकार का प्रश्न किया कि क्या इस अचेतन वस्तु को, जैसा चाहे, वैसा स्वरूप दिया जा सकता है। स्थविर ने उत्तर दिया, "हाँ।" पंडित सोचने लगा, "अगर ऐसी अचेतन वस्तु को प्रयत्न कर जैसा चाहे वैसा स्वरूप दिया जा सकता है तो फिर अपने चित्त को जिधर चाहे उधर ले जाकर श्रमण धर्म का पालन क्यों नहीं किया जा सकता है ?"

सामनेर के अंर्तचक्षु खुल गए। उसने सारिपुत्त से आज्ञा ली और विहार में आकर ध्यान-साधना में लीन हो गया। ध्यान में लीन होकर सामनेर ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

संध्या बेला में धमचर्या हुई। आज का विषय था- "सामनेर पंडित।" शाक्य मुनि ने बताया, "जब कोई व्यक्ति पूरी तन्मयता से ध्यान तथा धर्म का अनुपालन करता है तो इन्द्र और अन्य देवता भी उसकी रक्षा करते हैं। मैंने भी उसके कक्ष के बाहर खड़ा होकर उसकी मदद की ताकि उसकी साधना में कोई व्यवधान न आवे। किसान नहर से जल लेते हुए, धनुष बनाने वाले वाण को सीधा करते हुए तथा बढ़ई लकड़ी काटकर वस्तुएं बनाते हुए जो एकाग्रता प्राप्त करते हैं, उसी एकाग्रता को पाकर पंडित लोग आत्म संयम द्वारा अर्हत्व प्राप्त करते हैं।"

ऐसा कहते हुए उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु, न समिज्जन्ति पण्डिता।।81।।

अर्थ: जैसे पहाड़ हवा से विचलित नहीं होता उसी प्रकार पंडित लोग निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

बुद्धिमान पुरुष निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते
लकुण्टक भद्दिय थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में जेतवन विहार में लकुण्टक भद्दिय थेर भी निवास करता था। वह कद में ठिगना था। अत: लोग उसे 'लकुण्टक भद्दिय' कहते थे। यद्यपि वह कद में छोटा था, तथापि हृदय से बहुत ही बड़ा था। सरल, नम्र और पवित्र हृदय का था। चूँकि वह बहुत ही सीधा-साधा तथा साफ हृदय का था, भिक्षुगण उसकी आयु का भी सम्मान न करते हुए अक्सर उसका मजाक उड़ाया करते थे। अक्सर तरुण भिक्षु उसके सर पर चपत लगा देते थे, उसके कान या नाक पकड़ कर रगड़ देते और मजाक करते, "अरे चाचाजी ! धर्म में पूरा मन नहीं लगा रहे हो। भिक्षु जीवन से ऊब तो नहीं गए हो ? यहाँ खुश नहीं हो क्या ? " आदि-आदि। वह भला और स्वच्छ हृदय वाला थेर उनके इस गलत व्यवहार पर भी उन पर न तो गुस्सा करता था और न ही द्वेष। वह उन्हें न तो टोकता था और न उनसे कोई शिकायत ही करता था। प्रसन्नचित्त रहकर अपनी साधना में लीन रहा करता था।

शाक्य-मुनि को लकुण्टक भद्दिय थेर के विषय में जानकारी हुई। उधर एक दिन संध्या बेला में धर्म सभा में चर्चा चल पड़ी, "लकुण्टक भद्दिय थेर के साथ तरुण भिक्षु ऐसा दुर्व्यवहार करते हैं पर वे इतने अच्छे हैं कि किसी पर न तो क्रोध प्रकट करते हैं और न किसी के प्रति द्वेष ही रखते हैं।" उसी समय शास्ता वहाँ पधारे। उन्होंने चर्चा का विषय सुना तो कहा, "हाँ भिक्षुगण ! यह सच है कि क्षीणास्त्रव भिक्षु न तो किसी पर क्रोध करते हैं और न किसी से द्वेष ही रखते हैं। वे पत्थर की चट्टान की तरह प्रशंसा और निंदा दोनों में ही अडिग रहते हैं।" ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: यथापि रहदो गम्भीरो, विप्पसन्नो अनाविलो।
एवं धम्मानि सुत्वान, विप्पसीदन्ति पण्डिता।।82।।

अर्थ: पंडित जन धर्म को सुनकर अथाह, गहरे, स्वच्छ, निर्मल स्थिर जलाशय (समुद्र) के समान अत्यन्त प्रसन्न चित्त होते हैं।

पंडित जन धर्म श्रवण कर प्रसन्नचित होते हैं
काण माता की कथा

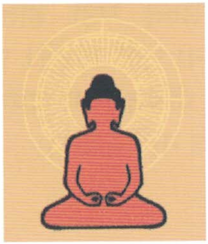
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

काणमाता की बेटी काणा को ससुराल वापस जाना था। माँ ने सोचा : बेटी पति के घर खाली हाथ न जाये इसलिए पूए बनाए गए पर उसी समय भिक्षुगण वहाँ आ पधारे और पूए उन्हें दे दिए गए। पूए दोबारा बने, फिर भिक्षु आ गए, पूए उन्हें दे दिए गए। यह सिलसिला चलता रहा और काणा का ससुराल जाना स्थगित होता रहा। पति ने क्रुद्ध होकर दूसरी शादी कर ली, काणा का मन खट्टा हो गया। भिक्षुओं के प्रति अब उसे नफरत हो गई। वह कहती, "इन भिक्षुओं ने मेरा घर उजाड़ दिया।" वह कभी भी किसी भिक्षु को देखती, बुरे शब्द बोलने लगती। भिक्षुओं को बुरा लगता। उन्होंने काणा के घर की ओर भिक्षाटन करना बंद कर दिया।

शास्ता को इस बात की जानकारी हुई। वे एक दिन काणमाता के घर भिक्षाटन हेतु जा पहुँचे। काणमाता ने उन्हें सादर प्रणाम किया और भोजन कराया। शास्ता ने भोजन कर काणमाता से पूछा, "काणा कहाँ है ?" "भन्ते ! वह आपको देखकर चुपचाप घर के एक कोने में बैठकर रो रही है।" "वह क्यों रो रही है ?" "भन्ते ! वह आजकल किसी भी भिक्षु को देखकर उसे भला-बुरा कहने लगती है। अतः आज आपको देखकर चुपचाप अकेली बैठी रो रही है।" तब शाक्य मुनि ने काणा को बुलाया और उससे पूछा, "काणे ! तुम मुझे देखकर घर में एक कोने में बैठकर, अकेली क्यों रो रही हो ?" तब काणमाता ने तथागत को बताया कि काणा ने क्या-क्या किया था। यह सब सुनकर उन्होंने काणमाता से पूछा, "काणमाता ! मुझे एक बात बताओ, भिक्षुगण तुम्हारे दिये हुए पूए खाते थे या बिना दिए हुए पूए भी खा जाते थे ? " "भन्ते ! वे तो दिए हुए पूए ही खाते थे। बिना दिए हुए पूए कैसे खाते ?" "तो फिर अगर भिक्षुगण तुम्हारे द्वार पर आते थे और तुम उन्हें पूए दे देती थी और वे पूए खाते थे तो इसमें उनका क्या दोष है ? " काणमाता ने उत्तर दिया, "नहीं भन्ते ! इसमें उनका कोई दोष नहीं है, इसमें दोष तो सिर्फ काणा का है।" शाक्य मुनि ने यही प्रश्न काणा से भी दोहराया। काणा भी बोली, "नहीं भन्ते ! इसमें भिक्षुओं का कोई दोष नहीं है। दोष तो मेरा ही है।" ऐसा कहकर काणा ने शास्ता को सादर प्रणाम किया और अपनी गलती के लिए क्षमा माँगी। तथागत ने उसे धर्मोपदेश दिया और वह धर्म के मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हुई।

बुद्ध काणा के घर से प्रस्थान कर गए। मार्ग में राजा से भेंट हो गई। बुद्ध ने राजा को बताया कि काणा का आने वाले लोक के लिए कल्याण हो गया । राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "मैं उसका इसी लोक में कल्याण करूँगा।" यह कहकर उसने रथ भेजकर काणा को बुला लिया और उसे आभूषणों से अलंकृत कर अपनी बड़ी बेटी बना लिया। साथ ही घोषणा की, "जो मेरी बेटी को सम्मान पूर्वक रख सकता हो वह उसे अपने घर ले जाए।" एक धनी महामात्य ने उसे अपने घर ला, संपूर्ण धन-दौलत की स्वामिनी बना धर्म-कार्य करने की स्वतंत्रता दे दी।

धर्म प्रवचन के समय इस विषय पर चर्चा हुई। शास्ता ने बताया कि उन्होंने पूर्व जन्मों में भी काणा को आज्ञाकारी बनाया था।





गाथा: सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति, न कामकामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन, न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति।।83।।

अर्थः सत्पुरुष कहीं आसक्त नहीं होते हैं। वे कामभोगों की कामना नहीं करते। उन्हें चाहे सुख मिले या दुःख, पंडित लोग अपने मन का चढ़ाव-उतार प्रदर्शित नहीं करते।

सद्पुरुष सुख-दु:ख में सर्वत्र सन्तुष्ट रहते हैं
पाँच सौ जूठा खाने वालों की कथा

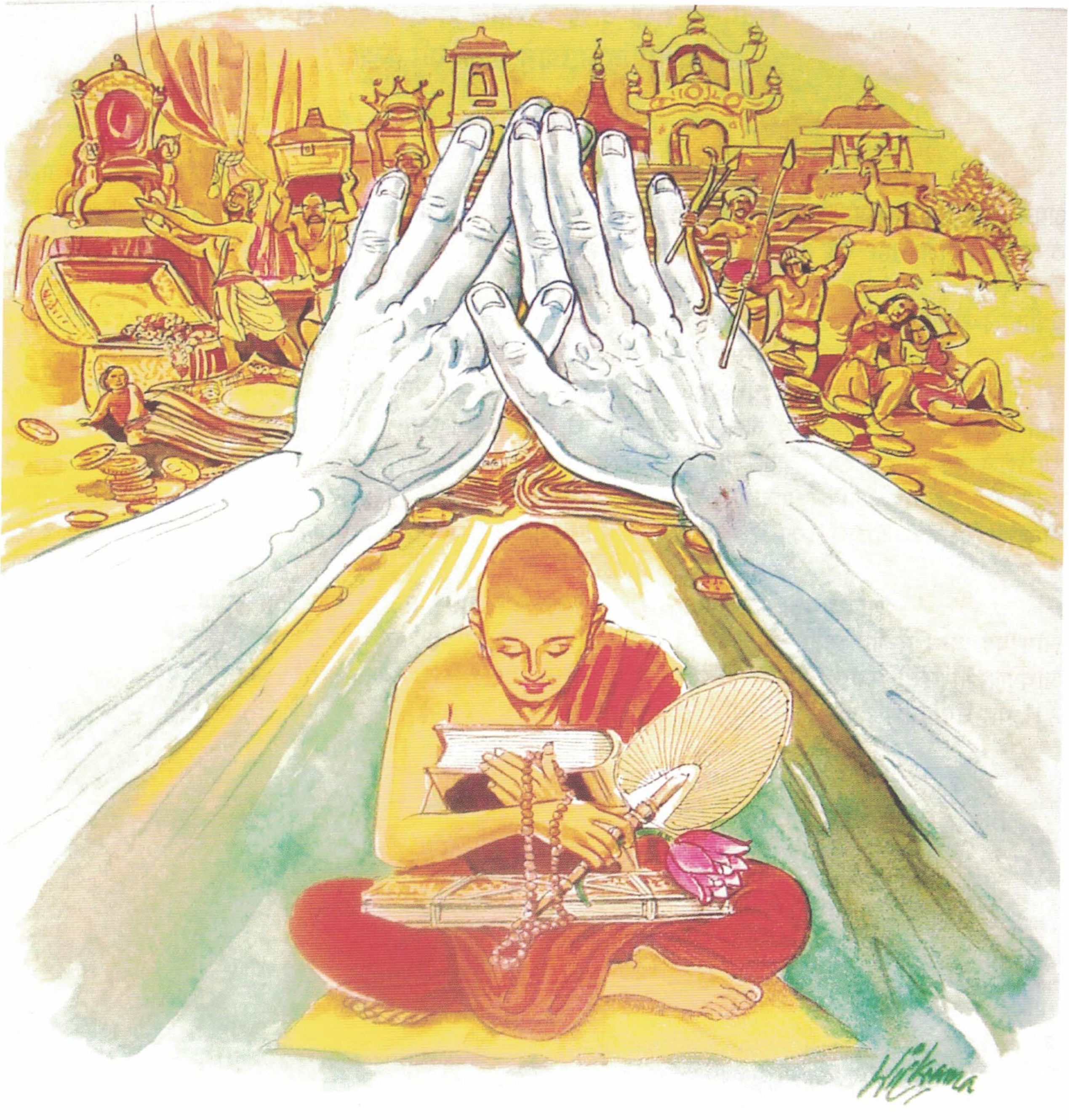
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय वेरञ्जा ग्राम के एक ब्राह्मण ने बुद्ध को वर्षाकाल में आमंत्रित किया। शास्ता अपने पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वहाँ पहुँचे। गाँव में अकाल पड़ा था। अतः ब्राह्मण बुद्ध और भिक्षुसंघ का ठीक से ख्याल नहीं रख सका। भिक्षुगण गाँव में जाते, जो कुछ भी रूखा-सूखा मिलता उसे खाकर काम चला लेते। उनके साथ कुछ और लोग थे जो भिक्षुओं द्वारा छोड़े हुए भोजन को चटपट खाकर सो जाते थे। वर्षाकाल समाप्त हुआ। शास्ता भिक्षुओं के साथ श्रावस्ती आ गए।

श्रावस्ती पहुँचने पर श्रावस्ती वालों ने तथागत तथा भिक्षुसंघ का प्रेमपूर्वक स्वागत किया। जो लोग भिक्षुसंघ के साथ थे, वे खुशी के मारे झूमने-गाने लगे, मानों पागल हों। भिक्षु लोगों पर कोई असर नहीं हुआ। वे उसी प्रकार रहे जैसे वरेञ्जा में रहते थे। उन्होंने एक दिन धर्म सभा में इस विषय को उठाया, "ये छोड़े हुए भोजन खाने वाले लोग वेरञ्जा में तो इस प्रकार उछल-कूद नहीं मचाते थे। वहाँ तो वे शांत रहते थे। पर यहाँ आकर अच्छा एवं स्वादिष्ट उच्छिष्ट भोजन प्राप्त कर उछल-कूद मचा रहे हैं। इसके विपरीत भिक्षुगण जैसे वरेञ्जा में शांत रहकर ध्यान-साधना करते थे उसी प्रकार यहाँ भी धर्म साधना कर रहे हैं।"

शाक्य-मुनि को भी इसकी जानकारी दी गई। उन्होंने पूरी बात सुनकर स्पष्ट किया, "ये लोग पूर्व जन्म में गर्दभयोनि में जन्म लेकर इस प्रकार का उपद्रव कर चुके हैं। इसलिए उनका इस जन्म का आचरण भी उसी प्रकार का है। अच्छे लोग सुख और दु:ख, मान और अपमान सब में एक समान ही रहते हैं।" यह धर्मोंपदेश देकर शाक्य-मुनि ने यह गाथा कही।





गाथा: न अत्तहेतु न परस्स हेतु, न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
नयिच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो, स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया ।।84।।

अर्थ: जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन या राष्ट्र की इच्छा नहीं करता; जो अधर्म से अपनी उन्नति नहीं चाहता है वही सदाचारी है, प्रज्ञावान है, धार्मिक है।

धर्माचरण वाले व्यक्ति ही शीलवान, प्रज्ञावान हैं
धम्मिक थेर की कथा

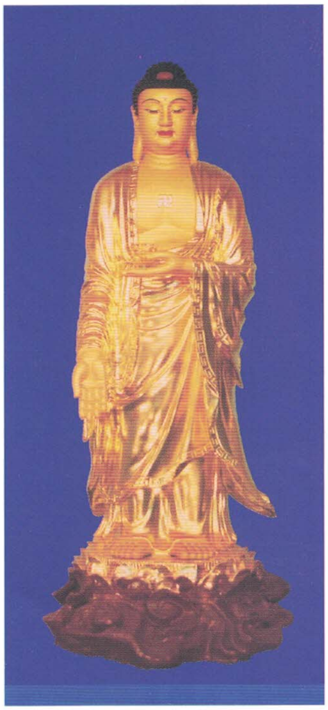
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में धम्मिक नाम का एक उपासक सदा धर्माचरण करता हुआ गृहस्थ आश्रम में रहता था। उसके मन में एक बार तीव्र विरक्ति हुई तथा उसने अपनी धर्मपत्नी से आनन्दपूर्वक बातचीत करते हुए कह डाला, "भाग्यवान ! मैं प्रव्रजित होना चाहता हूँ।" पत्नी ने उसे समझाया, "मेरे पेट में तुम्हारा बालक पल रहा है। उसे जन्म ले लेने दो तब चले जाना।" वह मान गया। समय बीता। पुत्र हुआ। तब धम्मिक ने एक दिन फिर अपनी पत्नी से इस विषय पर चर्चा की। इस बार पत्नी ने कहा, "थोड़े दिन प्रतीक्षा कर लो। जब बालक बड़ा हो जाएगा तब चले जाना।" परन्तु इस बार उसने सोचा, "मेरी पत्नी बार-बार मेरी प्रव्रज्या को टाल देती है। उससे पूछने या न पूछने से मेरा कोई लाभ नहीं होगा।" ऐसा सोचकर वह प्रव्रजित हो गया।

उसने बुद्ध से दीक्षा ली और परिश्रमपूर्वक साधना करता हुआ शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर गया। उसके बाद वह अपने परिवार से मिलने श्रावस्ती आया और अपने पुत्र को धर्मकथा सुनाई। उसकी धर्मकथा सुन पुत्र इतना प्रभावित हुआ कि उसने भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और शीघ्र ही वह भी अर्हत्व प्राप्त कर गया। तब उसकी पत्नी ने विचार किया, "पति और पुत्र के लिए घर बसाया था। अब दोनों ही गृहस्थ नहीं रहे। अब मुझे भी गृहस्थ आश्रम में रहने से क्या लाभ ?" ऐसा सोचकर उसने भी प्रव्रज्या ले ली और शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर गई।

एक दिन धर्म-सभा में चर्चा चल पड़ी- "उपासक धम्मिक ने कठोर उपासना कर, अपने आपको धर्म मार्ग पर प्रतिष्ठित कर अर्हत्व प्राप्त कर लिया। साथ ही साथ वह अपनी पत्नी और पुत्र के मुक्ति का भी आधार बना।" उसी समय शाक्य मुनि वहाँ पधारे और उन्होंने पूरी घटना का विश्लेषण किया, "भिक्षुओं ! समझदार व्यक्ति को न तो अपने लिए और न दूसरों के लिए लौकिक उन्नति की कामना करनी चाहिए; वरन् उसे धर्म को अपना शरणस्थल बना लेना चाहिए।"

यह समझाते हुए तथागत ने यह गाथा कही।





गाथा: अप्पका ते मनुस्सेसु, ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा, तीरमेवानुधावति।।85।।

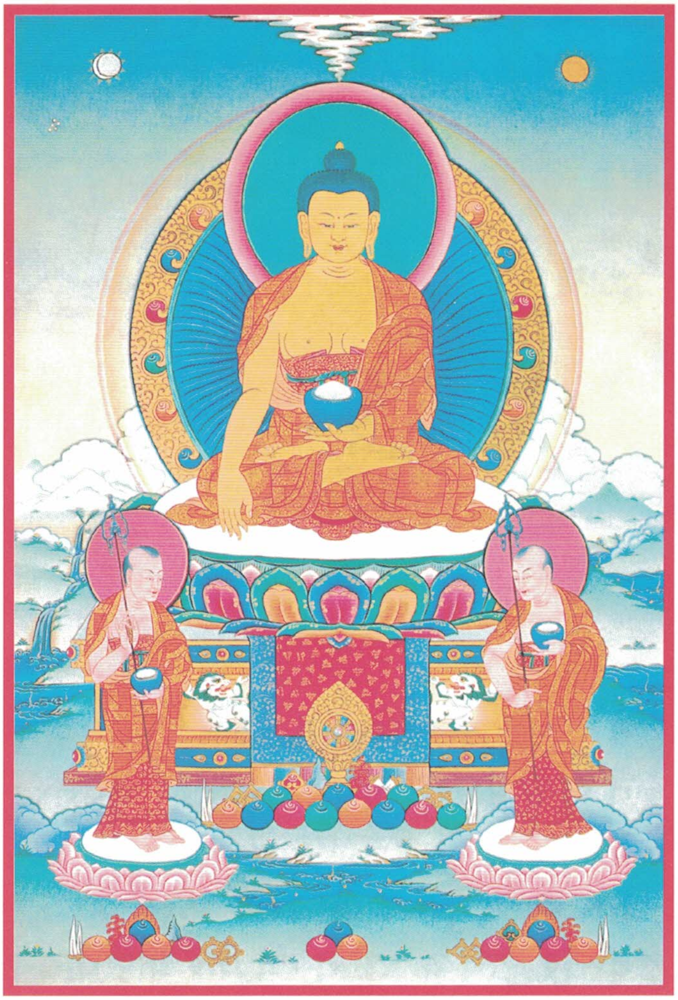
अर्थ: मनुष्यों में बहुत थोड़े होते हैं जो पार पहुँचते हैं। बाकी लोग तो किनारे पर ही दौड़ते रहते हैं।

संसार पार जाने वाले थोड़े ही हैं
धर्म की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा तथागत ने श्रावस्ती के जेतवन विहार में धर्मश्रवण के विषय में कही थी।

एक बार श्रावस्ती वालों ने एक गली में रात्रि जागरण एवं धर्मपाठ आयोजित किया। इसमें पूरी रात भिक्षुगण उपदेश, प्रवचन आदि देते रहे। सारी रात धर्मकथा और धर्म श्रवण का सिलसिला जारी रहा परन्तु सारे इकट्ठे लोग पूरी रात धर्मकथा सुन नहीं पाए। किसी को धर्मश्रमण के काल में ही कामभोग ने आ दबोचा तो वह अपने निवास पर वापस लौट आया। किसी को मान ने आ दबोचा तो कोई आलस्य का शिकार हो गया। नतीजा यह कि कुछ लोग जल्दी उठकर चले गए, कुछ जल्दी ही जाकर सो गए, कुछ पूरी रात बैठ नहीं पाये और कुछ कभी बैठते तो कभी उठकर इधर-उधर घूमने-टहलने लगते। कुछ ऊँघते रहे और आधी-नींद में उठते-सोते प्रवचन सुनते रहे। बहुत थोड़े थे जो ध्यानपूर्वक, गम्भीरता से पूरी रात प्रवचन सुनते रहे।





गाथा: ये च खो सम्मदक्खाते, धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं।।86।।

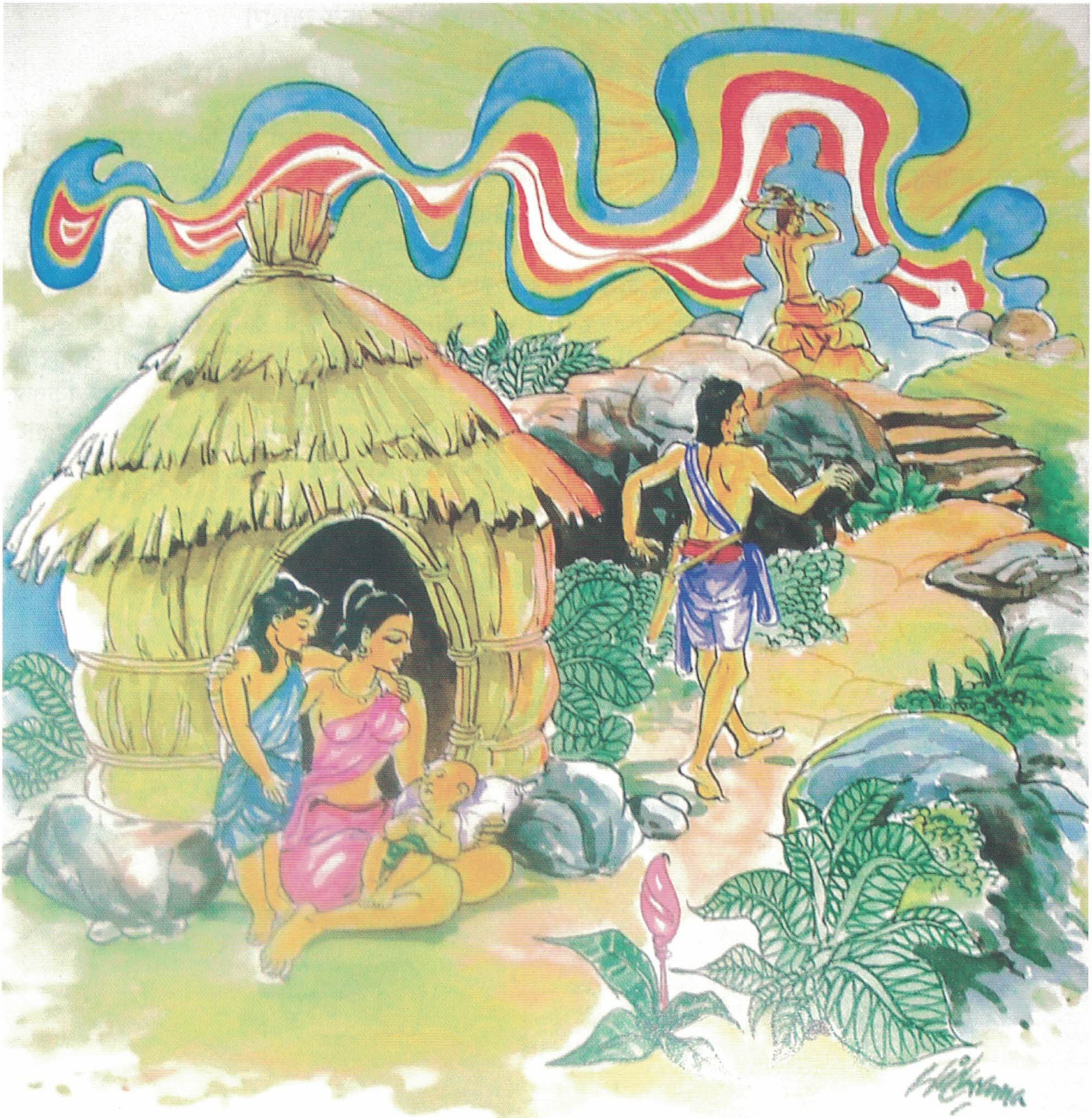
अर्थ: जो लोग भी इस प्रकार स्पष्ट कर दिए गए धर्म के अनुसार आचरण करते हैं वे ही इस दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार कर पायेंगे।

धर्म का अनुगमन करने वाले भवसागर पार कर जायेंगे
धर्म की कथा

दूसरे दिन धर्म सभा में बुजुर्ग भिक्षुओं ने इस विषय को चर्चा के लिए उठाया। उन्होंने शास्ता को बताया कि संपूर्ण रात्रि धर्म प्रवचन की स्थिति कैसी रही । शास्ता ने पूरे प्रकरण को समझकर भिक्षुओं को स्पष्ट किया, "भिक्षुगण ! संसार में जन्मे अधिकांश प्राणी संसार में ही आसक्त रहते हैं तथा संसार में ही आसक्त रहना चाहते हैं। संसार रूपी भवसागर पार उतरने की इच्छा रखने वाले विरले ही होते हैं। जो मनुष्य धर्म के अनुसार आचरण करता है, वह इस मृत्यु रूपी भवसागर को पार कर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।" उन्होंने और अधिक स्पष्ट करते हुए समझाया, "भिक्षुओं ! सभी नदी के पार उतरना चाहते हैं। यह संसार भी एक नदी की तरह ही है। नदी की तरह इसके भी दो किनारे हैं- पहला किनारा है मृत्यु, काल और अस्तित्व का और दूसरा किनारा है : अमृतमय, आनंद और निर्वाण का। एक किनारा सांसारिक, लौकिक है तो दूसरा किनारा अलौकिक निर्वाण तक पहुँचाने वाला मार्ग है। अधिकांश लोग नदी के किनारे-किनारे ही दौड़ने वाले हैं। मनुष्यों में बहुत थोड़े हैं जो संसार सागर के पार उतरना चाहते हैं।"

ऐसा समझाकर बुद्ध ने ये गाथायें कहीं।





गाथा: कण्हं धम्मं विप्पहाय, सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकं आगम्म, विवेके यत्थ दूरमं।।87।।

अर्थः बुद्धिमान पुरुष कृष्ण (पाप कर्म) धर्म का परित्याग कर शुक्ल धर्म (पुण्य कर्म) की कामना करे अर्थात् पाप कर्म को त्यागकर पुण्य कर्म करने के लिए प्रेरित हो। वह घर से बेघर होकर सामान्य व्यक्ति के लिए आकर्षणहीन एकांत का सेवन करे।

बुद्धिमान कृष्ण धर्म का त्याग कर शुक्ल धर्म का आचरण करें
आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

ये तीन गाथायें शाक्य-मुनि ने जेतवन वास काल में पाँच सौ आगन्तुक भिक्षुओं के संदर्भ में कही थी।

एक बार पाँच सौ भिक्षु कोसलराज में वर्षावास बिताने के बाद "शास्ता के दर्शन करेंगे" इस उद्देश्य से जेतवन विहार पधारे। उन्होंने तथागत को सादर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। शास्ता ने उनका हाल-समाचार पूछा और फिर उनकी साधना के विषय में भी पूछा। उन्होंने अपने-अपने अनुभव बताये और उसे सुनने के बाद बुद्ध ने ये तीन गाथायें कहीं।





गाथा: तत्राभिरतिमिच्छेय्य, हित्वा कामे अकिंचनो।
परियोदपेय्य अत्तानं, चित्तक्लेसेहि पण्डितो।।88।।

अर्थ: काम भोगों को छोड़ कर अकिंचन बनकर वहीं उसी प्रव्रज्या की अवस्था में ही रहने की इच्छा करे। पंडित व्यक्ति पाँच चित्त-मलों से अपने आप को परिशुद्ध करे।

कामनाओं को त्यागकर प्रव्रज्या धारण करें
आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

टिप्पणी : बुद्ध ने ये तीन गाथायें पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में कही थी, पर गृहस्थ धर्म वालों के ऊपर भी यह लागू होता है। कैसे ? बुद्ध सीख देते हैं कि समझदार व्यक्ति को कृष्ण (पाप) धर्म का त्याग कर शुक्ल (पुण्य) धर्म का आचरण करना चाहिए। बुद्ध की सारी शिक्षा का सार है, "अकुशल कर्मों का त्याग और कुशल कर्मों का सृजन।" यह शाश्वत सत्य प्रकृति का एक ऐसा नियम है जो सभी के ऊपर लागू होता है। गृहस्थ सामान्यतः वह है जो सांसारिक चीजों में खोया हुआ है। इसके विपरीत प्रव्रजित वह है जो सांसारिक वस्तुओं से ऊपर उठ गया है। यह "चीजों में खोना" या "सांसारिक वस्तुओं से ऊपर उठना" बाह्य जगत की चीज नहीं है वरन् आन्तरिक प्रक्रिया है। अतः मन की कुशलता या अकुशलता के आधार पर गृहस्थ भी प्रव्रज्या की मनःस्थिति में रह सकता है। इसके विपरीत एक प्रव्रजित संन्यासी भी संसार में आसक्त रह सकता है।





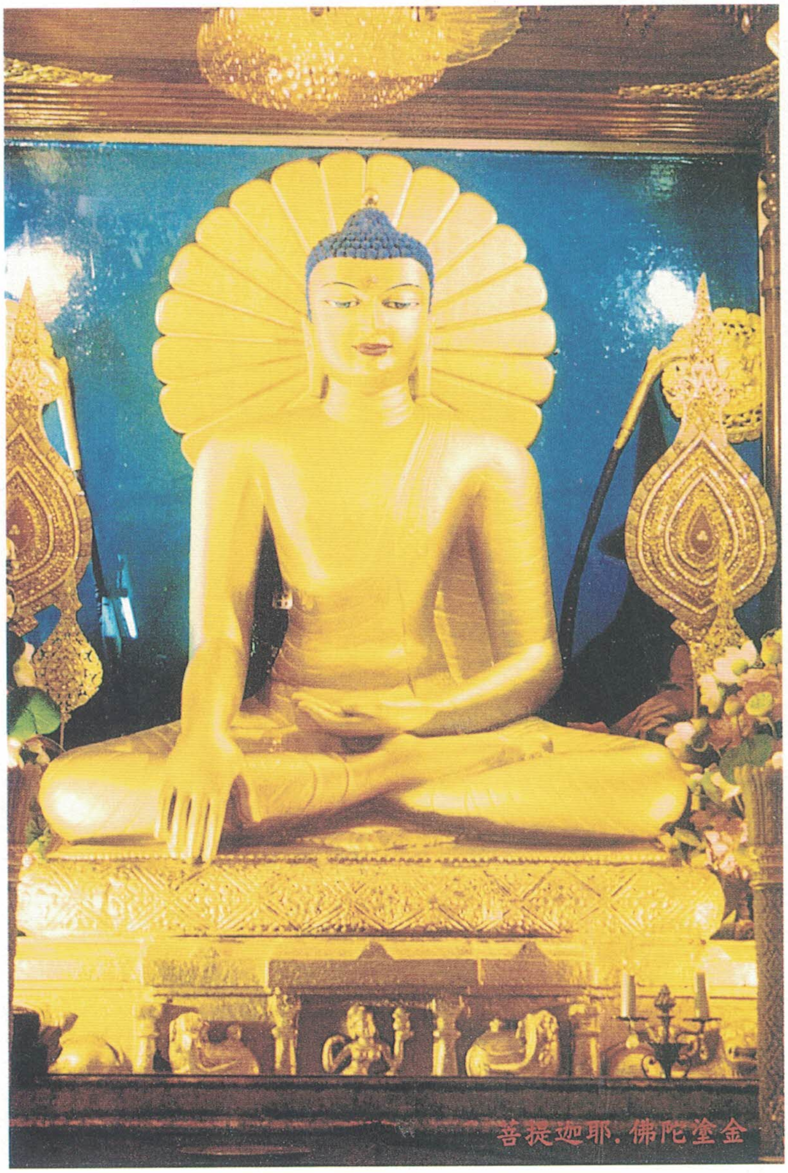
गाथा: येसं संबोधिअङ्गेसु, सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदानपटिनिस्सग्गे, अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतिमन्तो, ते लोके परिनिब्बुता।।89।।

अर्थः जिनका चित्त सम्बोधि-अंगों में भली भाँति अभ्यस्त हो चुका है, जो परिग्रह का त्याग कर अपरिग्रह में लीन हैं, जिनके चित्तविकार समाप्त हो चुके हैं, जो तेजस्वी बन चुके हैं ऐसे लोग ही संसार में निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

चित्तविकारों से मुक्त निर्वाण प्राप्त करेंगे आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

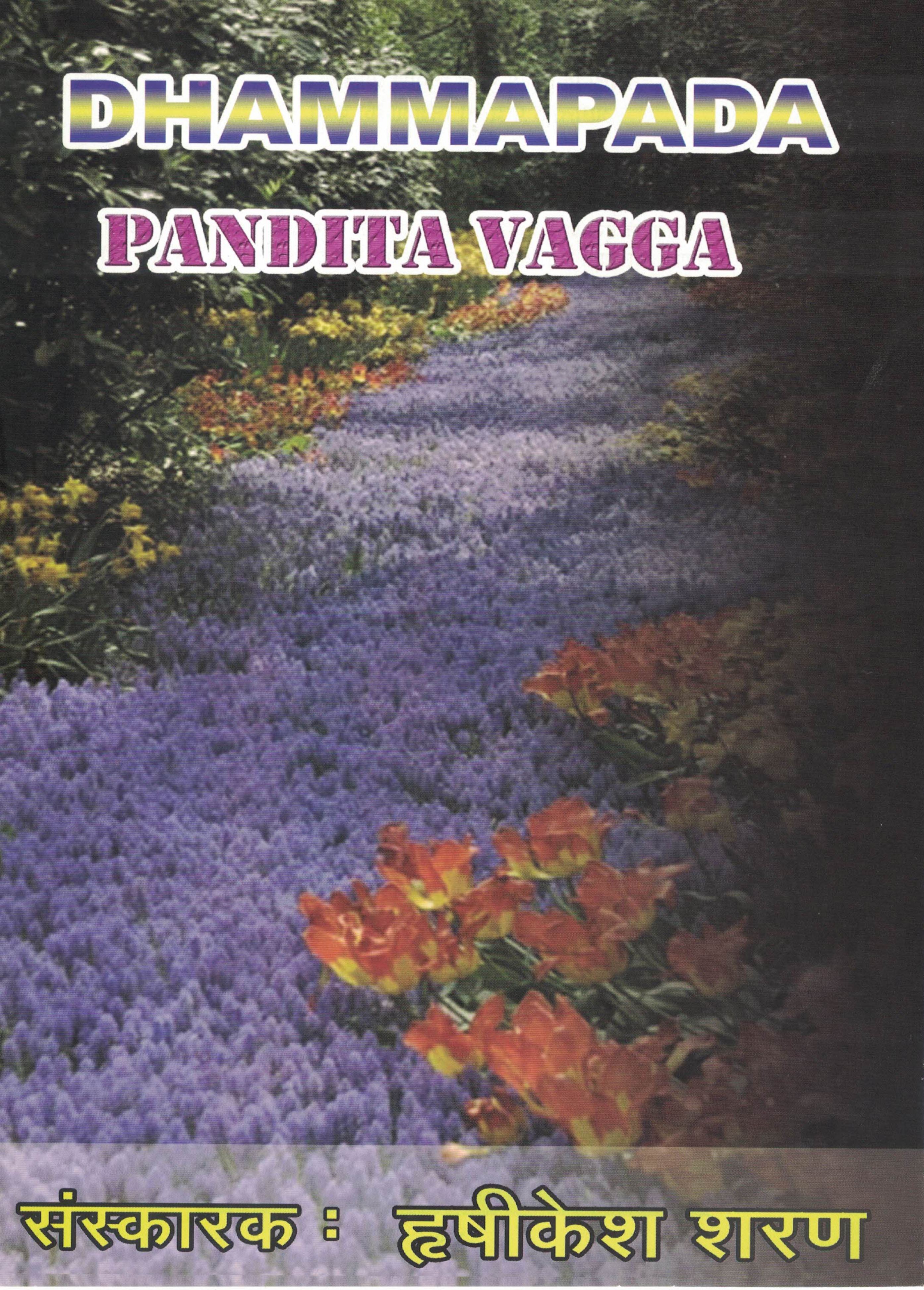
अतः जो जहाँ है उसे वहीं पर मन को कुशल बनाने के लिए तुरंत प्रयत्नशील हो जाना चाहिए, क्योंकि अगर व्यक्ति मन से संसार में अनुरक्त है तो उसके लिए विवेक की साधना कठिन होती है। अतः सारा का सारा खेल मन का है। शास्ता ने इसे प्रथम अध्याय "यमक वर्ग" के प्रथम श्लोक से ही स्पष्ट कर दिया है। जो व्यक्ति मन से कामनाओं को त्याग देगा वही अकिंचन बनकर प्रव्रज्या की मनःस्थिति में रह पायेगा और इस प्रकार मन के क्लेशों का नाश कर स्वयं को परिशुद्ध कर सकेगा।

जिनका चित्त सम्बोधि-अंगों (सति, धम्म-विचय, वीर्य, पीति पस्सद्धि, समाधि और उपेक्खा,) में रम गया है इस कारण सांसारिक लाभों के प्रति वैरागी हो गया है और चित्त विकारों का नाश कर ज्ञानी हो गया है, ऐसा व्यक्ति ही अंततः निर्वाण को प्राप्त कर सकेगा।



DHAMMAPADA

PANDITA VAGGA



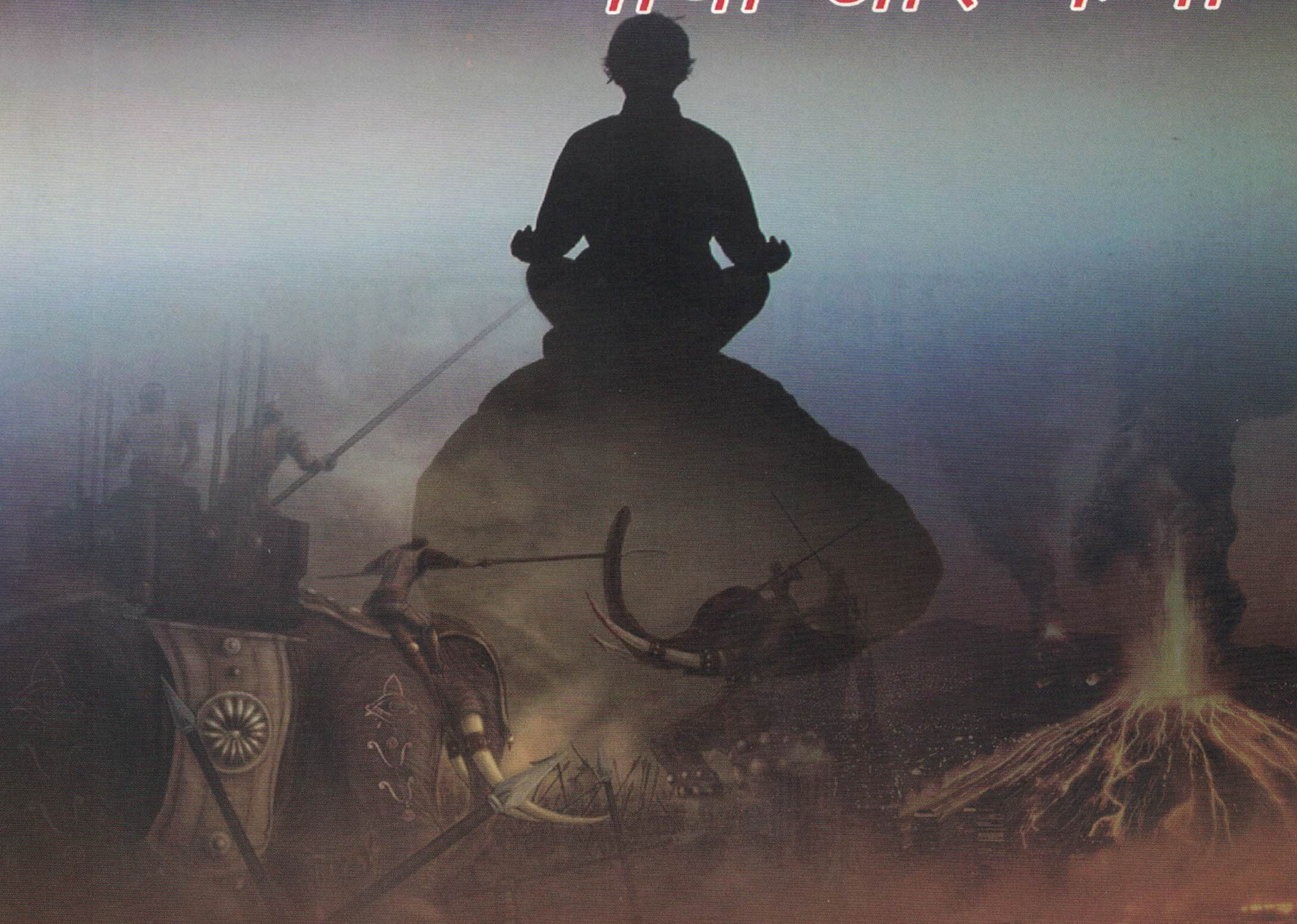
संस्कारक : हृषीकेश शरण

आन्तरिक शत्रुओं का विनाश

धम्मपद

अर्हन्त वर्ग

गाथा और कथा



संस्कारक : हृषीकेश शरण

आन्तरिक शत्रुओं का विनाश

धम्मपद

अर्हन्त वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

अर्हन्त वर्ग



गाथा: गतद्धिनो विसोकस्स, विप्पमुत्तस्स सब्बधि।
सब्बगन्थप्पहीनस्स, परिळाहो न विज्जति।।90।।

अर्थ: जिसने मार्ग पूरा कर लिया है अर्थात् जिसका संसार में आना-जाना समाप्त हो चुका है, जो सभी तरह से विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रंथियाँ खुल गई हैं ऐसे व्यक्ति के लिए कोई संताप (कष्ट) नहीं रह जाता।

जीवनमुक्त : बुद्धों को कष्ट कहाँ ?
जीवक की कथा

स्थान : जीवकाम्रवन, राजगृह

एक दिन देवदत्त ने यह प्रण कर कि 'तथागत की जान ले लूँगा' गृद्धकूट पर्वत से एक चट्टान खिसका दी। उसके पर्वत के शिखरों से टकराने से अनेक टुकड़े हो गए और एक टुकड़ा शाक्य मुनि के पैर के अंगूठे में आ लगा। खून बहने लगा। घाव हो गया। वह फरसे से लगे घाव की तरह दिख रहा था।

शास्ता ने जीवक के पास ले चलने की सलाह दी। भिक्षु उन्हें लेकर जीवक के आम्रवन पहुँचे। जीवक राजगृह का प्रसिद्ध वैद्य था और बुद्ध का भक्त भी था। उसने अंगूठे पर तीक्ष्ण मलहम-पट्टी लगाकर शाक्य-मुनि से यूँ कहा, "भन्ते ! मुझे राजगृह में अन्य मरीजों को देखना है। उन्हें देखकर आता हूँ। तब तक यह पट्टी बंधी रहने दें।" ऐसा कहकर वह चला गया, लेकिन मरीज देखते-देखते उसे देर हो गई। वह शास्ता के पास आना चाहता था पर नगर के सभी द्वार बंद कर दिए गए थे। वह नहीं जा पाया पर उसने विचार किया, "हे भगवान ! मैंने बहुत गलत कर दिया। शास्ता का पट्टी खोलने का समय हो गया है। अगर पट्टी नहीं खुली तो उन्हें रात भर बहुत दर्द होता रहेगा।" उधर शाक्य मुनि ने आनन्द स्थविर को बुलाया और कहा, "आनन्द ! जीवक ने कहा था कि वह इस समय तक आ जाएगा। पर लगता है नगर के द्वार बंद हो जाने के कारण वह नहीं आ पाया है। मेरे अंगूठे की पट्टी खोल दो।" आनन्द ने पट्टी खोल दी। घाव सूख चुका था। उधर जीवक सुबह-सुबह शाक्य-मुनि के पास आ पहुँचा। पहुँचकर पूछा, "भन्ते ! क्या शरीर में तकलीफ हो रही है ?" शाक्य मुनि ने उत्तर दिया, "जीवक ! जिस दिन से बोधिलाभ प्राप्त किया है उस दिन से मुझे न कोई दुःख है, न तकलीफ, न कोई कष्ट है और न कोई पीड़ा।"

तब अवसर के अनुकूल बुद्ध ने यह गाथा कही





गाथा: उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो, न निकेते रमन्ति ते।
हंसाव पल्लवं हित्वा, ओकमोकं जहन्ति ते।।91।।

अर्थ: जो साधकजन स्मृतिमान होकर अपनी साधना (ध्यान, विपश्यना आदि उद्योग) में लगे रहते हैं वे गृहस्थ (घर) में कोई आसक्ति नहीं रखते। जैसे स्वच्छ जलाशय में तैरने वाले राजहंस गाँव के गंदे तालाब को त्याग देते हैं, वैसे ही ऐसे साधक साधारण गृहस्थी में कोई आसक्ति नहीं रखते।

आसक्ति का बंधन टूटा
महाकस्सप थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

शाक्य-मुनि राजगृह में भिक्षुगण के साथ वर्षाकाल बिता रहे थे। वर्षाकाल समाप्त होने से दो सप्ताह पूर्व उन्होंने भिक्षुओं को बता दिया कि सभी भिक्षु वर्षाकाल की समाप्ति पर राजगृह से कूच कर जायेंगे। सभी भिक्षु जाने की तैयारी करने लगे। महाकस्सप भी अपने चीवर आदि धोने लगे, जाने की तैयारी में जुट गए।

भिक्षुओं ने उन्हें भी तैयारी करते हुए देखा तो चर्चा करने लगे, "राजगृह के आसपास के उपासकों की महाकस्सप में अटूट श्रद्धा है। वे उनकी हृदय से सेवा करते हैं और उनमें प्रेम रखते हैं। हमें नहीं लगता कि वे उन्हें छोड़कर वर्षाकाल के बाद शास्ता के साथ प्रस्थान करेंगे।"

दो सप्ताह बीत गए। जाने का दिन आ गया। शास्ता को ध्यान आया, "राजगृह में बहुत सारे उपासक रहते हैं, उपासक भिक्षुओं को भोजन दान देते हैं, नए-नए उपासक संघ में शामिल होते है और इसी प्रकार के अन्य अवसर भी आते हैं। अत: विहार को खाली छोड़ना उचित नहीं होगा। कुछ भिक्षुओं को यहाँ रुक जाना चाहिए।" ऐसा सोचकर उन्होंने महाकस्सप और कुछ भिक्षुओं को वहीं रुक जाने का निर्देश दिया। तथागत की आज्ञा का पालन करते हुए वे रुक गए।

उन्हें रुकते हुए देख भिक्षुगण आपस में चर्चा करने लगे, "देखा ! हम तो पहले से ही कह रहे थे कि महाकस्सप चीवर धोकर चलने की तैयारी क्यों कर रहे हैं ? इन्हें तो यहीं रहना था। हमने जो कहा था वही हुआ।" तथागत ने इन भिक्षुओं की चर्चा सुनी और कहा, "भिक्षुओं ! तुम महाकस्सप के विषय में यह मत कहो कि यह इस जगह से आसक्त है। इसे तो मैंने ही विहार के कार्य के लिए रुक जाने के लिए कहा है और 'मैं आपके आदेश का पालन करूँगा' यह कहकर वह रुका है। इसने पूर्व जन्म में भी इसी प्रार्थना के साथ साधना प्रारंभ की थी कि 'मैं चन्द्रमा की तरह सभी परिवारों में जाऊँ।' इसकी किसी चीज में आसक्ति नहीं है।"

फिर विस्तृत वृतांत पूछने पर शास्ता ने महाकस्सप के पूर्व जन्म की कथा सुनाई और समझाया, "जो राजहंस स्वच्छ सरोवर में तैर चुका है, उसे किसी गंदे तालाब में तैरने की क्या इच्छा होगी ? " उन्होंने यह फिर संदेश दिया।





गाथा: यस सान्निचया नात्थि, य पारञ्ञातभोजना।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च, विमोक्खो येसं गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं, गति तेसं दुरन्नया।।92।।

अर्थ: जो वस्तुओं, कर्मों और प्रत्ययों का संचय नहीं करते, जिन्हें अपने आहार की मात्रा का पूरा ज्ञान है, शून्यता स्वरूप और निमित्तरहित निर्वाण (विभोक्ष) जिनका विचरण स्थान (गोचर) है, उनकी गति उसी प्रकार अज्ञेय है जैसे आकाश में पक्षियों की गति।

भिक्षुओं को संचय अनुचित है
बेलट्ठिसीस थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन थेर बेलट्ठिसीस भिक्षाटन के लिए निकले। भिक्षा ग्रहण की और वापस आने के लिए मुड़े पर उन्होंने सोचा, "प्रतिदिन भोजन की खोज में जाना एक कष्टदायक कार्य है और इसमें समय भी बर्बाद होता है। अतः उस समय का सदुपयोग ध्यान-साधना में करना अधिक अच्छा होगा" ऐसा सोचकर वे वहीं रुक गए और एक बार फिर भिक्षाटन के लिए चले गए। जब पर्याप्त भिक्षा प्राप्त हो गई तो वे विहार में वापस आ गए। उस भात को उन्होंने सुखाकर रख दिया और ध्यान विपश्यना में लग गए। अब उन्होंने भिक्षाटन के लिए गाँव में जाना बंद कर दिया। जब कभी भूख लगती तो भात के कुछ दानों को पानी में भिगो देते और फिर उसे खाकर अपनी भूख मिटा लेते। उसके बाद पुनः एक बार ध्यान साधना में लग जाते।

दूसरे भिक्षुगण ने यह देखा। उन्हें लगा कि बेलट्ठिसीस ने संग्रह करने की बुरी आदत पकड़ ली है। भिक्षुओं को संग्रह करने की मनाही है। परिग्रह करना विनय के नियमों के विपरीत है। अतः वे उद्विग्न होकर बुद्ध के पास गए और उन्हें पूरी बात बताई। शास्ता ने उन्हें समझाया कि थेर ने लालच वश परिग्रह नहीं किया था। सिर्फ अपना समय बचाने के लिए किया था। अतः इसमें उसका कोई दोष नहीं था। फिर उन्होंने यह गाथा सुनाई।





गाथा: यस्सासवा परिक्खीणा, आहारे च अनिस्सितो।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च, विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं, पदं तस्स दुरन्नयं।।93।।

अर्थ: जिनके चित्त विकार (आस्त्रव) पूरी तरह क्षीण हो चुके हैं, जो आहार के प्रति सर्वथा अनासक्त है, शून्यता स्वरूप और निमित्तरहित निर्वाण जिनका लक्ष्य (गोचर) है, उनकी गति उसी प्रकार कठिनाई से जानने योग्य है जैसे आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति।

निर्वाण की गति अज्ञेय है
अनुरुद्ध स्थविर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

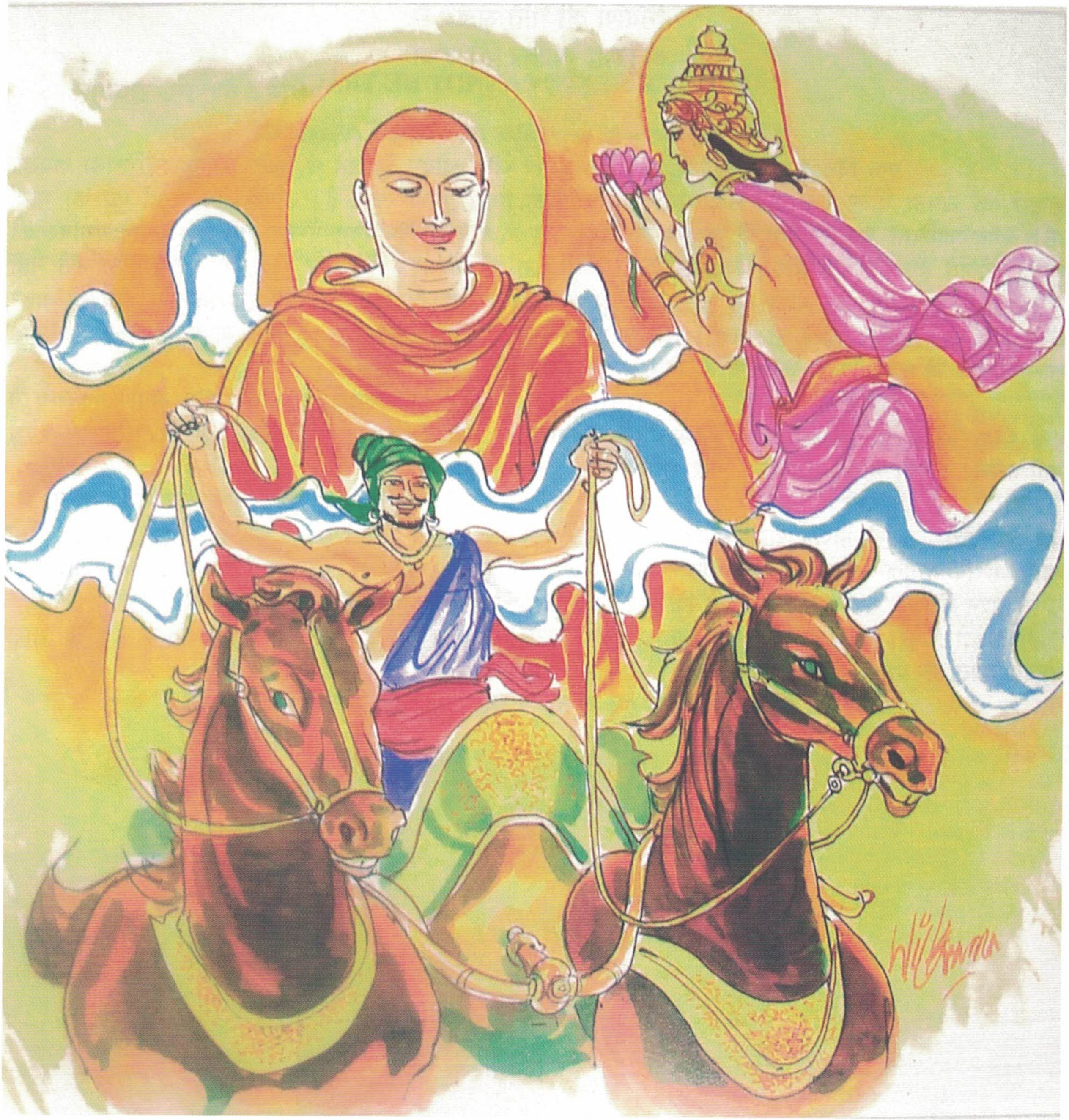
एक दिन अनुरुद्ध स्थविर कूड़े के ढेर पर जीर्ण चीवर ढूँढ़ रहे थे ताकि पांशुकूल (चिथड़ा कपड़ा) इकट्ठा कर अपना चीवर बना सकें। अनिरुद्ध को 'बुद्ध का हृदय' कहा जाता है। उनके तीन जन्मों पूर्व की भार्या उस समय जालिनी नाम से देवपुत्री के रूप में त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक के भवन में रह रही थी। उसने स्थविर को चीवर खोजते हुए देखकर सोचा, " अगर मैं दिव्य दुशाला को नववस्त्र के ऊपर रख दूँगी तो स्थविर उसे नहीं लेंगे।" इसलिए उसने उस वस्त्र को कूड़े के अंदर इस प्रकार दबा दिया कि उसका एक किनारा मात्र ही बाहर दिख रहा था। स्थविर उधर से गुजरे। उन्होंने कपड़े का किनारा देखा, उसे कूड़े से बाहर निकाला तथा यह सोचकर कि 'ये अच्छे किस्म के वस्त्र हैं' विहार में लेकर चले आए।

विहार में भिक्षु चीवर सीने लगे। शास्ता भी वहीं थे। अनुरुद्ध भी चीवर सीने लगा। जालिनी ने इन्हें चीवर बनाते हुए देखा तो नगर में आई और घोषणा की, "आज भिक्षुगण भोजन दान के लिए नगर में प्रवेश नहीं करेंगे। उनका भोजन बनाकर विहार में भेजने की व्यवस्था की जाए।"

दोपहर में खाने की इतनी सामग्री विहार में भेज दी गई कि बहुत कुछ बच गया। भिक्षु इसे देखकर सोचे, "इतनी भोजन राशि भेजने की जरूरत क्या थी ? ऐसा लगता है कि स्थविर अनुरुद्ध यह दिखाना चाहते हैं कि उनके उपासक उनमें कितना अधिक प्रेम और श्रद्धा रखते हैं।" भिक्षुओं की बात सुनकर शास्ता ने उनसे प्रश्न किया, "क्या तुम सोचते हो कि अनुरुद्ध ने यह सब कुछ दिखाने के लिए किया है ? " "हाँ भन्ते ! " "नहीं शिष्यों ! मेरा शिष्य अनुरुद्ध ऐसा नहीं है। वह ऐसा नहीं कर सकता। उसने ऐसा नहीं किया है। यह सारा भोजन देवता के प्रभाव से प्राप्त हुआ है।"

प्रकरण से अनुसन्धि मिलाते हुए शास्ता ने यह गाथा कही।





गाथा: यस्सिन्द्रियानि समथंगतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो।।94।।

अर्थः सारथि द्वारा सुशिक्षित (सुदांत) घोड़ों के समान जिसकी इंद्रियाँ शांत हो गई हैं, जिसका अभिमान नष्ट हो गया हो, जो आश्रवरहित है, ऐसे पुरुष के दर्शन की देवतागण भी स्पृहा (चाह) करते हैं।

इन्द्रिय संयमित भिक्षु सभी के प्रिय होते हैं
महाकात्यायन थेर की कथा

स्थान : पुब्बाराम, श्रावस्ती

अवन्ति देश के उज्जैन नगर में पुरोहितों का एक कुटुंब रहता था। उसी कुटुंब में महाकात्यायन ने जन्म लिया । अपने पिता की मृत्यु के बाद वे वहाँ के राजा चण्डप्रद्योत के पुरोहित बने। राजा को मालूम हो चुका था कि बुद्ध का धरती पर पदार्पण हो चुका है। वह उन्हें अवन्ति देश बुलाना चाहता था। अतः उसने महाकात्यायन से कहा, "आप बुद्ध के पास जायें तथा मेरी तरफ से प्रार्थना कर उन्हें सादर पूर्वक यहाँ ले आएँ।" महाकात्यायन ने उत्तर दिया, "राजन ! मैं जाने को तो चला जाऊँगा, पर कहीं प्रव्रजित हो गया तो।" "वह मुझे मंजूर है, जैसी तुम्हारी इच्छा। पर तुम्हें बुद्ध को लाना होगा।"

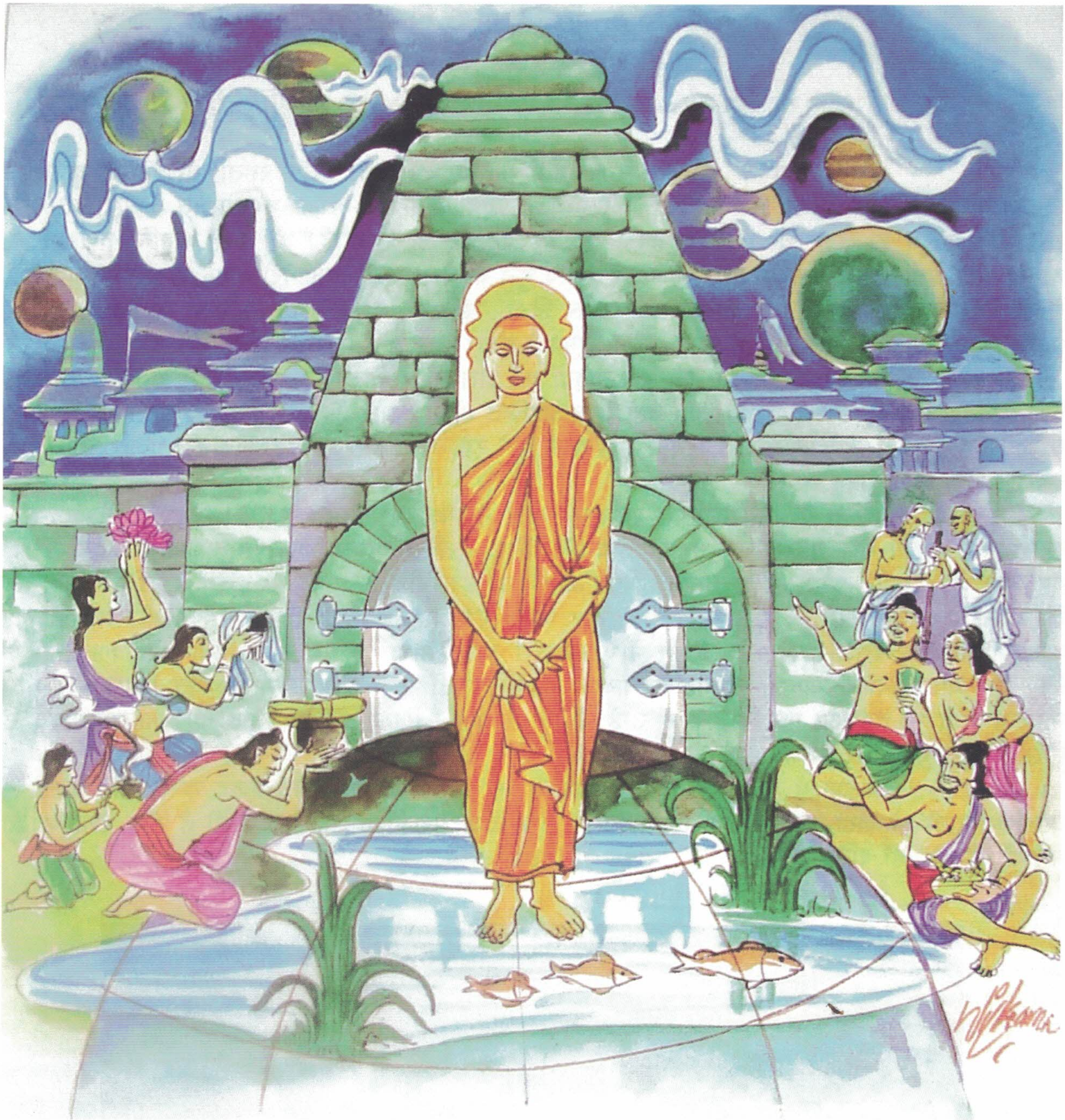
महाकात्यायन मार्ग की कठिनाइयों को झेलते हुए शास्ता के पास पहुँच गये। उन्हें सादर प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। वह वहीं तुरंत प्रव्रजित हो गये और फिर उज्जैन वापस आ गये। शास्ता उज्जैन नहीं आये। महाकात्यायन विपश्यना-साधना में लगे रहे, धर्म प्रवचन करते और इस प्रकार साधना के पथ पर आगे बढ़ते गए।

पूर्णिमा के दिन तथागत पूर्वाराम विहार में भिक्षुओं के साथ बैठे थे। भिक्षुसंघ भी बैठा था। एक आसन खाली था। यह आसन महाकात्यायन के लिए सुरक्षित था जो उस समय अवन्ति प्रदेश में थे। वर्षाकाल की समाप्ति पर उन्हें तथागत के पास आना था। इस बीच इन्द्र की भी इच्छा हुई कि शाक्य मुनि के दर्शन किये जाएं और श्रद्धा सुमन अर्पित किए जाएं। ऐसा सोचकर वह विहार पहुँचा और तथागत को सादर प्रणाम कर खाली आसन के विषय में पूछा। उसे बताया गया कि वह खाली स्थान महाकात्यायन के लिए था। यह जानकर शक्र ने भी महाकात्यायन के प्रति अपनी श्रद्धा और उद्‌गार व्यक्त किए। इसी बीच महाकात्यायन भी वहाँ आ पधारे। इन्द्र ने उन्हें भी सादर प्रणाम किया, उनकी स्तुति की। महाकात्यायन से मिलकर उसे भी अपार प्रसन्नता हुई।

भिक्षुओं में चर्चा होने लगी, "देवराज इन्द्र मुँह देखकर सम्मान प्रकट करते हैं।" शास्ता ने यह चर्चा सुनी तो कहा, "मेरे शिष्य महाकात्यायन ने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है और ऐसा व्यक्ति मनुष्यों को ही नहीं बल्कि देवताओं को भी प्रिय होता है।"

तब शास्ता ने यह गाथा कही।





गाथा: पठवीसमो नो विरुज्झति, इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो।
रहदोव अपेतकद्दमो, संसारा न भवन्ति तादिनो।।95।।

अर्थः जो धरती के समान क्षुब्ध नहीं होता, जो इन्द्रशील के समान तटस्थ व्रत रखता है, जो सरोवर के समान बिना कीचड़ (कर्दम) का है; वैसे साधक पुरुष के लिए संसार के बंधन कृत्य नहीं रह जाते।

साधक पुरुष सांसारिक बंधन रहित होते हैं
सारिपुत्त थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

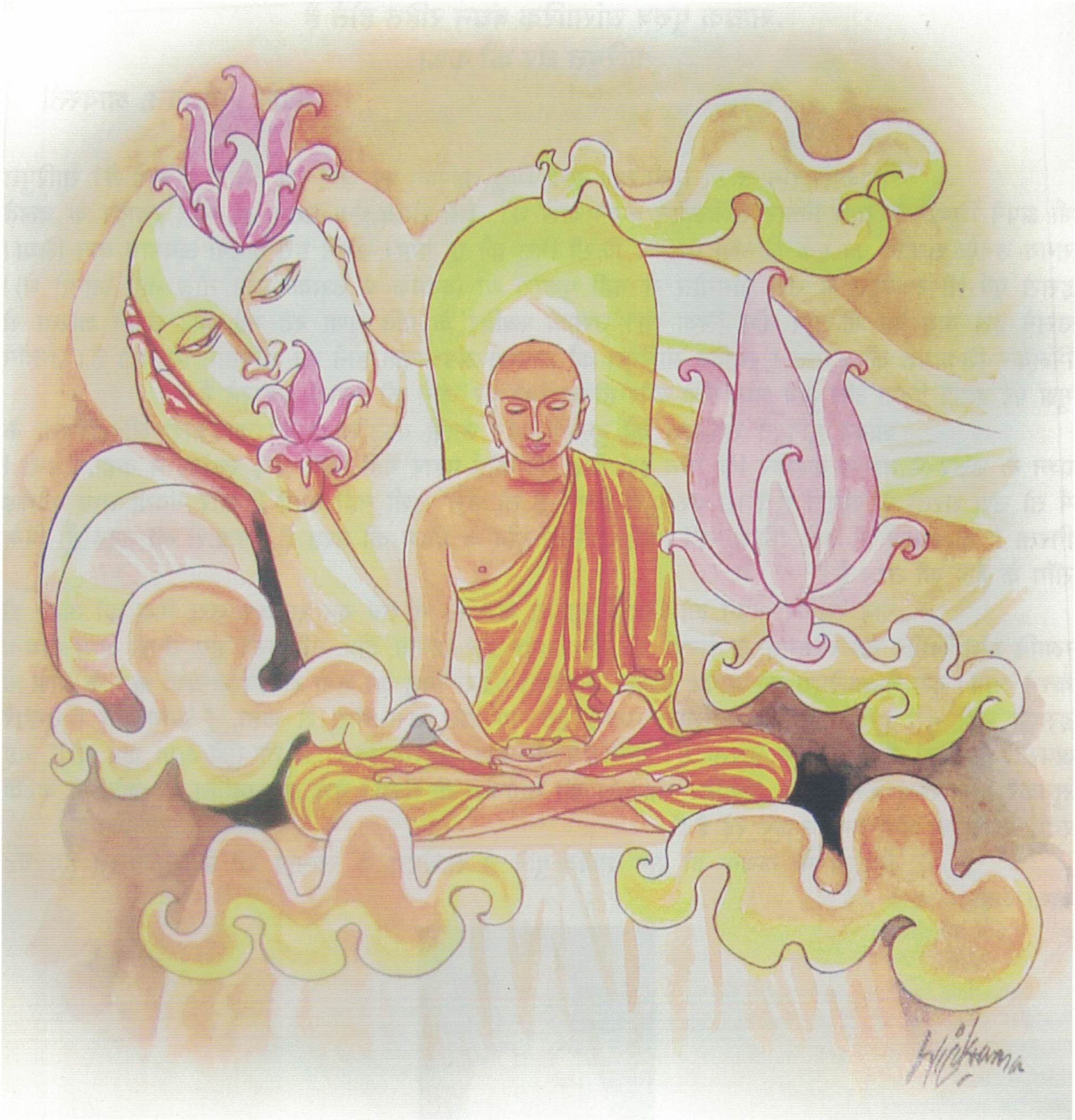
वर्षाकाल समाप्त हो चुका था। सभी भिक्षु चारिका पर जाने की तैयारी में लगे थे। सारिपुत्त भी अपने शिष्यों के साथ विहार से प्रस्थान करने वाले थे। उसी समय एक घटना हो गई। स्थविर के चलते समय उनके संघाटि का एक किनारा उड़कर किसी भिक्षु को छू गया। उसने इसे अपना अपमान मान लिया। इससे पूर्व भी सारिपुत्त ने उसे नामगोत्र से नहीं पुकारा था (क्योंकि वे उसका नाम गोत्र नहीं जानते थे)। उसने इस बात का भी रोष बाँध लिया था। उसकी स्थविर के प्रति घृणा बढ़ गई और उसने शास्ता से मिलकर शिकायत की, "भन्ते ! स्थविर सारिपुत्त को आपका अग्रश्रावक होने का अभिमान हो गया है। उन्होंने मुझ पर प्रहार किया और अब क्षमा माँगे बगैर ही चारिका पर जाने की तैयारी कर रहे हैं।"

शाक्य मुनि ने सारिपुत्त को बुलाया और उनसे वस्तुस्थिति की जानकारी ली। शास्ता के प्रश्न के उत्तर में यह न कहकर कि "मैंने इस भिक्षु पर कोई प्रहार नहीं किया है", स्थविर ने कहा, "भन्ते ! मैं तो उस धरती के समान हूँ जिस पर फूल गिरते हैं तो उसे खुशी नहीं होती है और गंदगी तथा कीचड़ गिरता है तो उससे भी उसे रंजिश नहीं होती । मैं तो पाँव के पोंछा की तरह हूँ, भिखारी की तरह हूँ, बिना सींग के बैल की तरह हूँ।"

जब स्थविर अपने को निर्दोष साबित कर रहे थे तब यह सुनकर उस भिक्षु को अंदर से ग्लानि होने लगी। वह तथागत के चरणों पर गिर गया और अपना दोष स्वीकारते हुए उनसे क्षमा-याचना करने लगा। बुद्ध ने सारिपुत्त को आदेश दिया, "सारिपुत्त ! इस भिक्षु को क्षमा कर दें अन्यथा कर्म के बोझ से इसकी बड़ी बुरी दुर्गति होगी।" सारिपुत्त उकड़ूँ बैठ गए और उस भिक्षु से कहा, " आयुष्मान् ! तुम्हारे अपराध के लिए मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। यदि मैंने भी कोई अपराध किया है तो मुझे क्षमा कर दो।" यह सुनकर सभी भिक्षु कहने लगे, "स्थविर सारिपुत्त की महानता तो देखो। ऐसे झूठे व्यक्ति पर क्रोध न करके स्वयं उससे भी क्षमा याचना कर रहे हैं।"

भिक्षुओं के कथन को सुन शाक्य-मुनि ने सारिपुत्त के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही।





गाथा: सन्तं तस्स मनं होति, सन्ता वाचा च कम्म च।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स, उपसन्तस्स तादिनो।।96।।

अर्थ: जो साधक सच्चा ज्ञान प्राप्त कर विमुक्त एवं उपशान्त हो गया है उसका मन शान्त रहता है, वाणी शांत रहती है तथा उसके कर्म भी शांत होते हैं।

यथार्थ ज्ञान प्राप्त पुरुष का मन, वाणी और कर्म शान्त होता है
कौसाम्बीवासी तिस्स थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक कौसाम्बीवासी तथागत से प्रव्रज्या प्राप्त कर 'कौसाम्बीवासी तिस्स' स्थविर के नाम से जाना जाने लगा। कौसाम्बी में वर्षावास के बाद एक दिन किसी उपासक ने तीन चीवर और घी आदि दान स्वरूप देना चाहा तो स्थविर ने पूछा, "यह क्या है ? " "भन्ते ! आपने मेरे यहाँ वर्षावास करने की कृपा की है। नियमानुसार मैं आपको यह भेंट समर्पित कर रहा हूँ।" "तुम्हारे यहाँ का नियम होगा उपासक ! मुझे इन चीजों की जरूरत नहीं है।" "क्यों नहीं, भन्ते ? " "मैं इन चीजों को लेकर क्या करूँगा ? मेरे पास तो मेरी आवश्यकताएं पूरी करने वाला श्रामणेर भी नहीं है।" "अगर ऐसी बात है तो मेरे पुत्र को श्रामणेर बनाने की कृपा कीजिए।" "ऐसा ही हो।" तब उपासक के सात वर्षीय पुत्र को प्रव्रज्या दी गई। जितने समय उसके मुंडन के बाल उतारे जा रहे थे, वह पूरी तरह ध्यान-मग्न था और बाल उतरते-उतरते वह अर्हत्व प्राप्त कर गया।

स्थविर वहाँ पन्द्रह दिन रहकर श्रामणेर के साथ शास्ता के दर्शन के लिए चल दिए। रात्रि में दोनों ने एक विहार में विश्राम किया। स्थविर तो साधारण आदमी की तरह तुरंत सो गया पर श्रामणेर स्थविर की सेवा करने के उद्देश्य से 'मैं बैठकर ही रात्रि बिताऊँगा' यह सोचकर रात भर बगल में बैठा रहा।

सुबह होने पर स्थविर ने पंखा उठाकर उसके डंडे से श्रामणेर को कोंचते हुए 'उठो' कहते हुए उसके ऊपर डंडा लगाया तो डंडा श्रामणेर की आँख में जा लगा और उसकी एक आँख फूट गई। श्रामणेर से कहा, "चलो, तैयार होओ।" यह सुनकर भी श्रामणेर ने 'भन्ते ! मेरी आँख फूट गई है' यह न कहकर एक हाथ से दुखते हुए आँख को दबाता हुआ ही मुँह धोने के लिए जल, दतुअन आदि ले आया। उसने उपाध्याय को एक हाथ से ही दतुअन दिया। तब उपाध्याय ने उससे कहा, "तुम तो बहुत ही अशिक्षित प्रतीत होते हो। जानते नहीं कि उपाध्याय को दोनों हाथों से दतुअन दिया जाता है।" "जानता हूँ भन्ते ! पर मेरा एक हाथ खाली नहीं है।" "क्यों, क्या हुआ ? " तब सामनेर ने सुबह की पूरी घटना सुना दी। यह सुनकर स्थविर को लग गया कि उससे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। वे कहने लगे, "तुम मुझे माफ कर दो। मुझे यह सब मालूम नहीं था।" ऐसा कह उसके पैरों के पास उकडूँ बैठ गए। श्रामणेर ने बताया, "भन्ते ! इसीलिए तो मैंने आपको बताया नहीं था। जब आपने पूछा तो आपका मन रखने के लिए मुझे बताना ही पड़ा। इसमें न तो आपका दोष है और न मेरा। यह मेरे पूर्वकाल का दोष है। आप मन को मलिन न करें। आपको दुख होगा, यह जानकर ही मैं आपको यह सब कुछ नहीं बता रहा था।"

दोनों शास्ता के पास पहुँचे। स्थविर ने शास्ता को पूरी बात बताई, "इसने मुझ पर न कोई क्रोध किया और न द्वेष। भन्ते ! आज तक मैंने इसके समान श्रेष्ठ, गुणवान, आर्य प्रवर श्रामनेर नहीं देखा है।" प्रत्युत्तर में शास्ता ने बताया, "भिक्षु ! क्षीणास्रव किसी पर न क्रोध करते हैं और न द्वेष। वे शांत होकर शांति पूर्वक विचरण करते हैं।"

धर्मोपदेश दे उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: असद्धो अकतञ्ञू च, सन्धिच्छेदो च यो नरो।
हतावकासो वन्तासो, स वे उत्तमपोरिसो।।97।।

अर्थ: जो अंध श्रद्धा रहित है, जिसने निर्वाण को जान लिया है, जिसने बन्धन को काट लिया है, जिसके पुनर्जन्म की संभावना नहीं, जिसने विषय-भोग की आशा को त्याग दिया है वही उत्तम पुरुष है।

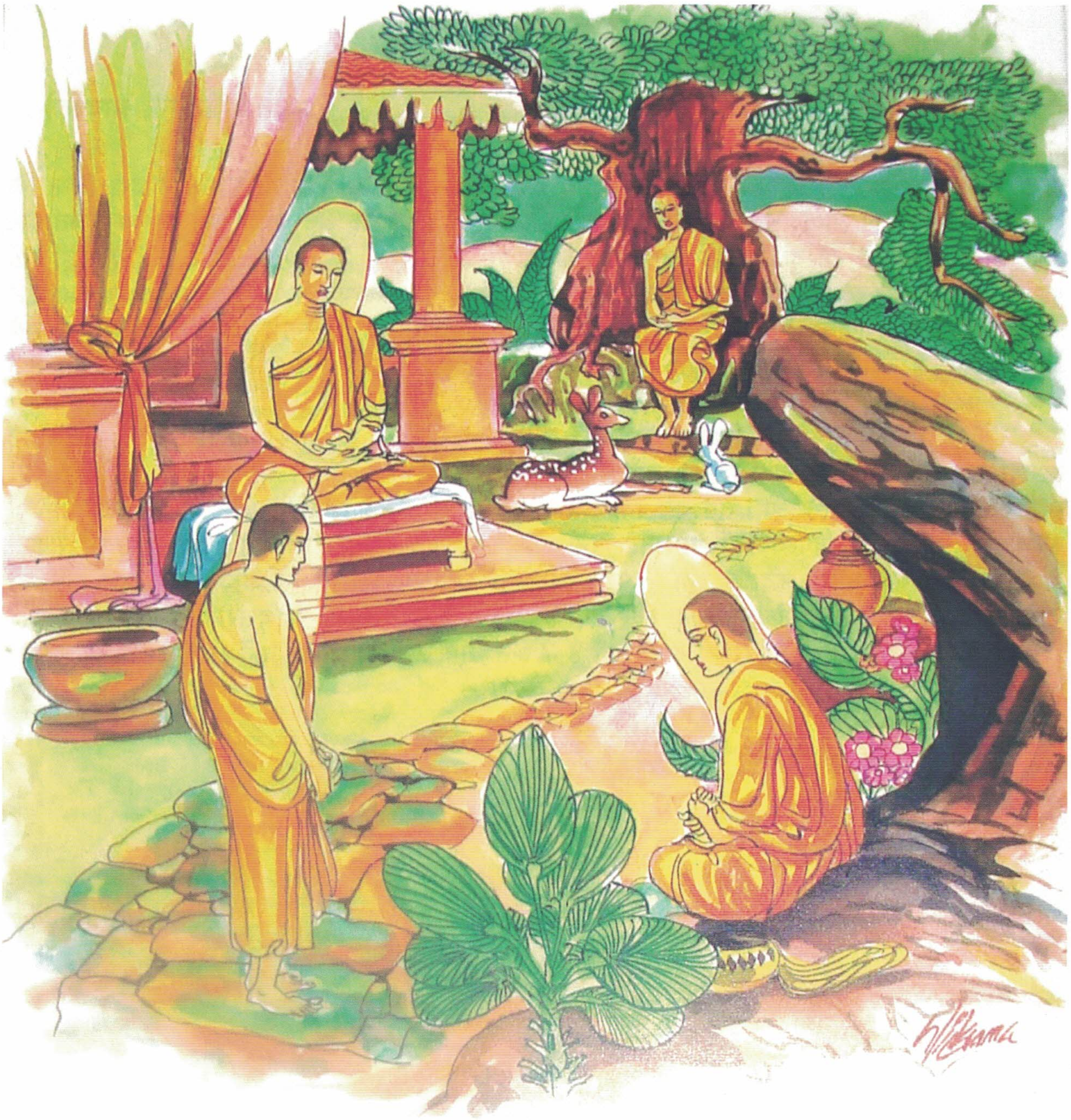
श्रेष्ठ कौन है ?
सारिपुत्त थेर के प्रश्नोत्तर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

तथागत जेतवन में थे। उस समय उनसे मिलने तीस भिक्षु आए। शास्ता ने देख लिया कि उनमें अर्हत बनने का आधार बन चुका है और यह उचित समय भी है कि अब उन्हें शिक्षा दी जा सकती है। अतः उन्होंने सारिपुत्त को बुलाया और उनकी उपस्थिति में उनसे पूछा, "आयुष्मान, सारिपुत्त ! क्या इन्द्रियों पर ध्यान एकाग्र करके निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है ? इस विषय की सच्चाई पर प्रकाश डालो।" सारिपुत्त ने निवेदन किया, "भन्ते ! केवल इन्द्रियों पर ध्यान एकाग्र करके निर्वाण प्राप्त करने की बात मुझे स्वीकार नहीं है क्योंकि मेरी आपमें अटूट श्रद्धा है। यह उन लोगों के लिए है, जिन्हें इसकी अनुभूति नहीं है।"

यह सुनने पर भिक्षुओं में चर्चा चल पड़ी, "लगता है सारिपुत्त अभी तक दूसरे तीर्थकों से प्राप्त मिथ्या दृष्टि से मुक्त नहीं हुए हैं क्योंकि वे आज तथागत की उक्ति से सहमत नहीं हैं।" शास्ता ने उन्हें समझाया, " हे भिक्षुओं ! तुम यह क्या कह रहे हो ? मेरा तो सारिपुत्त से प्रश्न था कि पाँचों इन्द्रियों की भावना किए बिना, विपश्यना में आगे बढ़े बिना क्या कोई साधक मार्ग फलों का साक्षात्कार कर सकता है ? इस बात में तुम्हारी श्रद्धा है क्या ? इसी का उत्तर देते हुए सारिपुत्त ने कहा है कि ऐसा नहीं हो सकता। उसने कब कहा है कि दान का, किए गए कर्म का फल नहीं मिलता या दूसरी ओर उसने कब कहा है कि बुद्ध और उनके गुणों में उसकी श्रद्धा नहीं है ? अतः तुम उस पर आरोप नहीं लगा सकते कि उसकी बुद्ध में श्रद्धा नहीं है।" यह कहकर उन्होंने यह गाथा कही।





गाथा: गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं।।98।।

अर्थ: गाँव हो या जंगल, भूमि ऊँची हो या नीची, जहाँ कहीं
अरहंत विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय होती है।

किसका वासस्थान रमणीय ?
खादियखानिय रेवत की कथा

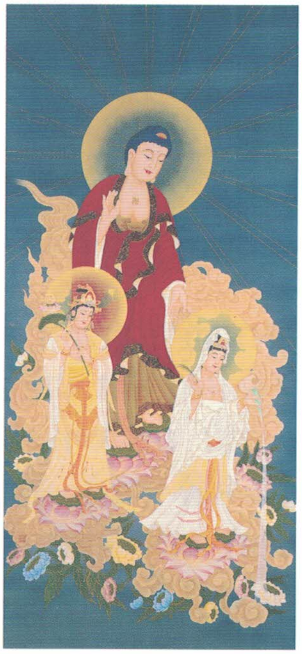
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

आयुष्मान सारिपुत्त ने अपार धन त्यागकर, प्रव्रजित होकर अपनी तीनों बहनों- चाला, उपचाला और सीसुपचाला तथा दो भाइयों चुन्द और उपसेन को प्रव्रजित किया। घर में केवल एक भाई रेवत कुमार बच गया जो प्रव्रजित नहीं हुआ। ऐसा देख उसकी माता ने विचार किया, "मेरा पुत्र उपतिष्य अपार धन छोड़कर प्रव्रजित हो गया। अपने साथ तीन बहनों और दो भाई भी ले गया। अब केवल रेवत बचा है। अगर इसे भी प्रव्रजित कर देगा तो हमारा वंश ही समाप्त हो जाएगा। अतः कुछ ऐसा करना चाहिए कि यह प्रव्रजित नहीं हो। अच्छा हो अगर हम इसका कम उम्र में ही विवाह कर दें।" सारिपुत्त को इस विषय में आशंका थी। अतः उन्होंने पहले से ही भिक्षुओं को कह रखा था, "आयुष्मानों ! अगर मेरा छोटा भाई रेवत प्रव्रज्या लेना चाहे तो उसे प्रव्रजित कर देना। मेरे माता-पिता दूर की नहीं सोचते हैं। उनसे पूछने से कोई लाभ नहीं है। यही समझो कि मैं ही उसका माता-पिता हूँ।"

रेवत सात वर्ष का था। उसी उम्र में उसके विवाह का आयोजन कर दिया गया। वह विवाहोत्सव में लड़की की दादी से मिला। लोग लड़की को 'दादी की तरह जीओ' का आशीर्वाद दे रहे थे। दादी बहुत ही बूढ़ी थी। शरीर से झुक चुकी थी, दाँत टूट गए थे, आँखों से नहीं दिखता था, बुद्धि काम नहीं करती थी। उसने सोचा, "मेरी पत्नी भी इसी तरह हो जाएगी।" उसके ज्ञान-चक्षु खुल गए। वह विवाह-मंडप से भाग खड़ा हुआ। विहार में प्रस्तुत हुआ और वहाँ उसे प्रव्रजित कर दिया गया।

सामनेर रेवत जंगल में चला गया। घोर साधना की और अर्हत्व प्राप्त कर गया। सारिपुत्र ने शास्ता से अनुमति माँगी, "भाई से मिलने की आज्ञा दें।" शाक्य मुनि ने कहा, "मैं भी चलूँगा।" सारिपुत्त, सिवली और अन्य भिक्षुओं के साथ तथागत जंगल की ओर प्रस्थान किए। सामनेर रेवत ने अपनी अन्तर्दृष्टि से उन्हें आते हुए देखा और अपने ऋद्धि-प्रताप से उनके लिए रहने का खूब सुन्दर प्रबंध कर दिया। तथागत वहाँ रुके। भिक्षुसंघ भी उनके साथ रुका। वापसी में विशाखा का घर पड़ता था। अतः शाक्य मुनि भिक्षु संघ के साथ वहाँ भी गए। विशाखा ने सबों की स्तुति की और प्रेम से स्वागत किया। जिज्ञासावश उसने शास्ता से प्रश्न पूछ डाला, "भन्ते ! रेवत के आवास की जगह अच्छी है न ?"

शाक्य मुनि ने इस प्रश्न के उत्तर में धर्म चर्चा की, "जहाँ अर्हत रहते हैं वह भूमि निश्चय ही अच्छी होती है, भले ही वह ऊँची-नीची, ऊबड़-खाबड़ या जंगल ही क्यों न हो।"





गाथा: रमणीयानि अरञ्ञानि, यत्थ न रमती जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति, न ते कामगवेसिनो।।99।।

अर्थ: रमणीय वन जहाँ साधारण लोग रमण नहीं करते (रहने में रुचि नहीं रखते) वहाँ काम वासनाओं के पीछे न भटकने वाले वीतरागी जन प्रसन्नतापूर्वक साधना में लगे रहते हैं।

वीतरागी कहाँ रमण करेंगे ?
किसी स्त्री की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध काल में एक पिंडपातिक भिक्षु शाक्य मुनि से धर्म साधना की विधि सीखकर एक पुराने बागीचे में जाकर ध्यान साधना करने लगा। एक नगरवधू (वैश्या) ने किसी पुरुष के साथ तय किया कि "मैं उस पुराने उद्यान में जा रही हूँ, तुम भी वहीं आ जाना" और निश्चित समय पर उस उद्यान में जा पहुँची। लेकिन उसका सौदागर पुरुष किसी कारणवश वहाँ नहीं आ सका। उस वैश्या ने बहुत समय तक उसका इंतजार किया और जब वह नहीं आया तो उत्सुकतावश वह इधर-उधर घूमने लगी। वह उद्यान के उस भाग में पहुँची जहाँ स्थविर पद्मासन लगाए साधना में बैठे थे। उनके आस-पास किसी और को न देखकर उसने सोचा, "मेरा ग्राहक तो आया नहीं। अब मैं अपनी भूख किस पर शांत करूँ ? यह भी तो आदमी है। क्यों न इसी पर अपनी तृष्णा की भूख मिटाऊँ ? " ऐसा सोचकर उसे आकर्षित करने के उद्देश्य से वह उसके सामने थोड़ी दूर पर खड़ी होकर कभी अपनी पहनी हुई साड़ी खोल डालती थी तो कभी उस खुली हुई साड़ी को बाँधने लगती। कभी केशों की जुड़ा खोल देती तो कभी उसे पुनः बाँधने लगती। कभी ताली बजाकर जोर-जोर से हँसने लगती। इस प्रकार अपनी भाव-भंगिमा से वह उस स्थविर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रयत्न करने लगी। यह सब देखकर स्थविर अपने को रोक नही सका। उसके अन्दर काम वेदना होने लगी। उसका शरीर रोमांचित हो गया। वह कांप गया और डरने लगा। उसने विचार किया, "यह है क्या ? "

उधर शाक्य मुनि ने गंध कुटी में बैठे-बैठे अपनी अन्तर्दृष्टि से सारा का सारा दृश्य देख लिया। उन्होंने पाया कि वह स्त्री कामाचार पर उतारू है और स्थविर को भयभीत कर रही है। अतः गंधकुटी में बैठे ही बैठे विचारों की श्रृंखला से उस स्थविर की रक्षा की। उनका संदेश था, "भिक्षु ! कामभोगियों के लिए जो अरुचिकर स्थान होते हैं, साधना करने वालों के लिए वे ही स्थान रमणीय होते हैं।"



DHAMMAPADA

ARAHATTA VAGGA



संस्कारक : हृषीकेश शरण